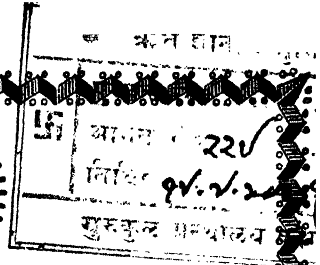




महाकविश्रीकालिदासप्रणीतम्

विक्रमोर्वशीयम्

त्रोटकम् ।

शिकारपुर (सिन्धु) प्रान्तीय बी. एल. संस्कृताङ्गलविद्यालय-
प्रधानाध्यापकेन हिन्दीसाहित्यकुलभूषणेन

श्रीआशानन्दवर्म्मणा

कृतया संस्कृतहिन्दीटीकया
संवलितम्

मूलत्राणदेशवास्तव्यविद्वद्वरश्रीपण्डितकर्म्मचन्द्रशर्म्मतनुजनुषा
हिन्दीप्रभाकरेण श्रीचेलाणलशास्त्रिणा
संशोधितम्

पुनर्मुद्रणादिः सर्वोऽप्यधिकारष्टीकाकर्त्तुरायत्तः ।

पुस्तकप्राप्तिस्थानम् :—

'मेहरचन्द लक्ष्मणदास' अध्यक्ष-
संस्कृत पुस्तकालय लाहौर ।

प्रथमसंस्करणम् १००० } १६२६ { मूल्य १॥) विद्यार्थियों के लिये १।)



'एजुकेशनल प्रिंटिङ्ग वर्क्स' हस्पताल रोड लाहौर में, प्रोप्राईटर मियां गुलाम कादर के अधिकार से छपवाया।



समर्पण ।

पञ्जाब-विश्वविद्यालय के संस्कृत-व्याख्याता

ओरियण्टल कॉलिज के प्रोफैसर

देवभाषानुरागी

श्रीयुत् डॉ. लक्ष्मण स्वरूप, एम. ए.,

पी. एच. डी. (ऑक्सफोर्ड)

की

विद्वत्ता, बहुभाषाभिज्ञता, हिन्दीहितैषणा आदि

अनेक सद्गुणों के कारण

उनके विषय में उत्पन्न हुए अनेक हार्दिक भक्ति-भावोद्रेक की

प्रबल प्रेरणा से अनुवादक ने

इस पुस्तक-रूपी प्रसून-स्तबक को

उन्हें

सादर, सानुराग और सविनय

समर्पित

किया ।

वक्तव्य

कर्णामृतं काव्यरसं विहाय
दोषेषु यत्नः सुमहान् खलस्य ।
अवेक्षते केलिवनं प्रविष्टः
क्रमेलकः कण्टकजालमेव ॥ *

प्रिय पाठक वृन्द !

आजकल जहां अन्य भाषाएं उन्नतिपथ पर आरूढ़ हो रही हैं वहां संस्कृत भाषा का प्राचीन गौरव भी साधारणतः पठित-जन समाज में विशेषतः भव्य-छात्र-समुदाय में पुनः अंकुरित हुआ चाहता है। उस अंकुर को पल्लवित करने के लिये तथा संस्कृत के प्रारम्भिक छात्रों की सुविधा के लिये मैंने "विक्रमोर्वशीय-त्रोटक" पर एक विशद टीका करने का आयास किया है। यद्यपि उक्त "त्रोटक" पर कई एक टीकाएं देखने में आती हैं पर वे छात्रों को लाभ पहुंचाने में प्रमाणित नहीं हुईं। इस में श्लोकों को अन्वय, व्याख्या, तथा भावार्थ-पूर्वक और गद्य भाग को सरल हिन्दी में चारु-रूप से लिखने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक में प्रश्नोत्तर प्रकार, कविवृत्त, परीक्षोपयोगी-प्रश्नपत्र और नाटक सम्बन्धी समालोचना इत्यादि आवश्यक अङ्गों का भी समावेश कर छात्रों के लिये सब प्रकार की सुविधाओं को उपस्थित करने की चेष्टा की गई है।

मेरी प्रबल अभिलाषा थी कि पुस्तक को सर्वथा निर्दोष प्रमाणित किया जावे और इस के लिये भरसक यत्न भी किया

---

* दुष्ट मनुष्य अमृत के समान मधुर काव्य में गुण को छोड़कर केवल दोष ढूंढने का यत्न करता है। जैसे ऊंट किसी सुन्दर उपवन में प्रवेश कर के केवल कटीले वृक्ष और झाड़ झंखाड़ की तलाश करने लगता है।

है पर परीक्षा के समीप होने से और परीक्षार्थियों की उत्कण्ठा को शीघ्र पूर्ण करने की इच्छा से मैं इसका प्रथम संस्करण शीघ्र ही आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूं। इस में कई स्थलों पर संस्खलन आप के दृष्टिगोचर होंगे परन्तु आप "हसन्ति दुर्जना-स्तत्र समादधदित सज्जनाः" इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए मुझे उन से सूचित करेंगे। ताकि द्वितीय संस्करण में वे त्रुटियां पूर्ण की जासकें। परन्तु कई एक ऐसे भी छिद्रान्वेषी-महानुभाव होते हैं जिन की दृष्टि प्रायः दोषों पर ही पड़ती है। इसी विषय में किसी छिद्रान्वेषी समालोचक से सताया गया एक कवि कहता है—

अतिरमणीये काव्येऽपि पिशुनो दूषणमन्वेषयति,
अतिरमणीये वपुषि व्रणमिव मक्षिकानिकरः॥

भावार्थ—चाहे काव्य या ग्रन्थ कितना ही उत्तम और निर्दोष क्यों न हो किन्तु खल मनुष्य उस में केवल दोष ही ढूंढेगा। जैसे कि शरीर चाहे कितना ही सुन्दर क्यों न हो किन्तु उसे छोड़ कर मक्खियां सिर्फ़ घाव या फोड़े पर बैठेंगी, अन्यत्र नहीं।

अन्त में मैं उन महानुभावों का सहर्ष धन्यवाद करता हूं। जिन्होंने इस पुस्तक को पूर्ण करने में अपनी उचित सम्मति तथा सहायता देकर हाथ बटाया है। मैं इस पारस्परिक-सहानुभूति के लिये उनका सर्वथा आभारी हूं।

दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्ननिर्दोषं न निर्गुणम्।
आवृणुध्वमतो दोषान् विवृणुध्वं गुणान् बुधाः॥

विनीत—

आशानन्द वर्म्मा
गोपी स्ट्रीट
मुलतान नगर।

*शुद्धि-पत्रम् ।

पृ०	पं०		अशुद्धम्	शुद्धम्
१	२४	(वक्तव्य)	यस्न	यत्न
२	५	,,	समादधदित	समादधति
३	४	(पुस्तकारम्भ)	संसकृत	संस्कृत
५	२४	...	विरहदीर्घासु	विरहदीर्घासु
८	२७	...	मुद्रराक्षसम्	मुद्राराक्षसम्
११	१७	...	युवावास्थासम्पन्न	युवावस्थासम्पन्न
११	१७	...	तजस्वीपुरुष	तेजस्वीपुरुष
१२	३०	...	पाश्चाली	पाश्चात्वी
१७	१	...	लक्ष्मीस्वम्बर	लक्ष्मीस्वयम्बर
१६	१३	...	विक्तमालंकार:	विक्रमालंकार:
१६	२३	...	विभवितैकदेशेन	विभावितैकदेशेन
२२	१	(ग्रन्थ)	विक्रमोर्वश्यां	विक्रमोर्वश्यां
२२	२२	...	अनन्तरदिति-वपु	अनन्तरोदीरित-वपु
२२	३२	...	पादर्थ	पदार्थ
२३	२	...	मध्यमुतपन्ती	मध्यमुत्पतन्ती
२४	२८	...	तव वे	तव से
२७	१३	...	इतत्	एतत्
२७	२०	...	महराज	महाराज
२६	१४	...	प्रवेश	प्रवेशक
३०	१४	...	अस्यवहारस्य	अभ्यवहारस्य
३३	२७	...	प्रत्तिकूलप्लवनमिव	प्रतिकूलप्लवनमिव
३७	६	...	वञ्छितसिद्धिषु	वाञ्छितसिद्धिषु

* सर्वान्संस्कृताध्यापकान्सविनयन्निवेदयति:—

यथासमयं यथामति कृतसंस्करणेऽप्यस्मिन्कृतौ सम्भाव्यमानपुरुषदोषवशात्सीसकाक्षरनियोजकानामनवधानतया मुद्रणयन्त्रसंघर्षणभराक्षरलोपादिकारणाद्वा वर्णमात्राद्यशुद्धयो जातास्स्युस्तासां शुद्धिपत्रानुसारेण यथायथं संशोधनप्रयासमुररीकृत्य बालान्पाठयन्त्वन्यत्रापि वा कुत्रचिद्भ्रमगवलोकयद्भिस्सहृदयैर्भवद्भिरितिमात्रमनुकम्पनीयोऽयजन इति।

चेलाबालशास्त्री (मोहला)

१	११	स्थितं	स्थितम्
३७	२६	दुष्प्रप्या	दुष्प्राप्या
३७	२६	सकलेदु	सकलेन्दु
३८	१२	हमकूटशिखरे	हेमकूटशिखरे
४१	२३	उदय प्रकार हुए	उदय हुए
४३	१६	अलेख्येऽपि	आलेख्येऽपि
६४	११	अभिक्रद्धो	अभिक्रुद्धो
१०५	१२	मृत्यति	नृत्यति
६६	१	चतुार्थोऽङ्कः	चतुर्थोऽङ्कः
१०५	२२	शब्दायमाणः	शब्दायमानैः
११६	१३	च	व
१२६	२	सर्वक्षितिभ्रतां	सर्वक्षितिभृतां
१२६	२०	वनप्रयेशान्ते	वनप्रवेशान्ते
१३३	१	सरिदि	सरदियं
१३३	२	उद्दशं	उद्देशं
१३७	१२	पणयिनी	प्रणयिनी
१४३	२१	रागेण	रागेणविलुरितम्
१४४	२७	प्रविष्ठान्	प्रतिष्ठान
१४५	८	चतुर्थोऽअङ्कः	चतुर्थोऽङ्कः
१४५	२३	समानो	सम्मानो
१४६	१२	नारय	नास्य
१४७	१५	चूड़ामणी	चूड़ामणिः
१४८	१२	अपरधी	अपराधी
१४६	१२	इती	इतो
१५०	१५	आभर्तीति	आभातीति
१५०	१७	नातः	नीतः
१५०	२१	मेद्यात्रृत	मेघावृत
१५०	२१	गृह	ग्रह
१५१	११	सङ्गमित अस्मि	सङ्गमितोऽस्मि
१५१	२०	किञ्चुकी	कञ्चुकी
१५१	२०	महारज	महाराज
१७४	१०	सर्वस्मिन्	सर्वस्मिन्

(१) अचिपरे सर्वत्रानुस्वारं मकारं विदाङ्कुर्वन्तु गुणगृह्या विपश्चितः ।

॥ श्रीः ॥

महाकवि श्रीकालिदास

यह सूर्य्य जगत्-प्रसिद्ध कवि कालिदास है जिनको सरस्वती का अवतार ही कहना चाहिए। कालिदास की समानता शेक्सपियर से की गई है, परन्तु कालिदास की कविता की सुन्दरता कुछ निराली ही है; और इस के काव्य की सुन्दरता और गौरवता के लिए दूसरी जातियों के काव्य-ग्रंथों में अन्वेषणायास करना वृथा है। भारतवर्ष क कवियों ने अपने जीवन-चरित्र के विषय में कभी कुछ संकेत नहीं किया इस कारण इनका किस समय में जन्म हुआ और ये किस समय तक संसार में रहे, इस विषय में कुछ लिखना केवल अनुमान ही है। कालिदास के जीवन समय के विषय में बहुत कुछ मत-भेद हैं और इस विषय में बहुत सी सम्मतियां प्रकट की गई हैं।

(१) कतिपय विद्वान् कहते हैं कि कालिदास सातवीं सदी में उत्पन्न हुए थे। परन्तु सातवीं सदी के पहले के पुलाकेशिका शिलालेख और तन्त्रवार्तिक आदि ग्रन्थों में जब कालिदास के बनाये श्लोक पाये जाते हैं तब ये सप्तम शताब्दी के कैसे माने जा सकते हैं।

(२) दूसरे पक्ष का कहना है कि कालिदास वराहमिहिर के समकालीन थे, क्योंकि दोनों विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से थे। परन्तु नवरत्न में जिनके नाम आये हैं उनके समय में विशेष अन्तर आने से नवरत्न की कल्पना पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता है।

(३) तीसरा दल कहता है कि मातृगुप्ताचार्य ही का दूसरा नाम कालिदास था। मातृगुप्ताचार्य ६ वीं सदी में उत्पन्न हुए थे इससे कालिदास का भी वही समय है। किन्तु यह मत इस कारण दुर्बल है कि कालिदास और मातृगुप्त ये दोनों एक ही के नाम हैं इसमें कोई प्रमाण नहीं और कालिदास का जहाँ नाम गिनाया गया है उसमें मातृगुप्त का पता नहीं—

"रघुकारः कालिदासो मेधारुद्रश्च कोटिजित्।"

कालिदास के ये ही नाम पाये जाते हैं।

(४) अन्य दलवाले कहते हैं कि दिङ्नागाचार्य कालिदास के प्रतिद्वन्द्वी थे । इसी बात को कालिदास ने मेघदूत में प्रकारान्तर से कहा है । "दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्" ।

इससे कालिदास को दिङ्नाग के समकालीन मानना ही पड़ेगा । दिङ्नागाचार्य ६ वीं सदी में थे अतएव कालिदास का भी वही समय निश्चित होता है । परन्तु दिङ्नागाचार्य ६ वीं सदी में थे इसका कोई प्रमाण नहीं । प्रत्युत खृष्ट सदी से पूर्व के भट्टाचार्य ने दिङ्नाग का मत उद्धृत करके यह बात प्रमाणित कर दी है कि वह ६ वीं सदी के नहीं थे ।

इसी प्रकार अनेक मत कालिदास के समय निरूपण के विषय में आज कल प्रचलित हैं ।

कालिदास शक प्रवर्तक विक्रमादित्य के सभापण्डित थे यह बात प्रसिद्ध है । अतएव विक्रम का समय निर्णय होने से कालिदास का भी समय निर्णय हो जायगा । राजा विक्रम इस देश में अनेक हुए हैं । चीन परिव्राजक हुएनत्साङ्ग ने भी ६ वीं सदी के विक्रम का उल्लेख किया है परन्तु वे शकप्रवर्तक नहीं थे । डा० पीटर्सन ने जो मन्दसोर का शिलालेख प्रकाशित किया है, जिसे डा० ब्यूलर ने भी माना है उससे यह स्पष्ट ही पाया जाता है कि शकप्रवर्तक विक्रम देव खृष्ट वर्ष के पहले हुए हैं । इस बात को प्रो० फ्लीट भी मानते हैं । जैन तीर्थङ्कर महावीर स्वामी के परलोकवास के ४७० वर्ष के अनन्तर विक्रम उत्पन्न हुए थे । विक्रमादित्य शालिवाहन से भी प्राचीन हैं । शलिवाहन खृष्टीय प्रथम सदी में उत्पन्न हुए थे । उन्होंने विक्रम का शक नर्मदा के दक्षिण तीर पर मिटा कर अपना शक चलाया था । रामकूट नामक महल विक्रमादित्य ने ही शरावती में बनवाया था । वह महल खृष्टीय वर्ष से ५७ वर्ष पहले बनवाया गया था इस बात को ऐतिहासिक मानते हैं । इन्हीं विक्रम की सभा में कालिदास थे । रघुवंश आदि के बनाने वाले कालिदास इनसे भी प्राचीन हैं । क्योंकि प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट ने अपने विश्वविख्यात तन्त्रवार्तिक नामक ग्रन्थ में कालिदास का श्लोक उद्धृत किया है । कुमारिल भट्ट शङ्कराचार्य के समकालीन थे, इस बात को सभी जानते हैं शङ्कराचार्य युधिष्ठिर की सताइसवीं सदी में वर्तमान थे, सुतरां कालिदास को उनसे भी प्राचीन मानना ही उचित और प्रमाण-सिद्ध है ।

कालिदास कितने हुए हैं, इसका पता लगाना एक कठिन काम है। भोजप्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणि आदि ग्रन्थों से जाना जाता है कि भोज के समय में भी एक कालिदास वर्तमान थे। संस्कृत साहित्य में कालिदास शब्द एक प्रकार की उपाधि के समान समझा जाता है। क्योंकि जिनका असल नाम दूसरा था उन्होंने भी अपने नाम में अभिनव कालिदास आदि शब्द जोड़ लिये थे। नवसाहसाङ्क के रचयिता अपने को अभिनव कालिदास लिखते थे। किसी २ हस्तलिखित नवसाहसाङ्क की पुस्तक में केवल कालिदास ही का नाम लिखा मिलता है।

कालिदास की कविता में छन्दों की विचित्रता, पद-रचनाओं के दृश्य, और सुन्दर कविता के भावों का निरूपण कूट कूट कर भरा है। कालिदास के ग्रन्थों की पूरी रीति से प्रशंसा करना असम्भव मालूम होता है। भाषा की अधृष्टता, कवि-रचना की बहुलता, मधुरता और लालित्य, शोभा-वर्णन की विचित्रता, वाग्धारा-प्रवाह की सरलता, सार्वगुणदेशीय सत्य के वर्णन की चतुरता; ये सब गुण कालिदास को यश के उच्चतम शिखर पर स्थान देते हैं।

कालिदासजी ने काव्य, नाटक और स्तोत्र बहुत से रचे हैं इन विषयों पर जो २ इनके ग्रन्थ अभी तक पाये जाते हैं वे ये हैं:—

काव्य

१ रघुवंश १९ सर्गों में
२ कुमारसम्भव

नाटक

१ विक्रमोर्वशी
२ मालविकाग्निमित्र
३ शकुन्तला

छोटे काव्य

१ मेघदूत
२ श्यामलादण्डक
३ शृङ्गारतिलक
४ राक्षस-काव्य
५ पुष्पभवविलास
६ ऋतु-संहार
७ नलोदय

विक्रमोर्वशीय कथासारः

आसीत्पुरूरवा नाम राजा परमवैष्णवः ।
अभूद्भुवीव नाकेऽपि यस्याप्रतिहता गतिः ॥ १ ॥
भ्रमन्तं नन्दने जातु तं ददर्श किलाप्सराः ।
उर्वशी नाम कामस्य मोहनास्त्रमिवापरम् ॥ २ ॥
दृष्टमात्रेण तेनाभूत्सा तथा हृतचेतना ।
यथा सभयरम्भादिसखीचित्तान्यकम्पयत् ॥ ३ ॥
सोऽपि तां वीक्ष्य लावण्यरसनिर्झरिणीं नृपः ।
यन्न प्राप परिष्वङ्गं तृषाक्रान्तो मुमूर्छ तत् ॥ ४ ॥
अथादिदेश सर्वज्ञो हरिः क्षीराम्बुधिस्थितः ।
नारदाख्यं मुनिवरं दर्शनार्थमुपागतम् ॥ ५ ॥
देवर्षे नन्दनोद्यानवर्ती राजा पुरूरवाः ।
उर्वशीहृतचित्तः सन्स्थितो विरहनिःसहः ॥ ६ ॥
तद्गत्वा मम वाक्येन बोधयित्वा शतक्रतुम् ।
दापय त्वरितं तस्मै राज्ञे तामुर्वशीं मुने ॥ ७ ॥
इत्यादिष्टः स हरिणा तथेत्यागत्य नारदः ।
प्रबोध्य तं तथाभूतं पुरूरवसमब्रवीत् ॥ ८ ॥
उत्तिष्ठ त्वत्कृते राजन्प्रहितोऽस्मीह विष्णुना ।
स हि निर्व्याजभक्तानां नैवापदमुपेक्षते ॥ ९ ॥
इत्युक्त्वाश्वासितेनाथ स पुरूरवसा सह ।
जगाम देवराजस्य निकटं नारदो मुनिः ॥ १० ॥
हरेर्निदेशमिन्द्राय निवेद्य प्रणतात्मने ।
उर्वशीं दापयामास स पुरूरवसे ततः ॥ ११ ॥
तदभूदुर्वशीदानं निर्जीवकरणं दिवः ।
उर्वश्यास्तु तदेवासीन्मृतसंजीवनौषधम् ॥ १२ ॥
अथाजगाम भूलोकं तामदाय पुरूरवाः ।
स्ववधूदर्शनाश्चर्यमर्पयन्मर्त्यचक्षुषाम् ॥ १३ ॥

ततोऽनपायिनौ तौ द्वावुर्वशी च नृपश्च सः ।
अन्योन्यदृष्टिपाशेन निबद्धाविव तस्थतुः ॥ १४ ॥
एकदा दानवैः सार्कं प्राप्तयुद्धेन वज्रिणा ।
साहायकार्थमाहूतो ययौ नाकं पुरूरवाः ॥ १५ ॥
तत्र तस्मिन्हते मायाधरनाम्न्यसुराधिपे ।
प्रनृत्तस्वर्वधूसार्थः शक्रस्याभवदुत्सवः ॥ १६ ॥
ततश्च रम्भां नृत्यन्तीमाचार्ये तुम्बरौ स्थिते ।
चलिताभिनयां दृष्ट्वा जहास स पुरूरवाः ॥ १७ ॥
जाने दिव्यमिदं नृत्तं किं त्वं जानासि मानुष ।
इति रम्भापि तत्कालं सासूयं तमभाषत ॥ १८ ॥
जानेऽहमुर्वशीसङ्गात्तद्यद्वेत्ति न तुम्बुरुः ।
युष्मद्गुरुरपीत्येनामुवाचाथ पुरूरवाः ॥ (१९)
तच्छ्रुत्वा तुम्बुरुः कोपात्तस्मै शापमथादिशत् ।
उर्वश्या ते वियोगः स्यादा कृष्णाराधनादिति ॥ २० ॥
श्रुतशापश्च गत्वैव तमुर्वश्यै पुरूरवाः ।
अकालाशनिपाताग्रं स्ववृत्तान्तं न्यवेदयत् ॥ (२१)
ततोऽकस्मान्निपत्यैव निन्ये क्वाप्यपहृत्य सा ।
अदृष्टैस्तेन भूपेन गन्धर्वैरुर्वशी किल ॥ (२२)
अवेत्य शापदोषं तं सोऽथ गत्वा पुरूरवाः ।
हरेराराधनं चक्रे ततो बदरिकाश्रमे ॥ २३ ॥
उर्वशी तु वियोगार्ता गन्धर्वविषयस्थिता ।
आसीन्मृतेव सुप्तेव लिखितेव विचेतना ॥ २४ ॥
आश्चर्यं यन्न सा प्राणैः शापान्ताशावलम्बिनी ।
मुक्ता विरहदीर्घासु चक्रवाकीव रात्रिषु ॥ २५ ॥
पुरूरवाश्च तपसा तेनाच्युतमतोषयत् ।
तत्प्रसादेन गन्धर्वा मुमुचुस्तस्य चोर्वशीम् ॥ २६ ॥
शापान्तलब्धया युक्तः पुनरप्सरसा तया ।
दिव्यान्स राजा बुभुजे भोगान्भूतलवर्त्यपि ॥ २७ ॥

पुरूरवा और उर्वशी

पुरूरवा

महाराज पुरुरवा बुधके पुत्र और चन्द्रमा के पौत्र थे। चन्द्रमा ने जब वृहस्पति-पत्नी तारा को हर लिया था तब तारा के गर्भ से चन्द्र को एक पुत्र हुआ। उस पुत्र का नाम बुध था। बुध का ब्याह राजपुत्री इला से हुआ। इला के गर्भ से बुध को पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उर्वशी इन्द्र के शाप से मर्त्यलोक में उत्पन्न हुई, और पुरुरवा की स्त्री बनी। राजा ठहरावों का पालन नहीं कर सके इस कारण उर्वशी ने पुरुरवा को छोड़ दिया। पुरूरवा उर्वशी के वियोग से अधीर हो गये और वे इधर उधर घूमने लगे। घूमते घूमते वे कुरु-क्षेत्र पहुंचे वहां उनकी उर्वशी से भेंट हुई। राजा ने उससे घर में लौट आने के लिये अनुरोध किया राजा के कष्ट को जान कर उर्वशी बोली मैं आप के द्वारा गर्भवती हुई हूँ, वर्ष दिन के बाद कतिपय पुत्र उत्पन्न होंगे, उनको देने के लिये मैं आपके घर आऊँगी और उसी समय आपके यहां एक रात रहूँगी। उर्वशी के गर्भ से आयु, श्रुतायु, विश्वायु आदि सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। उर्वशी इन पुत्रों को लेकर राजा को दे आई और एक रात वहां रही भी। प्रयाग में पुरुरवा की राजधानी थी यह नगर गङ्गातीर पर स्थापित हुआ था। इस कारण इसका नाम प्रतिष्ठान हुआ। पुरूरवा ने गन्धर्वों से एक अग्निपूर्ण स्थान पाया था उसी अग्नि के बल से इन्हों ने अनेक यज्ञ करके अन्त में गन्धर्वलोक प्राप्त किया।

उर्वशी

यह विख्यात स्वर्ग वेश्या थी इसका जन्म नारायण के उरू से हुआ था। एक समय यह इन्द्र की सभा में नाच रही थी, पुरू-

रवा भी वहां बैठे थे। उन के ऊपर मोहित होने से उर्वशी का ताल भंग हुआ। इस कारण देवराज ने उर्वशी को कुछ दिनों तक मर्त्यलोक में रहने का शाप दिया। हरिवंश में लिखा है कि ब्रह्मा के शाप से उर्वशी ने मनुष्ययोनि में जन्म ग्रहण किया था। शाप पा कर उर्वशी यशस्वी राजा पुरूरवा की पत्नी बन कर मर्त्यलोक में रहने लगी। उर्वशी ने कहा, महाराज ! जब तक मैं आपको नग्न नहीं देखूँगी, और जब तक मेरी इच्छा के विरुद्ध तुम सङ्ग मुझ से नहीं करोगे और जब तक मेरे ये दोनों मेष यहां से नहीं चले जायेंगे, तब तक मैं आपकी स्त्री बन कर रहूँगी। पुरूरवा ने इन ठहरावों को स्वीकार किया। उर्वशी के गर्भ से सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। बहुत वर्ष बीतने से उर्वशी के विना गन्धर्वों को बड़ा कष्ट होने लगा। उन लोगों ने विश्वावसु नामक गन्धर्व को उर्वशी का मेष हरण करने के लिये नियुक्त किया। रात को विश्वावसु मेषों को चुरा कर लिये जाता था, उस समय उर्वशीने पुरूरवाको उठाया उस समय पुरूरवा नंगे थे, वे अकचका कर वैसे ही विश्वावसु गन्धर्व के पीछे दौड़े। अवसर जान कर गन्धर्वों ने राजभवन के चारों ओर प्रकाश फैला दिया। उर्वशी राजा को देखकर उसी समय शापयुक्त हो कर तथा स्वर्ग को चली गई।



प्रश्नोत्तरी

प्र० " विक्रमोर्वशीय " शब्द का वाच्यार्थ क्या है, तथा इस में कैसे घटता है ?

उ०—पुरूरवसा विक्रमेण निजपराक्रमेण दानवादाच्छिद्य गृहीता उर्वशी यत्र तत् "विक्रमोर्वशीयम्" "शाकपार्थवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्" इत्यनेन मध्यमपदलोपे तदधिकृत्य-कृतग्रन्थे इत्यनेन छ प्रत्यये आयनेयीत्यादिना छस्येयादेशे—उक्त-रूपं निष्पन्नम् ॥

भावार्थः—पुरूरवा ने अपने पराक्रम द्वारा राक्षसों से उर्वशी को छीन कर उससे विवाह किया था, ऐसा वृत्त जिस पुस्तक में हो उसे "विक्रमोर्वशीय" कहते हैं।

प्र०—विक्रमोर्वशीय का संक्षिप्त परिचय दो।

उ०—विक्रमोर्वशीय पांच अंकों में है। इस में पृथ्वी और आकाश की घटनाओं का वर्णन है। पुरूरवा राजा की उर्वशी अप्सरा से प्रेम होना इस नाटक का मुख्य विषय है। यह कथा मत्स्य-पुराण से उठाकर नाटक के रूप में रक्खी गई है। यह नाटक ऐसी चतुराई से रचा गया है कि घटनायें स्वाभाविक रीति से होती जाती हैं। प्रारब्ध नाटक में मुख्य रक्खा गया है। राजा अप्सरा और देवताओं का अधिष्ठाता इन्द्र भी प्रारब्ध की दृढ़ शृङ्खलाओं से बंधे हुए दिखाये गये हैं।

प्र०—"नाटक किसे कहते हैं ? तथा उसका क्या लक्षण है ?

उ०—नाट्यतेऽनेनेति नाट्यम् (नाटकमेवेत्यर्थः)

यद्वा—

नाट्येन यत् क्रियते तन्नाटकम्,

अथवा—नाट्यैर्गीतवाद्यनर्तनादिभिर्यत् कथ्यते तन्नाटकम्।

भावार्थ—जिसमें गायनवाद्य तथा नाच द्वारा अपना सर्ववृत्त सामाजिक जनों को ज्ञात कराया जावे उसे " नाटक " कहते हैं।

---

(१) यथा—अभिज्ञानशकुन्तलम्, मुद्राराक्षसम्, अनर्घराघवादि।

उसका लक्षण यह है—

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
विलासर्द्ध्यादिगुणवद् युक्तं नानाविभूतिभिः ॥
सुखदुःखसमुद्भूतिर्नानारसनिरन्तरम् ।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्य्ये निर्वहणेऽद्भुतम् ॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्य्ये व्यापृतपूरुषाः ।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ॥

भावार्थः—' किसी प्रसिद्ध इतिहासको पांच संधियों में समाप्त किया जावे तथा विलाससमृद्धि आदि गुणोंसे विभूषित किया जावे, और सुख दुःख आदिकी उत्पत्ति तथा नानाप्रकारके रसोंको भलीभांति दर्शाया जावे, और पांच तथा दस अङ्कोंमें समाप्त किया हुआ तथा विख्यात वंशमें उत्पन्न हुआ " राजर्षि " तथा धीरोदात्तसंज्ञक प्रतापी नायकके वृत्तको "नाटक" कहते हैं ॥

प्र०—अङ्क किसे कहते हैं ? तथा उसका क्या लक्षण है ?

उ०—अंकयति लक्षयति बोधयतीत्यर्थः रसादिकमितियावत्, " अकि लक्षणे " पचाद्यच् ।

भावार्थ—जिसके द्वारा रसादि भावोंका ज्ञान हो उसे " अंक " कहते हैं ।

उसका लक्षण यह है—

"प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः ।
भवेद्गूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसंयुतः ॥

भावार्थः—जिसमें नायक का चरित प्रत्यक्षरूपमें हो, तथा रस और भाव पूर्णरूपसे हों इत्यादिक नियमयुक्त 'अंक' का लक्षण कहलाता है

प्र०—' नान्दी ' किसे कहते हैं ? और उसका क्या लक्षण है ?

---

(१) दशरूपकमें अङ्कका लक्षण इसी प्रकार लिखा है, यथा—
"यदा तु सरसं वस्तु मूलादेव प्रवर्तते ।
आदावेव तदाङ्कः स्याद् आमुखाक्षेपसंश्रयः" ॥

उ०—नन्दयति-प्रीणयति स्वेष्टदेवतां (नटगणो यत्र) सा नान्दी।

भावार्थः—जो "नाटकारम्भ" में अपने इष्टदेवता को प्रसन्न करने के लिए कविजन रचना करते हैं उसे "नान्दी" कहते हैं।

उसका लक्षण यह है—

"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता"॥

भावार्थ—"जिस श्लोकमें आशीर्वचनपरायण देव, ब्राह्मण, तथा राजाकी स्तुति की जावे उसे "नान्दी" कहते हैं"॥

प्र०—काव्य कितने प्रकारका होता है? तथा विक्रमोर्वशीय में कौनसा काव्य है? कैसे?

उ०—"दृश्यश्रव्यत्वभेदेन काव्यं तावद्द्विधा स्मृतम्"

दृश्य तथा श्रव्यभेद से काव्य दो प्रकारका होता है।

"विक्रमोर्वशीय" दृश्य तथा श्रव्यभेदोंमें 'दृश्य' काव्य है। क्योंकि यह देखा (खेला) जाता है।

---

(१) "तथाऽप्यवश्यं कर्त्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये।"

इस नियमके आधारपर कविजन नाटकारम्भमें 'नान्दी' की रचना अवश्य करते हैं।

(२) नान्दी मुख्यतः चार प्रकारकी होती है—

१ चतुष्पदा २ अष्टपदा ३ द्वादशपदा ४ षोडशपदेति, अभिनवभारत्यां यथाऽभिनवगुप्ताचार्य्यैर्नान्दीप्रकारा उक्ताः—

"अनेन अत्रतालानुगता त्रिपदा षट्पदा द्वादशपदेति।
चतुरस्रतालानुगता चतुष्पदाऽष्टपदाषोडशपदेति"
पृथक् त्रिविधैव, मुख्यातु चतुर्विधा।

नान्दीपदव्युत्पत्ति नाट्यप्रदीपमें इसी प्रकार लिखी है।

"नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः, कुशीलवाः पारिषदाश्च सन्ति।
यदस्मादलं सज्जनसिन्धुहंसी, तस्मादियं सा कथितेह नान्दी"॥

(३) दृश्यतेऽनेनेति दृश्यम्,

अथवा—दृश्यते संगीतादिभिर्यत्कविकल्पितमृत्तमित्यपि दृश्यम्।

जो कविकल्पितवृत्त संगीतद्वारा देखा जावे वह दृश्य कहलाता है।

"श्रूयतेऽनेनेति श्रव्यम्"

श्रव्य (सुनने योग्य ग्रन्थ) काव्य नाम से कहे जाते हैं।

दृश्य (रङ्गभूमिपर खलनेवाले ग्रन्थ) नाटक नामसे कहे जाते हैं।

प्र०—नायक किसे कहते हैं ? और उसका क्या लक्षण है ?

उ०—नयति "नी धातोर्ण्वुल" रसं स्वराष्ट्रभावं स्वांगतामिति यावत् ।

भावार्थः—जो अपने गुप्तचरोंद्वारा अपने राष्ट्रादिक "भावों" को भलीभांति लेता है उसे "नायक" कहते हैं । यथा—

"अनन्यसाधारणकान्तिकान्तम
लोकानुरक्तं प्रथितं मनुष्यम ।
कलैधितं नाटकमुख्यपात्रम्
नेताजनं तं प्रगदन्ति तज्ज्ञाः ॥

भावार्थः—अनन्य सुन्दर (जिसके तुल्य दूसरा न हो) तथा सम्पूर्णकलाधीत, लोकोंपर अनुरक्त प्रकट करनेवाला, प्रसिद्ध मनुष्य, नाटकका मुख्यपात्र "नेताजन" कहलाता है ।

उसका लक्षण यह है—

"त्यागी कृतिकुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्तस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता ॥"

भावार्थः—"दाता तथा कृतज्ञ, राज्यादिकार्य्यमें चतुर, दया तथा क्षमाशील, युवावास्थासम्पन्न, तजस्वीपुरुष "नायक" कहलाता है ।

प्र०—'अङ्क' 'सर्ग' तथा 'परिच्छेद' में क्या भेद है ?

उ०—'अङ्क' 'सर्ग' तथा 'परिच्छेद' में कोई भी भेद नहीं, वास्तव में एक ही अर्थका बोधन कराते हैं । परन्तु भरतकृत नाट्यप्रदीपमें—

"काव्ये सर्गाः समाख्याता नाट्ये चाङ्काः प्रकीर्तिताः" ।

ऐसा लिखा है । इसीसे कविजन नाटकों में अङ्क तथा काव्योंमें सर्ग की रचना करते हैं ।

अमरसिंह ने भी अपने कोश में इसी प्रकार लिखा है किः—

"सर्गः स्वभावनिर्मोक्षनिश्चयाध्यायसृष्टिषु" ।

सर्ग—स्वभाव, त्याग, निश्चय तथा ग्रन्थके अध्याय और सृष्टि को कहते हैं ।

(१) भावाः—सुखदुःखादयः । नायकजन स्वयं गुप्तचर होकर स्वराष्ट्रीयात्माओंके सुख दुःख ज्ञात कर लेते हैं ।

इतिहासोंमें भी लिखा है कि मरहट्टोंमें शिवाजी, यवनोंमें अकबर आदि राजाओंके इतिहासरूप प्रमाण मिलते हैं ।

उपरोक्त अमरके प्रमाणसे 'अध्याय तथा सर्ग' में कोई भी भेद नहीं है।

" परिच्छिद्यतेऽनेनेति परिच्छेदः " यह अलंकारिक ग्रन्थों में आता है, क्योंकि वहां गुण, दोष, रस, अलंकारों को परिच्छेद रूप से किया जाता है, यथा भरत ने लिखा है—

"परिच्छेदो भवत्यलङ्कारे"

'कवि विमर्श' तथा नाट्यप्रदीप में इन्हीं का वर्णन सविस्तर है परन्तु इनके अप्रकाशित होने पर भलीभांति हमें विदित नहीं होता।

प्र०—नाटक के भेदों में से "विक्रमोर्वशीय" की किस भेद में गणना की गई है। सलक्षण प्रति पादन करो ?

उ०—नाटक के भेदों में से "विक्रमोर्वशीय" को 'त्रोटक' कहा गया है जैसे साहित्य दर्पण में लिखा है:—

सप्ताष्टनवपञ्चाङ्कं दिव्यमानुषसंश्रयम।
त्रोटकं नाम तत्प्राहुः प्रत्यङ्कं सविदूषकम॥

भावार्थ—त्रोटक-नाट्यविशेष। इस में सात आठ नौ वा पांच अङ्क रहते हैं, सुर नर इन दोनों का सम्बन्ध इस में विद्यमान है और प्रत्येक में विदूषक की विद्यमानता दिखाई देती है। यही अर्थ "विक्रमोर्वशीय" में घटता है। अतः यह त्रोटक नाटक हुआ।

प्र०—"विक्रमोर्वशीय में नायक कौन है ? उसका लक्षण भी लिखो।

उ०—"नायक" पुरुरवा "धीरोदात्त संज्ञक " है।

उसका लक्षण यह है—

"अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः॥

भावार्थ—अपनी प्रशंसा न करनेवाला, क्षमायुक्त, अति गंभीर और सात्विक प्रकृतिवाला, दृढव्रत पुरुष धीरोदात्त कहलाता है।

प्र०—"विक्रमोर्वशीय" मे रीति, गुण, प्रस्तावना, रस कौनसे हैं ? लक्षण सहित लिखो ?

उ०—रीति पांचाली, उसका लक्षण यह है:—

समस्तपञ्चषपदामोजः कान्ति समन्विताम।
मधुरां सुकुमाराञ्च पाञ्चाली कवयो विदुः॥

जिस में पांच छः पादों का समास हो, ओज और कान्ति नामक गुण से जो युक्त हो और मधु एवं सुकुमार हो उस रीति

को कवि लोग 'पाञ्चाली' कहते हैं,

"गुण" माधुर्य्य है उसका लक्षण इस प्रकार है:—

चित्तद्रवी भावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते ।

भावार्थ—जिस में अन्तः करण द्रुत होजाये ऐसा आनन्द विशेष-माधुर्य कहाता है ।

"प्रस्तावना" प्रयोगातिशय है उसका लक्षण यह है—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ॥

"शृङ्गाररस" प्रधान है हास्यादि गौण रूप से हैं,

शृङ्गार का लक्षण यह है—

शृङ्गं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः ।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृङ्गार इष्यते ॥

हास्य का लक्षण यह है—

विकृताकारवाग्वेशचेष्टादेः कुहकाद्भवेत् ।
हास्यो हासस्थायिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः ॥

प्र०—सूत्रधार किसे कहते हैं ? तथा उसका लक्षण क्या है ?

उ०—सूत्रं-प्रयोगानुष्ठानं, धारयति यः स "सूत्रधारः" नाटकीय-कथासूचको नटप्रधानः ।

भा०—जो नाटक का सर्व वृत्त धारण करके आरम्भ में सामाजिक जनों को ज्ञात करा दे उसे "सूत्रधार" कहते हैं ।

उसका लक्षण यह है—

वर्त्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन उच्यते ।
रङ्गभूमीं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥

भावार्थ—जो प्रथम ही वर्तमान वृत्त को रङ्गभूमि में आकर कह दे उसे "सूत्रधार" कहते हैं ।

प्र०—विदूषक किसे कहते हैं ? तथा उसका लक्षण क्या है ?

उ०—विशेषेण दूषयति-हास्येनवैकृतंकरोति वेशोपचारादिनेत्यर्थः।

भा०—जो हास्यद्वारा सबको दूषित करे उसे "विदूषक" कहते हैं ।

(१) साहित्यदर्पण में इसका लक्षण इसी प्रकार लिखा है—

"नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्याभधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥"

उसका लक्षण यह है—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरति विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः॥

भा०—अपने कार्य में कुशल और शरीर में पुष्ट, वेशादि परिवर्तनमें तथा भाषादि विज्ञानमें चतुर, लड़ाई आदि को मिटानेवाला वसन्तऋतु के एक पुष्पाभिधानवाला "विदूषक" कहलाता है।

प्र०—कञ्चुकी का लक्षण लिखो।

उ०—अन्तः पुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्य्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते॥

भा०—सर्व कार्य में कुशल तथा वृद्ध ब्राह्मण, अन्तःपुर (राजगृह) में रहनेवाला, " कञ्चुकी " कहलाता है।

मातृगुप्ताचार्य्यों ने इसका लक्षण इसी प्रकार कहा है।

" ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः कञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः॥

भा०—कामादि दोषों से रहित, ज्ञान-विज्ञान में कुशल, तथा सत्यवादी "कञ्चुकी" कहलाते हैं॥

प्र०—प्रतीहार किसे कहते हैं ? और उसका क्या लक्षण है ?

उ०—प्रतिहरति—शत्रुवृत्तानि संधिविग्रहादीनीत्यर्थः, यः सः।

भा०—जो शत्रुका सन्धि विग्रहसम्बन्धी वृत्त गुप्तरीति से लेकर राजा को ज्ञात करा दे उसे "प्रतीहार" कहते हैं॥

उसका लक्षण यह है—

संधिविग्रहसम्बन्धं नानाकार्यसमुत्थितम्।
निवेदयन्ति ये कार्य्यं प्रतीहारास्तु ते स्मृताः॥

भा०—जो सन्धि अथवा विग्रहसम्बन्धी कार्य्य अपने हाथ में लें और राजा को गुप्त वृत्तकी सूचना दें उसे "प्रतिहार" कहते हैं।

प्र०—प्रस्तावना किसे कहते हैं ? लक्षण सहित प्रतिपादन करो।

उ०—प्रस्तूयते सूच्यते प्रकान्तं वस्तु अनयेति "प्रस्तावना।"

---

(१) सुधाकरमें—"विकृताङ्गवचोवेषैर्हास्यकारी विदूषकः।"

(२) पुरुषोंमें प्रतीहार गुप्तचर होता है, तथा स्त्रियोंमें प्रतीहारी। अतः प्रतीहारके लक्षणवाली प्रतीहारी कही जाती है।

भा०—जहांपर प्रस्तुत कथाकी सूचना दी जावे उसे "प्रस्तावना" (आमुख) कहते हैं।

उसका लक्षण यह है —

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिता संलापं यत्र कुर्वते॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा॥

भा०—जहां नटी, विदूषक, अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधारके साथ अपने अभिप्राय को विचित्र वाक्योंसे प्रस्तुत कथा कहें उसे 'आमुख' (प्रस्तावना) कहते हैं।

प्र०—विष्कम्भक तथा प्रवेशक का क्या लक्षण है ?

उ०—प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥

भा०—प्रवेशक भी विष्कम्भकके सदृश होता है परन्तु इसका प्रयोग नीच पात्रों के द्वारा कराया जाता है, इसमें उक्तियां उदात्त (रमणीय) नहीं होतीं और यह दूसरे अंकके आगे किया जाता है—

यथा—"वेणी संहारके चौथे अंकमें राक्षसोंकी जोड़ी"।

प्र०—नेपथ्य किसे कहते हैं ? तथा उसका क्या लक्षण है ?

उ०—नेपथ्य उस स्थान को कहते हैं, जहां पर पात्र अपने नाटकीय वृत्तकी सूचना दे।

उसका लक्षण यह है—

"नेपथ्यं स्याज्जवनिका रङ्गभूमिः प्रसाधनम्"

भा०—रङ्गभूमि (नाटकीय कथा सूचक स्थान "स्टेज़") को नेपथ्य तथा जवनिका कहते हैं।

प्र०—"स्वगत" किसे कहते हैं ?

उ०—जो पात्र किसी वृत्तका संकल्प करे उसे 'स्वगत' कहते हैं।

यथा—"अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्"

भा०—जिस बात अथवा वस्तुका अश्राव्य रूपसे प्रयोग किया जावे उसे "स्वगत" कहते हैं।

प्र०—"प्रकाश" किसे कहते हैं ? तथा उसका क्या लक्षण है ?

उ०—जो बात पात्र कहे, तथा सामाजिकजनों को स्पष्टतया सुनाई दे उसे "प्रकाश" कहते हैं।

उसका लक्षण यह है—

"सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्"

प्र०—प्रथमाङ्क के पात्र लिखो: ।

उ०—सूत्रधार, नटी, राजा, रम्भा, सूत, सहजन्या, मेनका, चित्रलेखा, उर्वशी, चित्ररथ ।

प्र०—द्वितीयाङ्क के पात्र लिखो:—

उ०—विदूषक, चेटी, राजा, चित्रलेखा, उर्वशी, रम्भा, औशीनरी देवी ।

प्र०—तृतीयाङ्क के पात्र लेखो: ।

उ०—भरतमुनि के दो शिष्य, कंचुकी, राजा, विदूषक, उर्वशी, चित्रलेखा, औशीनरी देवी, चेटी ।

प्र०—चतुर्थाङ्क के पात्र लिखो: ।

उ०—सहजन्या, चित्रलेखा, राजा, उर्वशी ।

प्र०—पञ्चमाङ्क के पात्र लिखो: ।

विदूषक, राजा, रेचक, सूत, उर्वशी, कञ्चुकी, तापसी, कुमार, नारद, रम्भा, दो वैतालिक ।

प्र०—प्रथम अङ्क की कथा लिखो—

सूत्रधार की सूचना होजाने पर मेनकादि अप्सरा-गण राजा पुरूरवा को कहती हैं कि हमारी प्रिय-सखी उर्वशी कुबेर-पुरी से चित्रलेखा के संग लौट रही थी, मार्ग के बीच एक असुर उस को लेकर चला गया, राजा ने दानवों को परास्त कर उर्वशी को छुड़ाया, उर्वशी का अपनी प्रियसखियों से मिलना, इसके बाद राजा और उर्वशी के मध्य पूर्वानुराग उत्पन्न होने पर अपने २ घर की ओर प्रस्थान करना ॥

प्र०—द्वितीयाङ्क की कथा लिखो:—

कामदेव के बाणों से पीड़ित होकर राजा विदूषक के साथ प्रमद-वन में घूम रहा था, 'तिरस्कारिणी' विद्या के प्रभाव से छिप कर चित्रलेखा और उर्वशी ने राजा की बातें सुनकर प्रेम-पत्र प्रदान किया । प्रकट होकर जब चित्रलेखा और उर्वशी राजा के साथ बात चीत कर रही थीं तो इतने में (नेपथ्य में) देवदूत ! चित्रलेखे ! उर्वशी से शीघ्रता करने को कहो, भरत मुनि ने शृङ्गा-

रात्रि आठ रसात्मक लक्ष्मी-स्वम्बर नामक जिस रूपक को रच कर तुम्हारी शिक्षा के लिये प्रदान किया था, इस समय देवेन्द्र ने लोकपालों के सहित मिल कर उस सुललित अभिनय देखने की इच्छा की है" इस सूचना को सुनकर विषाद करती हुई अपूर्ण मनोरथा उर्वशी स्वर्ग को चली गई,

उर्वशी को देख कर विस्मयान्वित राजा की आंखों से उर्वशी-दत्त प्रेम-पत्र ओझल होगया, चेटी के साथ जब औशीनरी आरही थी तब मार्ग में उस पत्र को प्राप्त कर राजा को दे चली गई पत्र प्राप्ति से हर्षित होकर राजा और विदूषक अपने स्थान को चले गये।

प्र०—तृतीयाङ्क की कथा लिखो :—

भरत मुनि के दो शिष्यों के परस्परालाप में एक शिष्य ने कहा इन्द्रपुरी में उर्वशी ने लक्ष्मी का और मेनका ने वारुणी का अभिनय किया था, मेनकाने उर्वशीसे पूछा-त्रिलोक-स्थित जो सब पुरुष और केशव समेत जो लोकपाल उपस्थित हुए थे इन में किस के प्रति तुम्हारा चित्त नष्ट हुआ है ? पुरुषोत्तम उच्चारण करने में उर्वशीके मुख से "पुरूरवा" उच्चरित हुआ, ऐसा सुन कर भरत मुनि ने उर्वशी को शाप दिया कि "तुमने मेरा उपदेश उलंघन किया है, इसलिए तुम को दिव्य ज्ञान प्राप्त नहीं होगा' तब उर्वशी को लज्जा से शिर झुकाये देख कर इन्द्रने कहा-जिन के प्रति तुम्हारा अनुराग बन्धा है, वे राजर्षि पुरूरवा युद्ध में हमारे सहायक हैं, उनका उपकार करना मेरा कर्त्तव्य है, अत एव जब तक उन के सन्तान न हो, तब तक तुम मेरे कथनानुसार उनके संग वास करो। इतने में राजा और विदूषक का मणि-गृह में आना, सखि सहित उर्वशी का अभिसार वेश में औशीनरी देवी का प्रसादन व्रत व्याज से वहां जाना, उर्वशी का रोहिणी संगत चन्द्रमा कञ्चुकी-विदूषक और राजा की पूजा कर चला जाना, उर्वशी का राजा के निकट आना, चित्रलेखा का स्वर्गारोहण।

प्र०—तुरीयाङ्क की कथा लिखो :—

चित्रलेखा सहजन्या को कहती है—

उर्वशी राजर्षि को संग लेकर कैलाश पर्वत के शिखर के एक प्रान्त वाले गन्ध मादन वन में विहार करने को गई, वहां मन्दा-

किनी के किनारे वालुका द्वारा क्रीड़ा पर्वत बना कर उदकवती नाम वाली एक विद्याधर की बालिका खेल रही थी; उसी समय राजर्षि ने उस बालिकाकी ओर अनुराग से दृष्टि डाली थी, इस लिये प्रिय सखी उर्वशी राजा पर क्रोधित हुई थी, अन्त में कुमार वन में प्रवेश करने पर उर्वशी का रूप लावण्य लतिका रूप में परिणत होगया, संगममणि ही उस के छुड़ाने का उपाय है, ऐसा कह विरह से कातर राजा का बादल; कोयल, मोर, हंस, हरिण, भौंरा हाथी, पर्वत, नदियों से अपनी प्रियोदन्त जिज्ञासा के बाद सङ्गम मणि को प्राप्त कर लता-भूत प्रिया का आलिंगन करते हुए शाप-मुक्ता उर्वशी के साथ मिलाप होगया।

प्र०—पञ्चमाङ्क की कथा लिखो :—

गृद्ध का सङ्गममणि हरना, 'आयु' कुमार का पिता के साथ परिचय होना, उस के दर्शन से प्रसन्न हुए राजा का उर्वशी को बुलाना, उर्वशी का विषाद प्रकट करना जब राजा वन-प्रस्थान करने को तैयार होरहा था, तब नारद ने आकर इन्द्र की आज्ञा सुनाना, महेन्द्रादेश पाकर राजा ने 'आयु' कुमार को युवराज के पद पर अभिषिक्त करके उर्वशी के साथ सुख-पूर्वक समय व्यतीत करने लगा।

प्र०—आकाश भाषित, अपवारित, पूर्वरङ्ग, करुण, विट—इन के लक्षण लिखो

उ०— आकाश भाषित—

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्र।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्॥

अपवारित,—

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापावारितम्॥

पूर्वरङ्ग—

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते॥

करुणः—

"इष्टनाशादनिष्टाप्तेः शोकात्मा करुणः"

विट—

सम्भोगहीनसम्पद् विटस्तु धूर्त्तः कलैकदेशज्ञः।
वेशोपचारकुशलो वाग्मी मधुरोऽथ बहुमतो गोष्ठ्याम्॥

॥ प्रश्नपत्रम् ॥



समयो होरासार्द्धम, विक्रमोर्वशीये प्रश्नाः, पूर्णाङ्काः 50.

१ (क) महाकवि कालिदास का समय निर्णय करोः—

(ख) 'विक्रमोर्वशीय' पद का वाच्यार्थ लिखकर यह भी बताओ कि इसकी कथा कहां से लीगई है?

२ (क) द्वितीयाङ्क कथा लिखकर अधोलिखितों के लक्षण लिखोः—

"प्रस्तावना" "विदूषक" "कंचुकी" "विष्कम्भक"

(ख) इनका परिचय दोः—

"पुरूरवा" "चित्रलेखा" "नारद"

३ निम्नलिखित वाक्यों का भावार्थ सरल हिन्दी-भाषा में लिखोः—

(अ) न हि अक्षिदुखितः सम्मुखे दीपशिखां सहते।

(आ) अनुत्सुकता खलु विक्रमालंकारः।

(इ) परिभवास्पदं दशाविपर्ययः।

(ई) अनिर्वेदप्राप्याणि श्रेयांसि।

४ नीचे लिखे पद्यों का आशय अपनी भाषा में स्पष्ट करोः—

(क) प्रियवचनशतोऽपि योषितां,
दयितजनानुनयो रसादृते।
प्रविशति हृदयं न तद्विदां,
मणिरिव कृत्रिमरागयोजितः॥

(ख) स्वार्थात् सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव।

(ग) विभावितैकदेशेन स्तेयं यदभियुज्यते।

(घ) यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद् रसवत्तरम्।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः॥

नोट—उत्तर सम्बद्ध तथा सारगर्भित-भाषा में हों।



पात्र–परिचय।

पुरूरवा—प्रतिष्ठानपुर का राजा तथा प्रस्तुत 'त्रोटक' का नायक।

सूत्रधार—नाटकारम्भ में सूचना देनेवाला प्रधान नट।

सूत—राजा का सारथी।

चित्ररथ—गन्धर्व-विशेष।

विदूषक—हास्य-कारक पात्र तथा नायक-सखा।

कञ्चुकी—अन्तः पुर चारी वृद्धब्राह्मण।

नारद—प्रसिद्ध देवर्षि।

आयु—पुरूरवा का पुत्र।

रेचक—(किरात) नायक का दास।

उर्वशी—विख्यात स्वर्ग-वेश्या तथा नायिका।

रम्भा—प्रसिद्ध अप्सरा।

मेनका
सहजन्या
चित्रलेखा } नायिका की सखियाँ।

नट दो वैतालिक-दो भरत-शिष्य।

औशीनरी देवी-चेटी-तापसी।



॥ श्रीः ॥

महाकविकालिदासप्रणीतम्

विक्रमोर्वशीयम्

त्रोटकम्

संस्कृतहिन्दीटीकासहितम् ।

प्रथमोऽङ्कः ॥

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः ।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः ॥ (१)

(१) अन्वयः—वेदान्तेष्विति । वेदान्तेषु यं रोदसी व्याप्य स्थितं एकपुरुषं आहुः यस्मिन् ईश्वर इति अनन्यविषयः शब्दः यथार्थाक्षरः, नियमितप्राणादिभिः मुमुक्षुभिः यश्च अन्तर् मृग्यते, स स्थिरभक्तियोगसुलभः स्थाणुः वः निःश्रेयसाय अस्तु ।

व्याख्या—वेदान्तेषु वेदादिसच्छास्त्रेषु यं परमात्मनं रोदसी द्यावापृथिव्यौ व्याप्य अधिष्ठाय स्थितं विद्यमानं एकपुरुषं 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इति आहुः प्रत्यपादयन्, यस्मिन् परमेश्वरे ईश्वर इति अनन्यविषयः एतन्मात्रवाचकः शब्दः यथार्थाक्षरः सार्थकः, नियमिता अन्तर्निरुद्धाः प्राणादयो प्राणापानसमानोदानव्यानाख्या वायवो यैरेतादृशैर्मुमुक्षुभिः योगिभिः मृग्यते अन्विष्यते, स स्थिरभक्तियोगसुलभः स्थिरा दृढा या भक्तिस्तस्याः योगेन संयोगेन सुलभः सुगमः स्थाणुः महादेवः वो युष्माकं निःश्रेयसाय कल्याणाय अस्तु भवतु । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः, तल्लक्षणं यथा वृत्तरत्नाकरे—'सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥,,

हि० भावार्थ—वेदान्त में जिन्हें पृथ्वी और आकाश में व्याप्त एक पुरुष प्रतिपादन किया गया है ईश्वर शब्द जिस परब्रह्म परमात्मा में पूर्ण-रूपसे घटित होता है, प्राणादि वायुओं को रोकने वाले योगि लोग जिस को हृदय के भीतर ढूंढते हैं और निश्चल भक्ति योग के द्वारा जिन को सहज ही में प्राप्त किया जाता है वे भगवान् शंकर तुम्हारा कल्याण करें ।

नान्द्यन्ते सूत्रधारः ।

सूत्र—अलमतिविस्तरेण । (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) मारिष! परिषदेषा पूर्वेषां कवीनां दृष्टरसप्रबन्धा, अहमस्यां कालिदासग्रथितवस्तुना नवेन त्रोटकेनउपस्थास्ये, तदुच्यतां पात्रवर्गः, स्वेषु स्थानेषु अवहितैर्भवितव्यं भवद्भिरिति ।

नटः—(प्रविश्य) यथाज्ञापयति देवः।

सूत्र—यावदस्यामार्य्यविदग्धमिश्रान् शिरसा प्रणिपत्य विज्ञापयामि ।

प्रणयिषु दाक्षिण्यवशादथवा सद्वस्तुबहुमानात् ।
शृणुत जनाः! अवधानात् क्रियामिमां कालिदासस्य ॥ २ ॥

नान्दी के पीछे सूत्रधार का प्रवेश ।

सूत्र- अब बहुत विस्तार करने की आवश्यकता नहीं, (नेपथ्य की ओर देखकर) मारिष! इस सभा के सभासदों ने प्राचीन कवियों के रचे हुए सम्पूर्ण सरस नाटक देखे हैं, मैं इस समय कालिदासकृत नवीन त्रोटक नाटक को खेलूँगा, अत एव सभी प्रधान २ पात्रों को अपने २ स्थान पर तैयार होकर आने के लिये कहदो ।

नट—(प्रविष्ट होकर) आपकी जो आज्ञा हो ।

सूत्र—तो मैं अच्छे वंश से पैदा हुए चौसठ कलाओं के ज्ञाता समस्त सभ्यपुरुषों को शिर झुकाकर प्रणाम-पूर्वक विज्ञप्ति करता हूँ कि :—

(२) अन्वयः—प्रणयिष्विति । हे जनाः! प्रणयिषु दाक्षिण्यवशात् अथवा सद्वस्तुबहुमानात् कालिदासस्य इमां क्रियां अवधानात् शृणुत ।

व्याख्या—हे जनाः! हे नाट्यरसरसिकाः! प्रणयिषु प्रियमित्रेषु दाक्षिण्यवशात् सानुकूलतावशात् अथवा सद्वस्तु सदितिवृत्तं बहुमानात् आदरातिशयात् कालिदासस्य तदाख्यकवेः इमां क्रियां नाटकरूपां कृतिं अवधानात् अप्रमादात् कर्णगोचरीकुरुत ॥

भावार्थ—हे सज्जनवृन्द! प्रणयी जनों की प्रति दयावशत अथवा भली वस्तु के लिये सन्मान दिखाने के हेतु आप सावधान होकर कालिदास के बनाये हुए प्रबंध को सुनो।

---

(१)नट के कथन में आर्यजनों के प्रति 'मारिष' संबोधन प्रयुक्त होता है ॥

(नेपथ्ये । अज्जा ! परित्ताअध परित्ताअध (क))

सूत—अये ! किमयमकस्माद्विमानचारिणामाकाशे करुणध्वनिः श्रूयते ? (विचिन्त्य) आं ज्ञातम्, भवतु ।

ऊरूद्भवा नरसखस्य मुनेः सुरस्त्री
कैलासनाथमुपसृत्य निवर्त्तमाना ।
वन्दीकृता विबुधशत्रुभिरर्द्धमार्गे
क्रन्दत्यतः शरणमप्सरसां गणोऽयम् ॥ (३)

इति निष्क्रान्तौ ।

प्रस्तावना ।

(क) आर्य्याः ! परित्रायध्वं परित्रायध्वम् ।

(नेपथ्य में आर्यगण ! बचाओ ! बचाओ !)

सूत्र—अहो ! क्या यह आकाश मार्ग में घूमने वाले यात्रियों के रोने की सी ध्वनि सुन पड़ती है ? (समझकर) ओः ! समझ लिया । वही होगा ।

(३) अन्वयः—ऊरूद्भवा इति । नरसखस्य मुनेः ऊरूद्भवा सुरस्त्री कैलासनाथं उपसृत्य निवर्त्तमाना अर्द्धमार्गे विबुधशत्रुभिः वन्दीकृता, अतः अयं अप्सरसां गणः शरणं क्रन्दति ।

व्याख्या—नरस्य तदाख्यस्य मुनेः ऋषेः सखा मित्रं तस्य मुनेः नारायणस्य ऊरूद्भवा वक्षःस्थलोत्पन्ना सुरस्त्री स्वर्गस्त्री उर्व्वशीत्यर्थः, कैलासनाथं कुबेरं उपसृत्य स्तुतिवन्दनादिकं विधाय निवर्त्तमाना प्रत्यागच्छन्ती अर्द्धमार्गे अर्द्धे पथि विबुधशत्रुभिः दानवैः वन्दीकृता बद्धा, अतः कारणात् अयमप्सरसां गणः स्वर्गस्त्रीसमूहः शरणं क्रन्दति कमप्याश्रयमुद्दिश्य आत्मत्राणहेतोः रोदितीत्यर्थः, वसन्ततिलकं वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—"उक्ता वसन्ततिलकास्तभजा जगौ गः ॥

भावार्थ—नर सखा नारायण मुनि के ऊरू से उत्पन्न सुर-बाला उर्व्वशी कुबेर के पास गई थी लौटते समय आधे रास्ते में दानवों ने उसे घेर लिया है, इसलिये सहायता पाने के लिये उसकी संगिनी अप्सरायें आर्त्तनाद कर रही हैं ।

(इतना कह सूत्रधार और नट चले गये)

प्रस्तावना ।

(ततः प्रविशन्ति अपटीक्षेपेण अप्सरसः ।)

अप्सरसः—अज्जा ! परित्ताअध परित्ताअध, जो अमरपक्खवादी, जस्स वा अम्बरदले गदी अत्थि । (ख)

(ततः प्रविशति अपटीक्षेपेण रथारूढो राजा सूतश्च ।)

राजा—अलमाक्रान्दितेन, सूर्योपस्थानसंनिवृत्तं पुरूरवसं मामेत्य कथ्यतां, कुतो भवत्यः परित्रातव्या इति ।

रम्भा—असुरावलेवादो । (ग)

राजा—किमसुरावलेपेन भवतीनामपराद्धम् ?

रम्भा—सुणादु महाराओ; जा तवोबिसेससङ्किदस्स सुउमारं पहरणं महेन्दस्स, पच्चादेसो रूवगब्बिदाए सिरिगौरिए, अलङ्कारो (घ)

(ख) आर्य्याः ! परित्रायध्वं परित्रायध्वं, योऽमरपक्षपाती, यस्य वा अम्बरतले गतिरस्ति ।

(ग) असुरावलेपात् ।

(घ) शृणोतु महाराजः, या तपोविशेषशङ्कितस्य सुकुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य, प्रत्यादेशो रूपगर्विताया: श्रीगौर्य्याः, अलङ्कारः —

(विना ही यवनिका पतन के अप्सराओं का प्रवेश)

अप्सरा—हे आर्यगण ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! जो देवताओं के पक्षपाती अथवा जो आकाश में भ्रमण कर सक्ते हों , वे हमारे बचाने में समर्थ होंगे ।

(विना ही जवनिका गिरे रथ पर सवार हुए राजा और सारथी का प्रवेश)

राजा—अब रोने की आवश्यकता नहीं है , मैं पुरुरवा सूर्योपस्थानसे संनिवृत्त होकर आता हूं , बताओ किस व्यक्ति से तुम्हें बचाना होगा ?

रम्भा—असुरों के अत्याचार से ।

राजा—क्या राक्षस तुम्हारे ऊपर अत्याचार करने लगे हैं ?

रम्भा—महाराज ! सुनिये देवराज इन्द्र ने किसी व्यक्ति की तपस्या से डर कर जिस को अपना सुकुमार बाण स्वरूप किया है जिस की सुन्दरता को देखकर अपनी सुन्दरता का अभिमान करने वाली पार्वती को भी लज्जा आती है, जो स्वर्ग पुरी की शृङ्गार स्वरूपा—

सग्गस्स, सा णो पिअसही कुबेरभवणादो णिअत्तमाणा केणावि दाणवेण चित्तलेहादुदिआ अद्धपधज्जेव णिग्गिहिदा। (घ)

राजा—परिज्ञायते कतमेन दिग्विभागेन गतः स जाल्मः?

अप्सरसः—इसाणीए दिसाए। (ङ)

राजा—तेन हि मुच्यतां विषादः, यतिष्ये वः सखीप्रत्यानयनाय।

अप्सरसः—(सहर्षं) सरिसम् एदं सोमवंससम्भवस्स। (च)

राजा—क्व पुनर्मां भवत्यः प्रतिपालयिष्यन्ति?

अप्सरसः—एदस्सिं हेमकूडसिहरे (छ)

राजा—सूत! ऐशानीं दिशं प्रति प्रेरयाश्वानाशुगमनाय।

सूतः—यथा आज्ञापयति आयुष्मान्। (इति तथा करोति।)

स्वर्गस्य, सा नः प्रियसखी कुबेरभवनात् निवर्त्तमाना केनापि दानवेन चित्रलेखा-द्वितीया अर्द्धपथ एव निगृहिता। (घ)

(ङ) ऐशान्या दिशा।

(च) सदृशमेतत् सोमवंशसम्भवस्य।

(छ) एतस्मिन् हेमकूटशिखरे।

हमारी प्रियसखी है, वह उर्वशी कुबेरपुरी से चित्रलेखा के साथ लौट रही थी, एक असुर उसको मार्ग से लेकर चला गया।

राजा—वह निर्दयी असुर किस ओर को गया है? जानती हो?

अप्सरा—हाँ! वह ईशान कोण की ओर को गया है।

राजा—तो शोक मत करो। मैं तुम्हारी सखी के छुड़ा लाने की चेष्टा करूंगा।

अप्सरा—(आनन्द के साथ) चन्द्रवंशोत्पन्न पुरुष के लिये यही कार्य उपयुक्त ही है।

राजा—तुम किस स्थान पर मेरी बाट देखो गी?

अप्सरा—इसी हेमकूट पर्वत के शिखर पर रहेंगी।

राजा—सूत! घोड़ों को शीघ्र गति से ईशान कोण की ओर चलाओ?

सूत—आयुष्मन्! आपकी जो आज्ञा। (उसी प्रकार वेग से घोड़ों को चलाता है)

राजा—[रथवेगं रूपयित्वा] साधु साधु, अनेन रथवेगेन पूर्वप्रस्थितं वैनतेयम् अपि आसादयेयम् । मम हि—

अग्रे यान्ति रथस्य रेणुपदवीं चूर्णीभवन्तो घना-
श्चक्रभ्रान्तिररान्तरेषु वितनोत्यन्यामिवारावलीम् ।
चित्रारम्भविनिश्चलं हयशिरस्यायामवच्चामरं
यन्मध्ये समवस्थितो ध्वजपटः प्रान्ते च वेगानिलात् (४)

(इति निष्क्रान्तौ राजा सूतश्च ।)

सहजन्या—हला गदो राएसी; ता अम्हेबि जधासन्दिट्टं पदेसं गच्छम्ह । (ज)

(ज) अयि ! गतो राजर्षिः, तद् वयमपि यथासन्दिष्टं प्रदेशं गच्छामः ।

राजा—(रथ के वेग को वर्णन करके) साधु ! साधु ! इस रथ की चाल से तो हमारे से पहिले चले हुए गरुड़ के समीप भी पहुंचा जा सक्ता है । मेरे तो

(४) अन्वयः—अग्रे इति । रथस्य अग्रे चूर्णीभवन्तः घनाः रेणुपदवीं यान्ति, चक्रभ्रान्तिः अरान्तरेषु अन्यां आरावलीं इव वितनोति, चित्रारम्भविनिश्चलं चामरं हयशिरसि आयामवत् (वर्तते), वेगानिलात् ध्वजपटः यन्मध्ये प्रान्ते च समवस्थितः ।

व्याख्या—रथस्य अग्रे पार्श्वे चूर्णीभवन्तः क्षोदीभवन्तः घनाः मेघाः रेणुपदवीं धूलीसाम्यं यान्ति प्राप्नुवन्ति चक्राणां भ्रान्तिर्भ्रमणं अराणां चक्रमध्यगतेन्धनखण्डानां अन्तरेषु मध्येषु अन्यां अपरां आरावलीं इव आरपङ्क्तिमिव वितनोति विस्तारयति, चित्रारम्भविनिश्चलं चित्रन्यस्तमिवाचलं चामरं हयशिरसि अश्वमूर्द्धनि आयामवत् दीर्घं दृश्यते इति भावः, वेगानिलात् पवनवेगात् ध्वजपटः पताकावस्त्रं यस्य रथस्य मध्ये प्रान्ते च उभयोः पार्श्वयोश्च समवस्थितः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥

भावार्थ—रथ के आगे मेघ चक्र द्वारा चूर्णित होकर पृथ्वी की धूली के समान हुए जाते हैं, अतिवेग से चलने के कारण रथ के चक्रों में अरण (आर) ही दृष्टि-गोचर होते हैं, घोड़ों के शिर पर लम्बे चंवर चित्र की तरह मालूम होते हैं, वायु के वेग से रथ का झण्डा रथ के दोनों ओर प्रतीत होता है ॥

(राजा और सारथी चले जाते हैं)

सहजन्या—सखि ! राजर्षि चले गये; अत एव आओ, हम भी अपने अभीष्ट स्थान को प्रस्थान करें ।

मेनका—सहि ! एव्वं करेम्ह । (झ)

(इति हेमकूटशिखरे नाटयेन अधिरोहन्ति ।)

रम्भा—अवि नाम सो राएसी उद्धरे णो हिअअसल्लम ? (ञ)

मेनका—सहि ! मा दे संसओ भोदु । (ट)

रम्भा—णं दुज्जआ दाणवा । (ठ)

मेनका—उअत्थिदसंपहारो महेन्दो वि मज्झमलोआदो सबहुमाणमाणाविअ तं ज्जेव विबुधविजआअ सेणामुहे निओएदि । (ड)

रम्भा—सव्वधा विजई भोदु । (ढ)

मेनका—(क्षणमात्रं स्थित्वा) । हला ! समस्ससध समस्ससध, एस उल्लसिदहरिणकेदणो तस्स राएसिणो सोमदत्तो रहो दीसदि ; (ण)

(झ) सखि ! एवं कुर्मः ।

(ञ) अपि नाम स राजर्षिः उद्धरेत् नो हृदयशल्यम् ?

(ट) सखि ! मा ते संशयो भवतु ।

(ठ) ननु दुर्जया दानवाः ।

(ड) उपस्थितसंप्रहारो महेन्द्रोऽपि मध्यमलोकात् सबहुमानमानाय्य तमेव विबुधविजयाय सेनामुखे नियोजयति ।

(ढ) सर्वथा विजयी भवतु ।

(ण) अयि ! समाश्वसित समाश्वसित, एष उल्लसितहरिणकेतनः तस्य राजर्षेः सोमदत्तो रथो दृश्यते,—

मेनका—सखि ! उचित है चलिये ।

(यह कह कर हेमकूट के शिखर पर लीला के साथ चढ़ती हैं)

रम्भा—वे राजर्षि क्या हमारे हृदय के भीतर गढ़े हुए उर्वशी के वियोग रूपी कांटे को निकालेंगे ?

मेनका—सखि ! इस विषय में तुझे संशय नहीं करना चाहिये ।

रम्भा—असुरगण अत्यन्त कठिनता से जीते जासकते हैं ।

मेनका—जब संग्राम हुआ था, तब देवराज ने पृथ्वी से बड़े आदर के साथ राजर्षि को ले जाकर देवताओं की विजय के कारण सेना के आगे सेनापति पद पर नियुक्त कर दिया था ।

रम्भा—उन की हर प्रकार से विजय हो ।

मेनका—(कुछ समय चुप होकर) सखि ! तुम विश्वास रक्खो । यह देखो—आकाश मार्ग में कुरंग-ध्वज सोमदत्त नामक उन का सुन्दर रथ दिखाई दे रहा है,—

ण एसो अकिदत्थो पडिणिउत्तिस्सदित्ति तक्केमि । (ण)

(निमित्तं सूचयित्वा अवलोकयन्त्यः स्थिताः ।)

(ततः प्रविशति रथारूढो राजा सूतश्च, भयनिमीलिताक्षी चित्रलेखादक्षिणहस्ताऽवलम्बिता उर्वशी च ।)

चित्र—**सहि ! समस्सस समस्सस । (त)**

राजा—**सुन्दरि ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।—**

गतं भयं भीरु ! सुरारिसम्भवं
त्रिलोकरक्षी महिमा हि वज्रिणः ।
तदेतदुन्मीलय चक्षुरायतं
निशाऽवसाने नलिनीव पङ्कजम् ॥ (५)

नैषोऽकृतार्थः प्रतिनिवर्त्तिष्यते इति तर्कयामि । (ण)

(त) सखि ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

अतः मुझे प्रतीत होता है कि महाराज विफल-मनोरथ होकर नहीं लौटे हैं ।

(इक टक लोचनों से सब का रथ को देखना)

(रथ पर चढे राजा और सूत का तथा भय से मिची हुई आंखों वाली चित्रलेखा का दहिना हाथ पकड़े उर्वशी का प्रवेश ।)

चित्र—**सखि ! सावधान हो ! सावधान हो !**

राजा—**सुन्दरि ! सावधान हो ! सावधान हो !**

(५) **अन्वयः**—गतमिति । हे भीरु ! सुरारिसंभवं भयं गतं हि वज्रिणः महिमा त्रिलोकरक्षी, तत् निशावसाने नलिनीपङ्कजमिव एतत् आयतं चक्षुः उन्मीलय ।

व्याख्या—हे भीरु ! भययुक्ते ! सुरारिसंभवं दानवभयं भयकारणं गतं नष्टम् । हि यतः वज्रिणः इन्द्रस्य महिमा माहात्म्यं त्रिलोकरक्षी त्रिभुवनकल्याणकरमित्यर्थः । तत् तस्माद्धेतोः निशावसाने रात्रिशेषे नलिनी पङ्कजमिव पद्मपलाशमिव एतत् आयतं दीर्घं चक्षुः नेत्रमुन्मीलय । वंशस्थविलं छन्दः, " जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ॥ "

भावार्थ—**हे भयशीले ! अब राक्षसों का भय दूर हो गया है, वज्र को धारण करने वाले इन्द्र की महिमा ही तीन लोक की रक्षा करने वाली है, रात के अन्त में विकसित पद्मपलाश की तरह तुम भी अपने अपाङ्ग विस्तृत नेत्रों को खोलो ।**

चित्र—अम्महे, उस्ससिदमेत्तसम्भाविदजीविदा अज्जाबिसण्णम् एसा ण पडिवज्जदि। (थ)

राजा—बलवदत्र ते सखी परित्रस्ता। तथा हि,—

मन्दारकुसुमदाम्ना गुरुरस्याः सूच्यते हृदयकम्पः।
मुहुरुच्छ्वसता मध्ये परिणाहवतोः पयोधरयोः॥ (६)

चित्र—(सकरुणम्) हला उब्बासि! पज्जबत्थाबेहि अत्ताणअम्, अणच्छराविअ पडिहासि। (द)

राजा—मुञ्चति न तावदस्या भयकम्पः कुसुमकोमलं हृदयम्।
सिचयान्तेन कथञ्चित् स्तनमध्योच्छ्वासिना कथितः॥ (७)

(थ) आश्चर्य्ये, उच्छ्वसितमात्रसम्भावितजीविता अद्यापि सञ्ज्ञां एषा न प्रतिपद्यते।

(द) अयि उर्वशि! पर्य्यवस्थापयात्मानं, अनप्सरा इव प्रतिभासि।

चित्र—हाय! कुछ एक सांसों के चलने से ही सखी जीवित प्रतीत होती है, अब तक भी यह सचेत नहीं हुई।

राजा—तुम्हारी सखी अत्यन्त भयभीत हुई है। क्योंकि—

(६) **अन्वयः**—मन्दारेति। परिणाहवतोः पयोधरयोः मध्ये मुहुः उच्छ्वसता मन्दारकुसुमदाम्ना अस्याः गुरुः हृदयकम्पः सूच्यते।

व्याख्या—परिणाहवतोः स्थूलयोः पयोधरयोः कुचयोः मध्ये अन्तरप्रदेशे मुहुः बारं बारं उच्छ्वसता कम्पनशीलेन मन्दारकुसुमदाम्ना मन्दारपुष्पविरचितया स्रजा अस्याः उर्व्वश्याः गुरुः दीर्घः हृदयकम्पः मनोवेपनं सूच्यते। आर्य्या च्छन्दः।

भावार्थ—इस उर्व्वशी के मोटे २ कुचों (स्तनों) में जो मन्दार-पुष्प की माला विराजित है, उसके बार बार ऊंचे २ सांस लेने से इसका गुरुतर हृदय-कंप सूचित होता है।

चित्र—(करुणा के साथ)—सखि उर्वशि! धीरज के साथ अपने को संभालो, धैर्य गंवा देने पर तेरा अप्सरा-पन नहीं झलकेगा।

राजा—(७) **अन्वयः**—मुञ्चतीति। स्तनमध्योच्छ्वासिना सिचयान्तेन कथञ्चित् कथितः भयकम्पः अस्याः कुसुमकोमलं हृदयं न तावत् मुञ्चति।

व्याख्या—स्तनमध्योच्छ्वासिना कुचान्तरे कम्पमानेन सिचयान्तेन वस्त्राञ्चलेन कथञ्चित् कष्टेन कथितः सूचितः भयकम्पः दानवत्रासजनितः कम्पः अस्याः उर्वश्याः कुसुमकोमलं पुष्पसुकुमारं हृदयं मानसं न मुञ्चति न त्यजति। आर्य्या च्छन्दः॥

(उर्वशी चैतन्यं प्रत्यागच्छति ।)

राजा—(सहर्षम्) । चित्रलेखे ! दिष्ट्या वर्द्धसे, प्रकृतिमापन्ना ते प्रियसखी । पश्य,—

आविर्भूते शशिनि तमसा रिच्यमानेव रात्रि-
नैशस्यार्चिर्हुतभुज इव छिन्नभूयिष्ठधूमा ।
मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुच्यमाना,
गङ्गा रोधः पतनकलुषा गच्छतीव प्रसादम् ॥ ८ ॥

चित्र—हला उव्वसि ! विस्सत्था होहि, आवण्णाणुकम्पिणा (घ)

(घ) अयि उर्वशि ! विश्वस्ता भव, आपन्नानुकम्पिना—

भावार्थ—भय से पैदा हुआ कांपना अब भी इसके फूल सरीखे कोमल हृदय को नहीं छोड़ता, क्योंकि दोनों स्तनों के बीच विद्यमान वस्त्राञ्चल के हिलने से तथा ऊंच सांस होने से ही भय का लक्षण प्रकाशित होता है ।

(उर्वशी का सचेत होना) ।

राजा—(हर्ष के साथ)—चित्रलेखे ! सौभाग्य की बात है कि तुम्हारी प्रिय सखी ने चेतना प्राप्त की है, देखो—

(८) अन्वय—आविर्भूत इति । शशिनि अन्तर् मोहेन मुच्यमाना इयं वरतनुः आविर्भूते तमसा रिच्यमाना रात्रिः इव छिन्नभूयिष्ठधूमा नैशस्य हुतभुजः अर्चिः इव लक्ष्यते । रोधः पतनकलुषा गङ्गा इव प्रसादं गच्छति ।

व्याख्या—अन्तर् मध्ये मोहेन मुच्यमाना रहिता इयं वरतनुः उर्वशी शशिनि चन्द्रे आविर्भूते उदिते सति तमसा अन्धकारेण रिच्यमाना परित्यक्तमाना रात्रिरिव निशेव, तथा छिन्नभूयिष्ठधूमा नष्टप्रचुरधूमा भास्वरा नैशस्य रात्रौ प्रद्योतितस्य हुतभुजः अग्नेः अर्चिः शिखेव लक्ष्यते सूच्यते । अथवा रोधः पतनेन पतिततटपृथ्वीसम्पर्केण कलुषा मलिना गङ्गा भागीरथीव पश्चात् प्रसादं गच्छति । मन्दाक्रान्ताच्छन्दः, तल्लक्षणं यथा—"मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौ नतौ ताद्गुरू चेत् ॥

भावार्थ—चन्द्रमा के उदय होने पर जिस प्रकार रात्रि धीरे २ अंधकार रूपी घूंघट से छूट जाती है, रात्रि-प्रज्वलित अग्नि-शिखा जिस प्रकार धूम-समूह से मुक्त होकर उठती है, तुम्हारी शुभाङ्गी प्यारी सहेली उसी प्रकार अन्तर्गत मोह से क्रमशः छूटकर तट-सम्पात में कलुषित गंगा की न्याईं चित्त को प्रसन्नता प्राप्त हुई है ॥

चित्र—सखि उर्वशि ! सावधान हो, दुःखी के प्रति परोपकारी

महाराएण पराहदा क्खु ते तिदसपरिबन्थिणो हदासा दाणबा। (ध)

उर्व—(उन्मील्य चक्षुषी) किं सम्पहारदंसिणा महेन्देण अब्भुब-बण्णम्हि ? (न)

चित्र—ण महेन्देण; महेन्दसरिसाणुभावेण राएसिणा पुरूरबसेण। (प)

उर्व—(राजानमवलोक्यात्मगतम्)—उबकिदं क्खु मे दाणबेन्द-सम्भमेण। (फ)

राजा—(उर्वशीं विलोक्यात्मगतम्)—स्थाने खलु नारायणमृषिं विलोभयन्त्य ऊरूसम्भवामिमां विलोक्य व्रीडिताः सर्वा अप्सरसः। अथवा, नेयं तपस्विनः सृष्टिरित्यवैमि। कुतः ?—

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः ?
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः? ।

महाराजेन पराहताः खलु ते त्रिदशपरिपन्थिनो हताशा दानवाः । (ध)

(न) किं संप्रहारदर्शिना महेद्रेण अभ्युपपन्नास्मि ?

(प) न महेन्द्रेण; महेन्द्रसदृशानुभावेन राजर्षिणा पुरूरवसा।

(फ) उपकृतं खलु मे दानवेन्द्रसम्भ्रमेण।

महाराज के द्वारा परास्त होकर देव-शत्रु राक्षस निराश हो गये हैं॥

उर्व—(दोनों नेत्रों को खोलकर)—मुझको क्या युद्ध के पारदर्शी देवराज ने कृतार्थ किया है ? (क्या महेन्द्र ने कृपा करके मुझको दानव के हाथ से छुड़ाया है) ?

चित्र—नहीं, महेन्द्र ने नहीं—बल्कि महेन्द्र के तुल्य प्रतापी राजर्षि पुरुरवा ने तुमको अनुगृहीत किया है॥

उर्व—(राजा की ओर देखकर मन ही मन में)—दैत्यराज के आक्रमण से बचाकर मुझे इस ने बहुत उपकृत किया है।

राजा—(उर्वशी की ओर देखकर मन ही मन में)—अप्सरा नारायण ऋषि को लुभाने के लिये जाकर इस ऊरू सम्भव उर्वशी को देखकर जो लज्जित हुई थीं—यह युक्ति संगत ही है—मेरे विचार में यह तपस्वी से पैदा हुई प्रतीत नहीं होती। क्योंकि—

वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ? ॥ (६)

उर्व—हला चित्तलेहे ! सहीअणो कहिं क्खु भवे ? (ब)

चित्र—अभअप्पदाई महाराओ जाणादि । (भ)

राजा—(उर्वशीं विलोक्य)—महति विषादे वर्त्तते ते सखीजनः ; पश्यतु भवती,—

(ब) अयि चित्रलेखे ! सखीजनः कुत्र खलु भवेत् ?

(भ) अभयप्रदायी महाराजो जानाति ।

(६) **अन्वयः**—अस्या इति । अस्याः सर्गविधौ कान्तिप्रदः चन्द्रः प्रजापतिः अभूत् ? नु इति प्रश्ने ? स्वयं शृङ्गारैकरसः मदनः नु प्रजापतिः अभूत् ? इति पूर्वेणान्वयः । नु पुष्पाकरः मासः ? वेदाभ्यासजड़ः विषयव्यावृत्तकौतूहलः पुराणः मुनिः इदं मनोहरं रूपं निर्मातुं कथं नु भवेत् ?

व्याख्या—अस्याः उर्व्वश्याः सर्गविधौ निर्माणे कान्तिप्रदः सौन्दर्य्यदायकः चन्द्रः चन्द्रमा प्रजापतिः विधाता अभूत् सम्भूतः ? नु इति प्रश्ने ? अथवा शृङ्गारैकरसः शृङ्गाररसप्रधानः मदनः कामः स्वयं नु किं प्रजापतिः स्रष्टा अभूत् ? मासः चैत्रः किं नु अस्या विधाता ? उत वा पुष्पाकरः वसन्तः ? (विधाता इति पूर्वेणान्वयः) वेदाभ्यासजड़ः सततवेदपाठेन शृङ्गाररसशून्यः विषयव्यावृतकौतूहलः शान्तविषयवासनः पुराणः प्राचीनः मुनिः ब्रह्मेत्यर्थः । इदं पुरोदृश्यमानं मनोहरं सुन्दरं रूपं निर्मातुं रचयितुं कथं नु केन प्रकारेण प्रभवेत् ? रसज्ञानविरहितः पुराणो मुनिः एतत् कार्यं कर्तुं असमर्थः प्रतिभाति । शार्दूलविक्रीडितंच्छन्दः—"लक्षणन्तु पूर्वमुक्तमेव ॥

भावार्थ—इस उर्वशी के बनाने के समय ब्रह्मा का कार्य्य क्या कान्तिदायक चन्द्रमा ने किया था ? या शृङ्गार-रस के अनन्य देवता (कामदेव) ने स्वयं इसे रचा है ? अथवा कुसुमाकर वसन्त मास (चैत्र) इसका विधाता है ? दिन रात वेद पाठ करने से जड़ीभूत पुराने मुनि ब्रह्मा जी ऐसा रूप कैसे बना सकते हैं ? उनका तो कौतूहल (उत्कण्ठा या प्रेम) विषयों से एकदम हट गया है, वे इस अद्भुत शृङ्गार मूर्ति की रचना कैसे कर सकते हैं ?

उर्व—हे चित्र लेखे ? सखियां इस समय कहां हैं ?

चित्र—अभय देने वाले महाराज जानते हैं ।

राजा—(उर्वशी को देखकर)—तुम्हारा सखीजन इस समय अत्यन्त दुःख में ग्रसित हो रहा है । देखो सुन्दरि !

यदृच्छया त्वं सकृदप्यवन्ध्ययोः
पथि स्थिता सुन्दरि ! यस्य नेत्रयोः।
त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्
सखीजनस्ते किमु दृढसौहृदः ? ॥ (१०)

उर्व—(आत्मगतम्)—अमिअं क्खु दे वअणं ; अधबा, चन्दादो अमिअं त्ति किम् एत्थ अच्चरीयम् ? (प्रकाशम् ।) अदोज्जेव मे तुबरादि हिअअम । (भ)

राजा—(हस्तेन दर्शयन्) ।

(भ) अमृतं खलु ते वचनम् ; अथवा चन्द्रतोऽमृतमिति किमत्राश्चर्यम् । अत एव मे त्वरते हृदयम् ।

---

(१०) अन्वयः—यदृच्छयेति । सुन्दरि ! त्वं यदृच्छया सकृदपि यस्य अबन्ध्ययोः नेत्रयोः पथि स्थिता, सोऽपि त्वया विना समुत्सुकः भवेत्, किमु दृढसौहृदः ते सखीजनः ?

व्याख्या—हे सुन्दरि ! मनोज्ञे ! त्वं (उर्व्वशी) यदृच्छया अनिर्दिष्टकारणेन सकृदपि एकवारमपि यस्य पुरुषस्य अबन्ध्ययोः सार्थकयोः नेत्रयोः लोचनयोः पथि गोचरे स्थिता भवसि, यस्य नयनसरणिमवतरसि, सोऽपि पुरुषः त्वया विना समुत्सुकः उत्कण्ठितः भवेत् । किमु दृढसौहृदः घनिष्ठसख्यः ते तव सखीजनः ? आलीवर्गः ? यत् आलीवर्गः त्वयि अपूर्वं सख्यं करोति, तत्र तु किमु वक्तव्यं नाम । वंशस्थविलं-च्छन्दः,- "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" ॥

भावार्थः—हे सुन्दरि ! अनिर्दिष्ट कारण से तूँ, एकवार भी जिस के नेत्रों के समक्ष उपस्थित होने पर भी जिस के दोनों नेत्र सार्थक होते हैं । वह मनुष्य भी जब तुझे न देखने से उत्कण्ठित हो जाता है, तब जिन के संग मैत्री चिरकाल तक है, वे सखीजन जो तुम्हारे न देखने से उत्कण्ठित होगा—इस में आश्चर्य ही क्या है ?

उर्व—(मन ही मन में)—महाराज ! आप के वचन अमृत सरीखे हैं । अथवा चन्द्र में ही अमृत विद्यमान रहता है, इस में आश्चर्य ही क्या है ? (प्रकाश भाव से) इस कारण ही (सखियों को देखने के लिये) मेरा हृदय उत्कण्ठित हुआ है ।

राजा—(हाथ के संकेत से दिखाकर) ।

एताः सुतनु ! मुखं ते सख्यः पश्यन्ति हेमकूटगताः ।
उत्सुकनयना लोकाश्चन्द्रमिवोपप्लवान्मुक्तम् ॥ (११)

(उर्वशी साभिलाषं पश्यति ।)

चित्र—हला ! किं पेक्खसि ? (य)

उर्व—समदुक्खसुहो पीबीअदि लोअणेहिं । (र)

चित्र—(सस्मितम्)—अइ ! को ? (ल)

उर्व—णं पणइअणो । (ब)

मेनका—(सहर्षमवलोक्य)—हला ! एसो चित्तलेहादुदिअं पिअसहीम् उब्बसीं गेण्हिअ, बिसाहासहिदो बिअ भअवं सोमो, उबत्थिदो सो राएसी । (श)

(य) अयि ! किं प्रेक्षसे ?

(र) समदुःखसुखः पीयते लोचनाभ्याम् ।

(ल) अयि ! कः ?

(व) ननु प्रणयिजनः ।

(श) अयि ! एष चित्रलेखाद्वितीयां प्रियसखीम् उर्वशीं गृहीत्वा विशाखासहित इव भगवान् सोमः उपस्थितः स राजर्षिः ।

(११ अन्वयः—एता इति । हे सुतनु ! उत्सुकनयनाः लोकाः उपप्लवात् मुक्तं चन्द्रमिव हेमकूटगताः एता ते सख्यः मुखं पश्यन्ति ॥

व्याख्या—हे सुतनु ! शुभाङ्गिनि ! उत्सुकनयनाः कौतूहलाविष्टनेत्राः लोकाः उपप्लवात् राहुग्रासात् मुक्तं रहितं चन्द्रमिव यथा पश्यन्ति तद्वत् हेमकूटगताः हेमकूटपर्वतारूढाः एताः सख्यः आलीजनाः ते तव मुखं पश्यन्ति ॥

भावार्थ--हे शुभाङ्गि ! पुरुष जिस प्रकार राहु-मुक्त चन्द्रमा को देखा करते हैं, (यह देखो) तुम्हारा सखीगण भी उसी प्रकार हेमकूट के शिखर पर स्थित होकर तुम्हारे मुखचन्द्र की ओर देख रहा है ॥

(उर्वशी चाह भाव से सखीजन को देखती है) ।

चित्र--हे सखि ! क्या देखती हो ?

उर्व--जो सुख दुःख में समान सुखी दुःखी है, उन्हीं को दोनों लोचनों से देख रही हूं ॥

चित्र—(मधुर हास्य से)—वे कौन है ?

उर्व—प्रेमीजन ।

मेनका--(हर्ष से देखकर)--यह तो विशाखा के साथ सोमदेव के

रम्भा—(निर्वर्ण्य)—दुवेवि एत्थ पिआ उवगदा, जं सही पच्चा-णीदा, जं च अपरिक्खदसरीरो राएसी दीसदि। (ष)

सहजन्या—सहि! तुमं भणासि दुज्जओ दाणबो त्ति। (स)

राजा—सूत! इदं तच्छैलशिखरम्, अवतारय रथम्।

सूतः—यथाज्ञापयति आयुष्मान्। (इति तथा करोति)।

[उर्वशी रथावतारक्षोभं नाटयन्ती सत्रासं राजानमवलम्बते।)

राजा—(स्वगतम्)। हन्त हन्त, सफलो मे विषयावतारः।

यदिदं रथसंक्षोभादङ्गेनाङ्गं ममायतेक्षणया।
स्पृष्टं सरोमकण्टकमङ्कुरितं मनसिजेनेव॥ (१२)

(ष) द्वे अपि अत्र प्रिये उपगते, यत् सखी प्रत्यानीता, यच्च अपरिक्षत-शरीरो राजर्षिर्दृश्यते।

(स) सखि! त्वं भणसि दुर्जयो दानव इति।

तुल्य राजर्षि पुरुरवा चित्रलेखा के संग प्यारी सखी उर्वशी को लेकर उपस्थित हुए हैं॥

रम्भा--(विशेष भाव से देखकर)--यहां दो प्रिय वस्तुएं विद्यमान हैं, एक तो शत्रु से वापिस छीनी हुई प्यारी सखी—और दूसरे अक्षत शरीर वाले राजर्षि॥

सहजन्या--सखि तूं तो कहती थी कि दानव अत्यन्त दुर्जय हैं?

राजा--सूत! यह वही हेमकूट पर्वत का शिखर है, यहां ही रथ को उतारो॥

सूत—आप की जो आज्ञा (सारथी रथ को उतारता है)।

(उर्वशी रथ उतारने के समय अतिवेग के कारण डरकर राजा को पकड़ती है)।

राजा--(आप ही आप)--अहो! मेरा विषयभोग के कारण मनुष्य-देह धारण करना सफल हुआ। क्योंकि:—

(१२) अन्वयः—यादिदमिति। रथसंक्षोभात् इदं मम अङ्गं आयतेक्षणया अङ्गेन स्पृष्टं यत् सरोमकण्टकं मनसिजेन अङ्कुरितमिव (मन्ये)।

व्याख्या- रथसंक्षोभात् विषमस्थलेषु स्यन्दनोपधस्तात् इदं पुरोदृश्यमानं मम अङ्गं गात्रं आयतेक्षणया विशाललोचनया अङ्गेन स्पृष्टं सत् यत् सरोमकण्टकं रोमाञ्चितं जातं, तत् मनसिजेन कामेन अङ्कुरितमिव उत्पादितामिव मन्ये। आर्य्याच्छन्दः॥

भावार्थ--इस बड़ी २ आंखों वाली उर्वशी के रथ-संक्षोभ हेतु अंग से अंग का स्पर्श होने से मानो कामदेवकर्तृक मेरे अंग रोमाञ्चित और अंकुरित होगये हैं।

उर्व—(सव्रीड़ा)—**हला ! किञ्चिदवरतो ओसर (ह)**

चित्र—**णाहं णाहं सक्का (त्त)** ।

रम्भा—**एव्वं पिअआरिणं सम्भावेम्ह रायसिं । (क)**

अप्सरसः—**एव्वं करेम्ह (ख)** (इत्युपसर्पन्ति) ।

राजा—**सूत ! उपश्लेषय रथम् ।**

यावत् पुनरियं सुभ्रूरुत्सुकाभिः समुत्सुकाः ।

सखीभिर्याति सम्पर्कं लताभिः श्रीरिवार्त्तवी ॥ (१३)

सूतः—**तथा** (इति रथं स्थापयति) ।

अप्सरसः—**दिट्ठिआ महाराओ विजएण वड्ढदि । (ग)**

(ह) सखि ! किञ्चिदपरतोऽपसर ।

(त्त) नाहं नाहं शक्ता ।

(क) एवं प्रियकारिणं सम्भावयामो राजर्षिम् ।

(ख) एवं कुर्मः ।

(ग) दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्द्धते ।

उर्वशी—(लज्जा से)—**सखि ! कुछेक दूसरी ओर को हट जाओ ।**

चित्र—**नहीं, नहीं, मैं हट नहीं सकती ।**

रम्भा—**ऐसे हितकारी राजर्षि का सन्मान करेंगी ।**

अप्सरागण—**यही करना उचित है ।**

(सबका प्रत्युद्गमन) ।

राजा—**सूत ! रथ खड़ा करो ।**

(१३) अन्वयः—यावदिति । यावत् पुनः समुत्सुका इयं सुभ्रुः उत्सुकाभिः सखीभिः सम्पर्कं याति, आर्त्तवी श्रीः लताभिरिव ।

व्याख्या—यावत् पुनः भूयः समुत्सुका उत्कण्ठिता इयं सुभ्रुः उर्वशी उत्सुकाभिः उत्कण्ठिताभिः सखीभिः सम्पर्कं सम्बन्धं याति मिलति, किम्भूता ? आर्त्तवी ऋतु-सम्बन्धिनी श्रीः वसन्तलक्ष्मीः लताभिरिव शोभातिशय्यम् उत्पादयति करोति । अनुष्टुप् छन्दः ॥

भावार्थ—**ऋतुसम्बन्धिनी वसन्तलक्ष्मी जिस तरह लताओं के साथ मिलती है, उसी प्रकार यह उत्कण्ठिता सुभ्रु उर्वशी अब सखियों के संग मिलेगी ।**

सूत—**जो आज्ञा** (रथ को रोककर) ।

अप्सरागण—**सौभाग्य से महाराज विजयी हुए हैं ।**

राजा—भवत्यश्च सखीसमागमेन ।

उर्व—(चित्रलेखादत्तहस्तावलम्बा रथादवतीर्य्य) हला ! बलिश्रं परिस्सजध मं, ण क्खु मे आसि आसंसा, जधा पुणो वि सब्बं सहीअणं पेक्खिस्सम । (घ)

(सख्यः परिष्वजन्ते ।)

मेनका—(साशंसं)—सब्बधा महाराओ पुहवीं पालयन्तो भोदु । (ङ)

सूतः—आयुष्मन् ! महता रथवंशेनोद्दर्शितम् ।—

अयञ्च गगनात् कोऽपि तप्तचामीकराङ्गदः ।
अधिरोहति शैलाग्रं तडित्वानिव तोयदः ॥ (१४)

अप्सरसः—अम्भो ! चित्तरहो । (च)

(घ) अयि ! बलवत् परिष्वजध्वं मां, न खलु मे आसीत् आशंसा, यथा पुनरपि सर्वं सखीजनं प्रेक्षिष्ये ।

(ङ) सर्वथा महाराजः पृथिवीं पालयन् भवतु ।

(च) अहो ! चित्ररथः ।

राजा—सखी के साथ मिलने से तुम्हारी भी विजय हुई है ।

उर्व—(चित्रलेखा का हाथ पकड़कर रथ से अवतरण-पूर्वक)—अरी ! मुझको बड़े प्रेम से आलिंगन करो फिर जो साथियों से मिलाप होगा, मुझको यह आशा न थी ।

(सखियाँ उर्वशी को आलिंगन करती है) ।

मेनका—(प्रशंसा-पूर्वक)—महाराज ! सर्वथा पृथ्वी का पालन करें ।

सूत—आयुष्मन् ! विशाल रथ-ध्वज दिखाई देता है, जान पड़ता है—

(१४) अन्वयः—अयञ्चेति । तप्तचामीकराङ्गदः अयं कोऽपि तडित्वानिव तोयदः गगनात् शैलाग्रं अधिरोहति ।

व्याख्या—तप्तचामीकराङ्गदः सद्योगलितसुवर्णाङ्गदः अयं पुरोदृश्यमानः कोऽपि तडित्वान् विद्युत्वान् तोयद इव मेघ इव गगनात् आकाशात् शैलाग्रं पर्वतशिखरं अधिरोहति । अनुष्टुप् छन्दः ॥

भावार्थ—तपे हुए कांचन वर्णके अंगद (बहोंटे) धारण किये कोई व्यक्ति विद्युन्माला भूषित बादल के समान आकाशमार्ग से पर्वत के शिखर पर उतर रहा है ।

अप्सरागण—अहो ! (गन्धर्वराज) चित्ररथ आरहे हैं ।

(ततः प्रविशति चित्ररथः) ।

चित्ररथः—(राजानमुपसृत्य)—दिष्ट्या महोपकारपर्य्याप्तेन विक्रम-महिम्ना वर्द्धसे ।

राजा—अये ! गंधर्वराजः (रथादवतीर्य्य)—स्वागतं प्रियसुहृदे ।

(अन्योऽन्यं हस्तं स्पृशतः)

चित्ररथः—वयस्य ! केशिना अपहृतामुर्वशीमुपश्रुत्य प्रत्याहरणार्थमस्याः शतक्रतुना गन्धर्वसेनाः समादिष्टाः । अनन्तरं विमानचारिभ्यस्त्वदीयम्,—

यशोराशिमुपश्रुत्य त्वामिहस्थमुपागतः ।
भवानिमां समादाय महेन्द्रं द्रष्टुमर्हति ॥

महत् खलु त्वया तत्प्रियमनुष्ठितम् । पश्य,—

(चित्ररथ का प्रवेश) ।

चित्ररथ—(राजा के समीप उपस्थित होकर)—भाग्यवश आप अपने बड़े भारी पराक्रमके प्रभाव से इन्द्रका परमोपकार साधन करके सन्मानित हुए हैं ।

राजा—यह क्या गंधर्वपति उपस्थित हैं ? (रथ से उतर कर) । प्रिय सखा का मंगल तो है ?

(आपस में एक दूसरे के हाथ को स्पर्श करते हैं) ।

चित्ररथ—पुत्र ! केशि दानव के द्वारा उर्वशीका हरा जाना सुनकर इन्द्रने उसको छुड़ाने के लिये गंधर्व सेनाको आज्ञा दी थी, फिर मैं विमानचारियों के मुख से—

(१५) अन्वयः—यशोराशिमिति । (त्वदीयं) यशोराशिं उपश्रुत्य त्वां इहस्थं उपागतः भवान् इमां समादाय महेन्द्रं द्रष्टुं अर्हति ।

व्याख्या—त्वदीयं यशोराशिं कीर्तिकलापं उपश्रुत्य श्रुत्वा त्वां पुरुरवसं इहस्थं अत्र उपागतः उपस्थितोऽस्मि, भवान् इमां उर्वशीं समादाय नीत्वा महेन्द्रं देवराजं द्रष्टुमर्हति ।

भावार्थ—आप के यश को सुनकर आप के पास आया हूं, तुम इस उर्वशी को संग लेकर देवराज से भेंट कीजिये—

आपने उनका बड़ा हितसाधन किया है । देखो—

पुरा नारायणेनेयमभिसृष्टा मरुत्वतः।
दैत्यहस्तादवाच्छिद्य सुहृदा सम्प्रति त्वया॥ (१५)

राजा—सखे! मैवम्—

ननु! वज्रिण एव वीर्य्यमेतद् विजयन्ते द्विषतो यदस्य पक्षाः।
वसुधाधरकन्दराविसर्पी प्रतिशब्दो हि हरेर्हिनस्ति नागान् (१६)

चित्ररथः—युक्तम; अनुत्सुकता खलु विक्रमालङ्कारः।

राजा—सखे! नायममवसरः शतक्रतुं द्रष्टुम्; अतस्त्वमेव अत्रभवतीं प्रभोरन्तिकं प्रापय।

अन्वयः--पुरा नारायणेन इयं मरुत्वतः अभिसृष्टा सम्प्रति त्वया सुहृद दैत्यहस्तात् अवाच्छिद्य (तस्मै देया)।

व्याख्या--पुरा पूर्वस्मिन् काले नारायणेन तदाख्येन मुनिना इयं उर्वशी मरुत्वतः इन्द्रस्य निमित्तं अभिसृष्टा दत्ता, सम्प्रति अधुना त्वया सुहृदा मित्रेण दैत्यहस्तात् अवाच्छिद्य आक्षिप्य त्वया पुनरभिसृष्टा। अनुष्टुप् छन्दः॥

भावार्थ—पूर्व काल में नारायण ऋषि ने इस उर्वशी को पैदा करके देवेन्द्र को दे दिया है, प्रिय सखा! अब आप इस से दानव के हाथ से छुड़ाकर उन्हीं को समर्पण कर दीजिये॥

राजा--सखे! नहीं--ऐसा नहीं है—

(१६) अन्वयः--नन्विति। ननु वज्रिण एव एतत् वीर्य्यं, यत् अस्य पक्षाः द्विषतो विजयन्ते, हि हरेः वसुधाधरकन्दराविसर्पी प्रतिशब्दः नागान् हिनस्ति।

व्याख्या—ननु भो! वज्रिणः इन्द्रस्य एव एतत् वीर्य्यं माहात्म्यम्, यत अस्य इन्द्रस्य पक्षाः सहचराः द्विषतः शत्रून् विजयन्ते रिपून् तिरस्कुर्वन्ति, तथाहि हरेः सिंहस्य वसुधाधरकन्दराविसर्पी गिरिगह्वरव्यापी प्रतिशब्दः प्रतिध्वनिः नागान् गजान् हिनस्ति पराभवति। औपच्छन्दसिकं वृत्तम्।

भावार्थ--यदि देवराज की सहायता करने वाले शत्रुओं को विजय करें तो वे देवेन्द्र की महिमा जानेंगे। क्योंकि सिंह का गिरि-गुहा-व्यापी प्रतिशब्द हाथियोंको मारता है।

चित्ररथ--यह बात युक्ति संगत है। किन्तु अपनी प्रशंसा सुनकर उत्साहहीन होना वीर पुरुषों का भूषणस्वरूप है।

राजा—यह अवसर देवराज से भेंट करने का नहीं है। आप ही उर्वशी को लेजाकर इन्द्र को दे दीजिये।

चित्ररथः—**यथा भवान् मन्यते। इत इतो भवत्यः।**

(इति अप्सरसः प्रस्थिताः)।

उर्व—(जनान्तिकम्)—**हला चित्तलेहे! उअआरिणं राएसिं ण सक्कणोमि आमन्तिदुं, ता तुमं मे मुहं होहि (छ)।**

चित्र—(राजानमुपसृत्य।)—**महाराअ! उव्वसी विण्णवेदि, महाराएण अब्भणुण्णादा इच्छामि पिअं विअ महाराअस्स कित्तिअं सुरलोअं णेदुम। (ज)**

राजा—**गम्यतां पुनर्दर्शनाय।**

(इति सर्वाः सगन्धर्वा आकाशयानं रूपयन्ति)।

उर्व—(उत्पतनभङ्गं रूपयित्वा)—**अम्भो! लदाविडवे एआवली वैजअन्तिआ मे लग्गा।** (सव्याजमुपसृत्य राजानं पश्यन्ती)—**सहि चित्तलेहे! मोआवेहि दाव णम (झ)।**

(छ) अयि चित्रलेखे! उपकारिणं राजर्षिं न शक्नोमि आमन्त्रयितुं, तत् त्वं मे सुखं भव।

(ज) महाराज! उर्वशी विज्ञापयति, महाराजेन अभ्यनुज्ञाता इच्छामि प्रियामिव महाराजस्य कीर्त्तिं सुरलोकं नेतुम्।

(झ) अहो! लताविटपे एकावली वैजयन्तिका मे लग्ना। सखि चित्रलेखे! मोचय तावदेनाम्।

चित्ररथ--**आपका जो अभिप्राय हो। तुम इधर आओ। इधर आओ।**

(सबका प्रस्थान)।

उर्व--(एकान्त में)--**सखि चित्रलेखे! मैं उपकारी राजर्षि के संग बात चीत नहीं करसकी सुतरां तुम ही मेरा मुख-स्वरूप हो जाओ।**

चित्र—(राजा के पास आकर)--**महाराज! उर्वशी आपको विदित कराती है कि महाराज के आज्ञा देने पर मैं आप की प्रिया के समान विशाल कीर्त्ति को स्वर्गलोक में ले जाने की वासना करती हूं।**

राजा--**पुनर्दर्शनार्थ गमन करें।**

(गन्धर्व के साथ अप्सराओं का गमन)।

मार्ग मे प्रस्थान।

उर्व--(उत्पतन भङ्ग-अभिनय पूर्वक)--**अहो! लता जाल में मेरी वैजयन्तिका नामक एकावली मोतियों की माला उलझ गई है, सखि चित्रलेखे! माला लता से खोल दे।**

चित्र—(विलोक्य विहस्य च) आं, अइ ! दिढं क्खु लग्गा, न सक्कणोमि मोआबिदुम् (ञ) ।

उर्व—अलं पढ़िहासेण ? मोआवेहि दाबणम् । (ट)

चित्र—आं, दुम्मोआ विअ मे पड़िहादि, तधावि मोआबिस्सं दाब । (ठ)

उर्व—(स्मितं कृत्वा) । पिअसहि सुमरेसि क्खु एदम अत्तणो वअणम । (ड)

राजा—

प्रियमाचरितं लते ? त्वया मे गमनेऽस्याः क्षणविघ्नमाचरन्त्या ।
यदियं पुनरप्यरालनेत्रा परिवृत्तार्द्धमुखी मयाद्य दृष्टा ॥ (१७)

(ञ) आं, अयि ! दृढं खलु लग्ना, न शक्नोमि मोचयितुम् ।

(ट अलं परिहासेन ? मोचय तावदेनाम् ।

(ठ) आं, दुर्मोच्येव मे प्रतिभाति, तथापि मोचयिष्यामि तावत् ।

(ड) प्रियसखि ! स्मरासि खलु एतदात्मनो वचनम् ।

चित्र—(देखकर हंसती हुई) ओ ! यह तो बड़े ही दृढ़ रूप से उलझा है । मुझ में खोलने की सामर्थ्य नहीं है ।

उर्व—हँसी की आवश्यकता नहीं है । तुम खोल दो ।

चित्र—इस का छुड़ाना मेरे पक्ष में कष्टकर जान पड़ता है तो भी छुड़ाये देती हूं ।

उर्व—(मधुर हास्य करके) प्रिय सखि ! अपनी बात को तो ज़रा याद कर

राजा—

(१७) अन्वयः—प्रियमिति । लते ! अस्याः गमने क्षणविघ्नमाचरन्त्या त्वया मे प्रियं आचरितं, यत् मया पुनरपि इयं अरालनेत्रा परिवृत्तार्द्धमुखी दृष्टा ।

व्याख्या—लते अस्याः उर्वश्याः गमने गमनसमये क्षणविघ्नमाचरन्त्या क्षणकालं गमनबाधां जनयन्त्या त्वया लतया मे मम प्रियं हितं आचरितं कृतं यत् मया पुरुरवसा पुनरपि भूयोऽपि इयं उर्वशी अरालनेत्रा वक्रनयना परिवृत्तार्द्धमुखी दृष्टा अवलोकिता । औपच्छन्दसिकं वृत्तम् ॥

भावार्थ—हे लतिके ! तुमने उर्वशी के जाने में क्षण काल बाधा देकर मेरा प्रिय कार्य किया है । क्योंकि इस वक्रनयना के पुनर्वार मुखचन्द्र फेरने से मुझे फिर उसका मुख देखने को मिला ।

(चित्रलेखा मोचयति । उर्वशी राजानमालोकयन्ती सनिश्वासं सखीजनमुत्पतन्तं पश्यति ।)

सूत.—

अधः सुरेन्द्रस्य कृतापराधान्
प्रक्षिप्य दैत्यान् लवणाम्बुराशौ ।
वायव्यमस्त्रं शराधिं पुनस्ते
महोरगः श्वभ्रमिव प्रविष्टम् ॥ (१८)

राजा—**तेन हि उपश्लेषय रथं, यावदारोहामि ।**

(सूतस्तथा करोति । राजा नाटयेनाधिरोहति) ।

उर्व—(सस्पृहं राजनामवलोकयन्ती) **अवि णाम पुणो विउअआरणम् पदं पेक्खिस्सं ?** (ढ)

(इति सगन्धर्वा सह सखीभिर्निष्क्रान्ता)

राजा—(उर्वशीवर्त्मोन्मुखः) **अहो ! दुर्लभाभिलाषी मदनः ।**

(ढ) अपि नाम पुनरप्युपकारिणमेतं प्रेक्षिष्ये ?

(चित्रलेखा कृत एकावली का बन्धन मोचन और उर्वशी का लम्बे २ सांस छोड़ते हुए राजा और सखियों को देखना)

(१८) अन्वयः—अध इति । ते वायव्यं अस्त्रं सुरेन्द्रस्य कृतापराधान् दैत्यान् अधः लवणाम्बुराशौ प्रक्षिप्य पुनः शराधिं प्रविष्टं महोरगः श्वभ्रमिव ॥

व्याख्या—ते तव वायोरिदं वायव्यं अस्त्रं सुरेन्द्रस्य इन्द्रस्य कृतापराधान् इन्द्रापराद्धान् दैत्यान् दानवान् अधः लवणाम्बुराशौ लवणसमुद्रे प्रक्षिप्य पुनः शराधिं तूणीरं प्रविष्टं, महोरगः महासर्पः श्वभ्रमिवः विलमिव (प्रविशति) उपजातिः वृत्तम्, यथा-"अनन्तरोदीतलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावपुजातयस्ताः ॥

भावार्थ—**जिन दैत्यों ने देवराज का अपराध किया था, उनको आपके वायव्यास्त्र-द्वारा लवण समुद्र के नीचे फेंककर महासर्प के विवरप्रवेश के समान फिर भी तरकश में प्रविष्ट हुआ है ।**

राजा—**तो तुम रथ को रोको मैं उतर पड़ूँ ।**

(सूत का वैसा ही करना और राजा का उतरना)

उर्व—(सतृष्णा नेत्रों से राजा की ओर देख कर) **अहो ! फिर उपकारी राजर्षि का दर्शन पाया ।**

(उर्वशीका गंधर्व और सखियों के साथ जाना ।)

राजा—(उर्वशी के गमन मार्ग की ओर उन्मुख होकर) **अहो ! कामदेव दुर्लभ पादर्थ (उर्वशी) का अभिलाषी है !**

एषा मनो मे प्रसभं शरीरात्
पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती।
सुराङ्गना कर्षति, खण्डिताग्रात्
सूत्रं मृणालादिव राजहंसी ॥ (१६)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः।

---

(१६) **अन्वयः**—एषेति। पितुः मध्यमं पदं उत्पतन्ती एषा सुराङ्गना प्रसभं मे शरीरात् मनः कर्षति, राजहंसी खण्डिताग्रात् मृणालात् सूत्रमिव (कर्षति)।

व्याख्या—पितुः नारायणस्य मध्यमं पदं आकाशं उत्पतन्ती आकाशपथा गच्छन्ती एषा सुराङ्गना अप्सरा प्रसभं बलेन मे मम शरीरात् मनः चित्तं कर्षति। किमिवेत्याह—राजहंसी राजमृणाली खण्डिताग्रात् त्रुटितमुखात् मृणालात् सूत्रमिव। उपजातिः वृत्तम् ॥

भावार्थ—**अहो! राजहंसी जिस प्रकार खण्डिताग्र मृणाल से सूत्र निकालती है, उसी प्रकार यह अप्सरा मेरे शरीर से मन को बल-पूर्वक खेंचकर आकाश मार्ग में लिये जाती है।**

(सब का जाना)

(इति प्रथमोऽङ्कः समाप्तः)



द्वितीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति विदूषकः)

विदू—अविद अविद, भोः ! णिमन्तणिओ परमण्णेण विअ राअरहस्सेण फुटमाणेण ण सक्कणोमि जणाइण्णे अत्तणो जीहं धारिदुं ; ता जाव सो राआ धम्मासणगदो भवे, दाव इमस्सिं बिरलजणसम्पादे देवच्छन्दप्पासादे अहिरुहिअ चिट्ठस्सम् (क) ।

(परिक्रम्योपविश्य पाणिभ्यां मुखं पिधाय स्थितः ।)

(ततः प्रविशति चेटी) ।

चेटी—आणत्तम्हि देईए कासिराअदुहिदाए, जधा, "हञ्जे णिउणिए ! जदो पहुदि भअवदो सुज्जस्स उअत्थाणं कदुअ पडिणिउत्ती महाराओ, तदो पहुदि सुण्णहिअओ विअ लक्खीअदि; (ख)

(क) अविद अविद भोः । निमन्त्रणिकः परमान्नेनेव राजरहस्येन स्फुटता न शक्नोमि जनाकीर्णे आत्मनो जिह्वां धारयितुं, तद्यावत् स राजा धर्मासनगतो भवेत्, तावदस्मिन् विरलजनसम्पाते देवच्छन्दप्रासादे आधिरुह्य स्थास्यामि ।

(ख) आज्ञप्तास्मि देव्या काशीराजदुहित्रा, यथा, "अयि निपुणिके! यतःप्रभृति भगवतः सूर्य्यस्य उपस्थानं कृत्वा प्रतिनिवृत्तो महाराजः, ततः प्रभृति शून्यहृदय इव लक्ष्यते,—

(विदूषक का प्रवेश)

विदू०—क्या आश्चर्य्य है ! क्या आश्चर्य्य है ! निमन्त्रित मनुष्य जिस प्रकार उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थ देख कर जिह्वा को अपने वश नहीं कर सकता उसी मनुषसंघके स्थान में मैं भी उसी प्रकार राजकीय-रहस्य को प्रकाशित किये बिना जीभ को नहीं ठहरा सकता । अत एव जब तक धर्मासन पर राजा विराजमान नहीं है, तब तक मैं देवच्छन्द नामक सूने स्थानमें बैठता हूं ।

(परिक्रमानन्तर दोनो हाथोंद्वारा मुखाच्छादन करके बैठता है ।)

(निपुणिका नाम्नी चेटीका प्रवेश)

चेटी०—(स्वगतम्) देवि ! काशीराज की पुत्री ने मुझे आज्ञा दी है, कि ' निपुणिके ! जब से महाराज सूर्य्यदेव की उपासना करके लौटे हैं तब वे शून्य हृदय के समान दिखाई देते हैं—

ता, तुमम्पि अज्जमाणवआदो जाणाहि से उक्कण्ठाकारणं" त्ति । ता, कधं सो बम्हबन्धू अब्भत्थिदव्वो ? अधवा तिणलग्गं विअ ओसाअसलिलं ण तस्सिं राअरहस्सं चिरं चिट्ठिस्सदि त्ति तक्केमि ; ता जाव णं अण्णेसामि । (परिक्रम्य दृष्ट्वा) । अम्महे ! आलेक्खबाणरो विअ किम्पि मन्तअन्तो णिन्हुदो अज्जमाणवओ चिट्ठदि ; ता जाव णम् उपसप्पामि । (उपसृत्य) अज्ज ! बन्दामि । (ख)

विदू—सोत्थि भोदिए । (स्वगतम्) एदं दुट्ठचेलिअं पेक्खिअ तं राअरहस्सं हिअअं भिन्दिअ णिक्कमदि विअ । (किञ्चिन्मुखं संवृत्य प्रकाशम्) । भोदि णिउणिए ! सङ्गीदवावारम् उज्झिअ कहि पउत्तासि ? (ग)

तस्मात् त्वमपि आर्य्यमाणवकात् जानीहि तस्य उत्कण्ठाकारणम्" इति । तत् कथं स ब्रह्मबन्धुरभ्यर्थितव्यः ? अथवा तृणलग्नमिव अवश्यायसलिलं न तस्मिन् राजरहस्यं चिरं स्थास्यतीति तर्कयामि । तद्यावदेनमन्विष्यामि । अहो ! आलेख्यावानर इव किमपि मन्त्रयन् निहुत आर्य्यमाणवकस्तिष्ठति, तद्यावदेनमुपसर्पामि । आर्य्य ! वन्दे । (ख)

(ग) स्वस्ति भवत्यै । एनां दुष्टचेटिकां प्रेक्ष्य तद्राजरहस्यं हृदयं भित्वा निष्कामतीव । भवति निपुणिके ! सङ्गीतव्यापारमुज्झित्वा कुत्र प्रवृत्तासि ?

अत एव तुम आर्य्य माणवक के निकट जाकर महाराज की उस उत्कण्ठा का कारण जान आओ । किस प्रकार इस समय ब्राह्मणाधम के पास से यह बात मालूम करूं ! अथवा तृण लग्न-शीत जल जिस प्रकार बहुत देर तक तृणों पर संलग्न नहीं रहता मेरे विचार में राजरहस्य भी उसी प्रकार अधिक देर तक ब्राह्मण के हृदय में नहीं ठहरेगा । (मैं सहज में ही उसके हृदयसे बात बाहिर निकाल सकूंगी) अब उसको ढूंढना चाहिये । (परिक्रमाऽनन्तर विदूषकको देखकर)

अहो ? चित्रलिखित बंदरके समान आर्य्यमाणवक किस बात की चिन्ता में संलग्न हो शून्यवन में बैठा है ? अब मैं इसके पास पहुँचूं ! (पास जाकर) आर्य्य ! प्रणाम करती हूं ।

विदू०—तुम्हारा कल्याण हो, (स्वगत) इस दुष्ट चेटी को देखकर तो राजाकी गुप्त बातें मानो मेरा हृदय चीरकर बाहर निकल पड़ती है । (कुछेक मुख उठाकर प्रकाशभावसे) हे निपुणिके । संगीत-कार्य्य को छोड़कर किस काम में प्रवृत्त हुई हो ?

चेटी—देईए बअणेण अज्जं ज्जेव पेक्खिदुं ! (घ)

विदू—किं तत्थभोदी आण्णवेदि ? (ङ)

चेटी—देई भणादि, जधा, अज्जस्स मम उअरि अदक्खिण्णं, ण मं अणुभूअवेअणं दुक्खिदं अवलोअदि त्ति। (च)

विदू—णिउणिए! किं पिअवअस्सेण पडिऊलं किम्पि समाचरिदं ? (छ)

चेटी—जं णिमित्तम् उण भट्टा उक्कण्ठिदो, ताए इत्थिआए णामेण भट्टिणा देई आलविदा। (ज)

विदू—(स्वगतम्) कधं सअंज्जेव तत्थभअदा बअस्सेण रहस्य-भेओ किदो, किं दाणिं अहं बम्हणो जीहां रक्खिदुं समत्थोम्हि ? (झ)

(घ) देव्या वचनेन आर्य्यमेव प्रेक्षितुम्।

(ङ) किं तत्रभवती आज्ञापयति ?

(च) देवी भणति, यथा, आर्य्यस्य ममोपरि अदाक्षिण्यं, न मामनुभूतवेदनां दुःखितामवलोकयतीति।

(छ) निपुणिके ! किं प्रियवयस्येन प्रतिकूलं किमपि समाचरितम् ?

(ज) यन्निमित्तं पुनर्भर्त्ता उत्कण्ठितः तस्याः स्त्रिया नाम्ना भर्त्रा, देवी आलपिता।

(झ) कथं स्वयमेव तत्रभवता वयस्येन रहस्यभेदः कृतः किमिदानीमहं ब्राह्मणो जिह्वां रक्षितुं समर्थोऽस्मि ?

चेटी—देवीकी आज्ञानुसार आपसे भेंट करने के लिये आई हूं !

विदू॰—माननीये ! देवी ने क्या आज्ञा दी है ?

चेटी॰—देवीने कहा है " मेरे प्रति आर्य्यकुमारकी जैसी अनुकम्पा है उससे वे कदापि मुझको दुःखित देखनेकी इच्छा न करेंगे।

विदू—निपुणिके ! प्रियसखियों ने क्या देवीके प्रति विरुद्धाचरण किए हैं ?

चेटी॰—जिस रमणीके लिये महाराज अत्यन्त उत्कण्ठित हैं, उसका नाम लेकर उन्हों ने महारानी का सम्बोधन किया है। (उत्कण्ठा-वश) राजा को इस प्रकार चित्त वैकल्प और भ्रम उत्पन्न हुआ है, जिससे कि उसने देवी को सम्बोधन कहकर भूल से उस रमणीका नाम कह दिया है।

विदू॰—(स्वगत) अहो ! माननीय सखाने अपने आप ही अपना रहस्य खोलदिया है ? मैं तो ब्राह्मण जातिका हूं, अब मैं किस

(प्रकाशम्) श्रां, तत्थभोदी उब्बासीत्ति अच्छरा, ताए दंसणेण उम्मादिदो ण केवलं तं आश्रासेदि, मम्पि बम्हणं असिदव्बाबिमुहं दिढं पीलेदि । (झ)

चेटी—(स्वगतम्) उववादिदो मए भेओ भट्टिणो रहस्सदुग्गस्स; ता गदुअ देईए एदं णिवेदेमि । (ञ)

विदू—णिउणिए! विण्णवहि मम वअणेण कासिराअदुहिदरं; परिस्सन्तम्हि इमाए मिअतिण्णाए पिअवअस्सं णिअत्ताबेदुं, जइ भोदीए मुहकमलं पेक्खिस्सदि तदो णिअत्तिस्सदि त्ति । (ट)

चेटी—जं अज्जो आणवेदि । (ठ)

(इति निष्क्रान्ता)

श्रां, तत्रभवती उर्वशीत्यप्सराः, तस्या दर्शनेन उन्मादितो न केवलं तामायासयति मामपि ब्राह्मणं अशितव्यविमुखं दृढं पीड़यति । (झ)

(ञ) उपपादितो मया भेदो भर्तुः रहस्यदुर्गस्य, तद्गत्वा देव्यै इतत् निवेदयाभि ।

(ट) निपुणिके ! विज्ञापय मम वचनेन काशीराजदुहितरं, परिश्रान्तोऽस्मि अस्या मृगतृष्णायाः प्रियवयस्यं निवर्त्तयितुं, यदि भवत्या मुखकमलं प्रेक्षिष्यते तदा निवर्त्तिष्यते इति ।

(ठ) यदार्य्य आज्ञापयति ।

प्रकार अपनी जीभको रोक कर रक्खूं ? (प्रकट) आः ! यह उर्वशी देवयोनि अप्सरा है, इसको देखकर ही महराज प्रायः उन्मत्त होगए हैं, वे केवल देवीको ही कष्ट नहीं देते बल्कि अपने मुखको भूँखारखकर दारुण कष्ट देरहे हैं ।

चेटी०—महाराज का सारा गुह्य-भेद खुलगया है, अब चलूं देवीसे यह वृतान्त कहूं ।

विदू०—निपुणिके ! मेरे कथनानुसार देवी (काशीराज की कन्या) से कहना कि मैं इस मृग-तृष्णा से प्रियसखाको निवृत्त करने की अनेक चेष्टाकरके थक गया हूं । यदि महाराज देवी के मुखकमल का दर्शन करेंगे तो हमें निवृत्त होने की सम्भावना है ।

चेटी—आर्य्य की जैसी अनुमति हो ।

(चेटी जाती है)

(नेपथ्ये बैतालिकः पठति) जयति जयति देवः ।

आ लोकान्तप्रतिहततमोवृत्तिरासां प्रजानां,
तुल्योद्योगस्तव च सवितुश्चाधिकारो मतो नः ।
तिष्ठत्येकक्षणमधिपतिर्ज्योतिषां व्योममध्ये,
षष्ठे काले त्वमपि लभसे देव ! विश्रान्तिमन्हः ॥ (१)

विदू—(कर्णं दत्त्वा) एसो उण पिअवअस्सो धम्मासणादो समुत्थिदो इधज्जेव आअच्छदि, ता जाव पासपलिवत्ती होमि । (ङ)

(ङ) एष पुनः प्रियवयस्यो धर्मासनात् समुत्थित इहैवागच्छति, तद्यावत् पार्श्वपरिवर्त्ती भवामि ।

(नेपथ्य में वैतालिक) महाराज की जय हो, जय हो महाराज !

(१) अन्वयः—आलोकान्तेति । आलोकान्तप्रतिहततमोवृत्तिः आसां प्रजानां तव सवितुश्चतुल्योद्योगः अधिकार च मतः । ज्योतिषां अधिपतिः व्योममध्ये एकक्षणं तिष्ठति; देव ! त्वमपि अन्हः षष्ठे काले विश्रान्तिं लभसे ।

व्याख्या—आलोकान्तं भुवनान्तपर्यन्तं प्रतिहता दूरीकृता तमसः अन्धकारस्य वृत्तिर्व्यापारो येन सः, आसां प्रजानां सम्बन्धे तव राज्ञः सवितुः सूर्य्यस्य च तुल्योद्योगः सदृशारम्भः अधिकारः अधिकृतिश्च मतः । स्वीकृतः ज्योतिषां ग्रहनक्षत्राणाम् अधिपतिः सूर्य्यः व्योममध्ये-आकाशान्तरम् एकक्षणं क्षणमात्रं तिष्ठति । हे देव ! त्वमपि अन्हो दिवसस्य षष्ठेकाले षड्भागे विश्रान्तिं विश्रामं लभसे अधिगच्छसि । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

भावार्थ—(इस श्लोक में कवि सूर्य्य और राजा की तुलना करता है) आप और भगवान् सूर्य्यदेव इन दोनों का उद्योग और अधिकार समान है, क्योंकि सूर्य्यदेवने प्रकाश प्रदान करके जिस प्रकार समस्त लोक के अन्धकार को दूर किया है, आप भी उसी प्रकार दर्शनमात्र से ज्ञानोपदेशादिद्वारा प्रजागणका अन्धकार दूर करते रहते हैं और ग्रहनक्षत्रादिज्योतिमण्डलके अधीश्वर भगवान् सूर्य्य जिसप्रकार मध्यान्हसमय गगन तलके मध्य देश में विश्राम लेते हैं, आप भी उसी प्रकार दिनके छटे भागमें विश्राम लेते हैं ।

विदू—(उसी ओर कान लगाकर)—यह तो प्रियसखा धर्मासन से उठकर इसी ओर को आरहे हैं अत एव अब मैं इनके पास पहुंच जाऊं ।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति उत्कण्ठितो राजा विदूषकश्च)

राजा—आ दर्शनात् प्रविष्टा सा मे सुरलोकसुन्दरी हृदयम्।
बाणेन मकरकेतोः कृतमार्गमवन्ध्यपातेन ॥ (२)

विदू—सपीड़ा क्खु जादा तत्थभोदी कासिराअदुहिदा। (ढ)

राजा—(निरीक्ष्य) रक्ष्यते भवता रहस्यनिक्षेपः ?

विदू—(आत्मगतम्) बञ्चिदम्हि दासीए धीआए णिउणिआए, अण्णधा कधं विअ संपुच्छदि बअस्सो ? (ण)

राजा—किं भवान् तूष्णीमास्ते ?

(ढ) सपीड़ा खलु जाता तत्र भवती काशीराजदुहिता।

(ण) वञ्चितोऽस्मि दास्याः दुहित्रा निपुणिकया, अन्यथा कथमिव संपृच्छति वयस्यः ?

(विदूषक जाता है)

(प्रवेश)

(उत्कण्ठितराजा और विदूषकका प्रवेश)

राजा-(२) अन्वयः—आ दर्शनादिति। सा सुरलोकसुन्दरी आ दर्शनात अवन्ध्यपातेन मकरकेतोः बाणेन मे हृदयं कृतमार्गं प्रविष्टा।

व्याख्या—सा सुरलोकसुन्दरी उर्वशी आ दर्शनात् मुखावलोकनपर्य्यन्तं अवन्ध्य-पातेन सफलपातेन मकरकेतोः कामस्य बाणेन मे मम राज्ञः पुरूरवसः हृदयं मानसं कृतमार्गं कृतान्तरं प्रविष्टा, मम हृदयमुच्छिद्य स उर्वशीदानीमन्तः करणे समायातेत्यर्थः। आर्य्यावृत्तम्।

भावार्थ—दर्शनमात्र से ही कामदेव ने अपने अव्यर्थ बाणों के आघात से मेरे हृदय को मार्ग ही बना दिया है, अर्थात् सुरलोक-सुन्दरी (उर्वशी) उसी मार्ग से मेरे हृदय में प्रविष्ट हुई है।

विदू०—माननीये ! देवि ! काशिराजदुहिता को अत्यन्त ही मर्म-पीड़ा हुई है।

राजा—(विदूषक की ओर देखकर)—"तुमने तो वे गुप्त बातें छुपा रक्खी है न" ?

विदू०—(स्वगत)—दासी कन्या निपुणिका ने मुझको ठग लिया है, नहीं तो महाराज यह बात क्यों पूंछते ?

राजा—तुम चुपचाप क्यों हो ?

विदू—भो ! एव्वं मए जीहा संजन्तिदा, जेण भवदो वि णत्थि पडिवअणं । (त)

राजा—युक्तम ; अथ केन इदानीमात्मानं विनोदयामि ?

विदू—भो ! महाणसं गच्छम्ह । (थ)

राजा—किं तत्र ?

विदू—तहि पञ्चविहस्स अब्भवहारस्स उत्तमण्णसंभारस्स भोअणं, मोअअसक्करपप्पूलेहिं उक्कण्ठं विणोदेदु । (द)

राजा—तत्र ईप्सितरससान्निधानाद्भवता रंस्यते, मया पुनः कथमसुलभप्रार्थयितव्य आत्मा विनोदयितव्यः ?

विदू—णं भवंपि तत्थभोदीए उव्वसीए दंसणपधं गदो ? (ध)

राजा—ततःकिम् ?

(त) भो ! एवं मया जिह्वा संयन्त्रिता, येन भवतोऽपि नास्ति प्रतिवचनम् ।

(थ) भो ! महानसं गच्छामः ।

(द) तत्र पञ्चविधस्य अभ्यवहारस्य उत्तमान्नसम्भारस्य भोजनं, मोदक-शर्करापर्पटैः उत्कण्ठां विनोदयतु ।

(ध) ननु भवानपि तत्र भवत्या उर्वश्या दर्शनपथं गतः ?

विदू०—सखे ! मैंने जीभ को इतना वशीभूत कर लिया है कि मुझ से आप के प्रश्न का उत्तर तक देने की शक्ति नहीं है ।

राजा—यह उचित नहीं है, जो हो-अब किस प्रकार से आत्म विनोद करूं ?

विदू—महाराज ! पाकशाला में चलिए ।

राजा—वहां क्या है ?

विदू—वहां पांच प्रकार का भोजन खाने को मिलेगा, जैसे कि मोदक-शर्करा-पापड़-इत्यादिक पदार्थों द्वारा उत्कण्ठा निवारण कीजिए ।

राजा—अभिलषितपदार्थों का स्वाद लेकर तुम तो वहां अपने शरीर को आनन्दित करसकोगे, किन्तु मेरी वाञ्छितवस्तु वहां दुर्लभ है, मैं किस प्रकार चित्त को आनन्दित करूंगा ?

विदू०—आपभी निःसन्देह माननीया उर्वशीके साथ दर्शनपथको प्राप्त होकर आनन्द होंगे ।

राजा—किस प्रकार से ?

विदू०—ण क्खु दे दुल्लह त्ति तक्केमि। (न)

राजा—पक्षपातोऽपि तस्याः रूपस्यालौकिक एव।

विदू०—एव्वं? वट्टदि कोदूहलं, किं दाव तत्थभोदीए उव्वसीए रूपेण अहंज्जेव दुदिओ णिरूपिदो? (प)

राजा—प्रत्यवयववर्णाना तु न कृता मया, तेन हि श्रूयतां समासतः।

विदू०—भो! अवहिदोम्हि। (फ)

राजा—वयस्य!

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः।
उपमानस्यापि सखे! प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः (३)

(न) न खलु ते दुर्लभेति तर्कयामि।

(प) एवं? वर्त्तते कौतूहलं, किं तावत् तत्रभवत्या उर्वश्या रूपेण अहमेव द्वितीयो निरूपितः?

(फ) भो! अवहितोऽस्मि।

विदू०—मेरे विचार में उर्वशी आपके लिये दुर्लभ नहीं रहेगी।

राजा—उसकी मनोज्ञता और सुन्दरता अलौकिक है।

विदू०—इस विषय में मुझको भी कौतुहल उत्पन्न हुआ है, उस माननीया उर्वशीके रूपकी क्या आवश्यकता है, मैं ही अद्वितीय रूपमें विद्यमान हूं।

राजा—मैंने उसके प्रत्येक अङ्गकी सुन्दरताका वर्णन नहीं किया है, तुम संक्षेपसे सुनो।

विदू०—मैं सावधान हूं।

राजा—सखे!

(३) **अन्वयः**—आभरणस्येति। सखे! तस्याः वपुः आभरणस्य आभरणम् (अस्ति) प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः उपमानस्य अपि प्रत्युपमानम् (अस्ति तदेवाहं पश्यामीति)।

व्याख्या—सखे! मित्र! तस्याः उर्वश्याः वपुः शरीरम् आभरणस्य भूषणस्य आभरणम् अलङ्कारः अस्ति, सर्वमेव मनोहारि वपुरित्यर्थः। प्रसाधनविधेः प्रसाधनसंस्कारस्य प्रकर्षेण साधितस्य विधेरित्यर्थः। प्रसाधनविशेषः प्रतिकर्मोत्तमं (वर्त्तते)। उपमानस्यापि चन्द्रादेः प्रत्युपमानमस्तीत्युर्वशी, चन्द्रादेः सकाशादाधिक्याच्चन्द्रादेरेवैतस्योपमेयेयमित्युर्वशीत्यर्थः। जगति लोके न किमपीदृशं पश्यामि येन तदङ्गमुपमीयते। आर्य्या च्छन्दः।

विदू—इदं दाव मिअतिण्णारसाहिलासिणा चांदएण विअ दिव्वरसाहिलासिणा भअदा चारुरूअत्तणं परिग्गहिदं । (ब)

राजा—विविधशिशिरोपचाराम्नान्यच्छरणमस्ति, तद्भवान् प्रमदवनमार्गमादेशयतु ।

विदू—(स्वगतम्) का गदी ? (प्रकाशम्) इदो इदो भवम् (भ) । (इति परिक्रामतः) एसो पमदवणपरिसरो अणालविदोवि पच्चुवगदो आअन्तुणा दक्खिणमारुएण । (म)

राजा—उपपन्नं विशेषणमस्य वायोः, अयं हि,—

निषिञ्चन् माधवीं लक्ष्मीं लतां कौन्दीञ्च लासयन् ।
स्नेहदाक्षिण्ययोर्योगात् कामीव प्रतिभाति मे ॥ (४)

(ब) इदं तावन्मृगतृष्णारसाभिलाषिणा चन्द्रेणेव दिव्यरसाभिलाषिणा भवता चारुरूपत्वं परिगृहीतम् ।

(भ) का गतिः? इती भवान् ।

(म) एष प्रमदवनपरिसरोऽनालपितो प्रत्युपगत आगन्तुना दक्षिणमारुतेन।

भावार्थ—सखे ! उसका शरीर अलंकारों का भी अलंकार है, वेशादिविन्यासका भी प्रसाधन विशेष है, उर्वशीका शरीर उपमानकाभी उपमान विशेष है।

विदू०—सखे ! आप मृग-तृष्णारसाभिलाषी चन्द्र के समान मनोहर सौन्दर्य्य की ही वासना करते हैं।

राजा—(नलिनीदलादि) विविधशीतलपदार्थोंके सेवनको छोड़कर मुझको संताप के निवारणका दूसरा उपाय दिखाई नहीं देता, अत एव तुम मुझको प्रमदवनका मार्ग दिखाओ।

विदू०—(स्वगत) इसके अतिरिक्त दूसरी गति ही क्या है (प्रगट) इधर आइए ! इधर आइए ! (यह कह परिक्रमा देता है) इस प्रमोद्यानका प्रांत (भाग) किसीके न बताने पर भी चलते हुए इस दक्षिण वायुद्वारा समझमें आजाता है ।

राजा—(दक्षिण-वायु कहने से) वायुका विशेषण युक्त संगत हुआ है। देखो यह ही—

(४) अन्वयः—निषिञ्चनेति । माधवीं लक्ष्मीं निषिञ्चन् कौन्दीञ्च लतां लासयन् स्नेहदाक्षिण्ययोर्योगात् कामीव मे प्रतिभाति ।

व्याख्या—माधवीं मधुमासोत्पन्नां वासन्तीमित्यर्थः लक्ष्मीं शोभां निषिञ्चन् अतिशयितां कुर्वन् कौन्दीं लतां वल्लीं च लासयन् विकासयन् स्नेहः आसक्तिस्तथा

विदू—ईदिसो ज्जेब अहिणिवेसो भोदु। (परिक्रामन्) इदं पमद-वणं पविसदु भवम (य)

राजा—वयस्य! प्रविश अग्रतः।

(उभौ प्रवेशं नाटयतः)।

राजा—(त्रासं रूपयित्वा) वयस्य! साधु मनसा समर्थितः आपत्प्रतीकारः किल मम उद्यानप्रवेशः, तच्च अन्यथैवोपपन्नम्।

विविक्षोर्यदिदं नूनमुद्यानं नाद्य शान्तये।
स्रोतसेवोह्यमानस्य प्रतीपतरणं महत्॥ (५)

विदू—कधं विअ? (र)

(य) ईदृश एवाभिनिवेशो भवतु। इदं प्रमदवनं, प्रविशतु भवान्।

(र) कथमिव?

दाक्षिण्यं अनुकूलता तयोः योगः तस्मात् कामीव काममस्यास्तीति तद्वत् कामातुर इव मे मम राज्ञः पुरूरवसः प्रतिभाति प्रतीयते उल्लसतीत्यर्थः। अनुष्टप्छन्दः।

भावार्थः—यह वसन्तऋतुका वायु वसंतलक्ष्मी को पुष्पोत्पादनमें समर्थ और कुन्दलताको नचाकर स्नेह-दयावशतः मेरे निकटमानो कामार्त की तुलना करता हुआ जान पड़ता है।

विदू—किस प्रकार अभिनिवेश होना चाहिए (परिक्रमण-पूर्वक) यही तो प्रमोदवन है, आप इस वन में प्रवेश कीजिए।

राजा—सखे! तुम पहिले प्रवेश करो।

(दोनों का प्रवेशाभिनय)

राजा—(डर दिखाकर) सखे! मैंने समझा था कि प्रमदोद्यानमें प्रवेश करने से मेरा विषाद दूर होजायगा, किन्तु यह बात गूढ़ है।

(५) अन्वयः—विविक्षोरिति। नूनं विविक्षोः यद् इदं उद्यानं अद्यशान्तये न स्रोतसेवोह्यमानस्य महत्प्रतीपतरणम् (अस्ति)।

व्याख्या—नूनं निश्चयेन विविक्षोःप्रवेष्टुमिच्छोःयद् इदं पुरोदृश्यमानम् उद्यानम् उपवनं अद्यशान्तये पापानिवृत्तिरेवोत्पादकायेत्यर्थः दुःखनाशकायेतियावत्, न जातम्। स्रोतसा प्रवाहेण उह्यमानस्य प्राप्यमाणस्य महदेव प्रतीपतरणं प्रतिकूलप्लवनमिव संजातमित्यर्थः।

भावार्थः—धारामें बहता हुआ व्यक्ति धारा के विपरीत की ओर तैरने से जिस प्रकार उसको शान्ति नहीं मिलती, इस उद्यानमें प्रवेश करके मुझको भी उसी प्रकार शान्ति नहीं मिलती।

विदू—कैसे?

राजा—इदमसुलभवस्तुप्रार्थनादुर्निवारं
प्रथममपि मनो मे पञ्चबाणः क्षिणोति।
किमुत मलयवातोन्मूलितापाण्डुपत्रै-
रुपवनसहकारैर्दर्शितेष्वङ्कुरेषु ॥ (६)

विदू—अलं भवदो परिदेविदेण, अइरेण, इच्छिदसम्पादओ अणङ्गो ज्जेव दे सहाओ हुविस्सदि त्ति। (ल)

राजा—प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवचनम्।

(इति परिक्रमातः)

(ल) अलं भवतः परिदेवितेन, अचिरेण इष्टसम्पादकोऽनङ्ग एव ते सहायो भविष्यतीति।

राजा—(६) अन्वयः—इदमिति। पंचबाणः प्रथममपि असुलभवस्तुप्रार्थना दुर्निवारं मे इदं मनः क्षिणोति, मलयवातोन्मूलितापाण्डुपत्रैः उपवनसहकारैः दर्शितेष्वंकुरेषु किमुत ?

व्याख्या—पञ्चबाणः कामः प्रथममपि पूर्वमपि उद्यानप्रवेशात् असुलभं दुष्प्राप्यं खलूर्वशीरूपं वस्तु, प्रार्थना प्रार्थ्यतेऽनेनेतिकरणव्युत्पत्याऽभिलाषः, मे मम पुरुरवसः राज्ञः इदं मनः मानसं क्षिणोति दुनोति जीर्णीकरोतीत्यर्थः। मलयवातेन मलयगिरे-वायुना उन्मूलितानि समोन्मूलितान्युच्छिद्यतानि वा-पाण्डुपत्राणि पीतादिपलाशपत्राणि यैस्तैः उपवनसहकारैः दक्षिणपवनेनापसारितपीतपत्रैरित्यर्थः। दर्शितेषु मन्मथदृष्टिपथपतितेषु अंकुरेषु सत्सु किमुत ? कामस्तु सर्वदैव निःसहाय एव क्लेशप्रदायी, सहायवान् पुनः किमपि न करोति ? मालिनी च्छन्दः, तल्लक्षणं यथा—"ननमयययुतेयं मालिनी भोगलोकैः"।

भावार्थ—अब इस समय मेरे चित्तने एक ऐसी दुर्लभ बातकी अभिलाषाकी है जिसको कि अब पुनः निवृत नहीं करासक्ता। प्रथम तो कामदेव ने अत्यन्त दुःख देरक्खा है, इस परभी फिर मलयवायु-द्वारा जिसके पीले रंगवाले पत्ते टूट गए हैं इस प्रमदवनस्थित उन सब आम्रवृक्षोंने पुष्पाङ्कुर दिखाने आरंभ किए हैं सुतरां मेरा चित्त स्थिर न होकर उत्तरोत्तर फिर भी व्याकुल हुआ जाता है।

विदू०—आपको अनुतापकरनेकी आवश्यकता नहीं है, अभीष्ट सम्पादक कामदेव शीघ्र ही आपके प्रति अनुकूल होंगे।

राजा—ब्राह्मणका वचन शिरोधार्य्य है।

(यह कहकर परिक्रमण करता है)

विदू—पेक्खदु पेक्खदु भवं बसन्ताबदारसूअअस्स अहिरामत्तणं पमदबणस्स। (व)

राजा—ननु! प्रतिपदमेव तावदवलोकयामि। अत्रहि—

अग्रे स्त्रीनखपाटलं कुरुवकं श्यामं द्वयोर्भागयो
बालाशोकमुपोढ़रागसुभगं भेदोन्मुखं तिष्ठति।
ईषद्बद्धरजः कणाग्रकपिशा चूते नवा मञ्जरी
मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे! मध्ये मधुश्रीः स्थिता॥ (७)

(व) प्रेक्षतां प्रेक्षतां भवान् वसन्तावतारसूचकस्य अभिरामत्वं प्रमदवनस्य।

विदू०—महाराज! देखिए! देखिए! वसन्तका आविर्भाव होने में प्रमद वनकी कैसी मनोहर शोभा हुई है!

राजा—मैं इसकी शोभाको अपने प्रतिपद में देखरहा हूं। यहां ही :—

(७) अन्वयः—अग्र इति। सखे! मधुश्रीः मुग्धत्वस्य यौवनस्य च मध्ये स्थिता, अग्रे स्त्रीनखपाटलं कुरुवकं द्वयोः भागयोः श्यामं बालाशोकम् उपोढ़रागसुभगं भेदोन्मुखं तिष्ठति, चूते नवा मञ्जरी ईषद्बद्धरजः कणाग्रकपिशा (अस्ति)।

व्याख्या—हे सखे! हे मित्र! मधुश्रीः वसन्तमासस्यशोभा मुग्धत्वस्य यौवनस्य च मध्ये मध्यभागे स्थिता नातित्यक्ता नापिखल्वाव्यक्तेतिभावः। कथम्? अग्रे सन्मुखे पाटलं पुष्पं स्त्रीनखसदृशमग्रे दृश्यते, कुरुवकं द्वयोः भागयोः उभयतः श्यामं श्यामवर्णमस्तीति। बालाशोकं नूतनमशोककुसुमम् उपोढ़रागसुभगम् उत्कृष्टतयैव-रक्तत्वमस्तीतिभावः। भेदोन्मुखं विकासोत्सुकं तिष्ठति, चूते आम्रवृक्षे नवा नूतना मञ्जरी ईषद्बद्धरजः कणाया अल्पसंजातपरागलेशेन अग्रकपिशा अग्रभागस्य पांशुला (वर्त्तते)। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः॥

भावार्थः—कुरुवकनामक फूलों का अग्रभाग औरतों के नखों के समान पाण्डुवर्ण में वर्णित है, इसी अवस्था में दोनों के पार्श्ववर्ती होनेपर ये अतीव कोमल तथा मनोहर श्यामवर्ण तथा लाल रंग के अशोक नामक पुष्प खिलने को है, नई आम की मञ्जरी में नवीनपराग उत्पन्न होने से उसके अग्रभाग ने कपिल (पाण्डु) वर्ण धारण किया है। अतएव हे सखे! इस समय वसन्त मुग्धदशा और यौवन दशा इन दोनों के बीच में विराजमान है।

विदू—भो ! एसो कसणमणिसिलावट्टसणाहो माहवीलदामण्ड-ओ भमरसंह-पञ-विहाडिदेहि कुसुमेहिं किदोवआरो विअ अत्त-भवदो वट्टदि ; ता अणुग्गहीअदु एसो । (श)

राजा—यदभिरोचते भवते ।

(इति उपविशतः ।)

विदू—ता दाणिं इहासीणो ललिदलदालोहमाणलोअणो उव्व-सीगदं उक्कण्ठं विणोदेदु भवम् । (ष)

राजा—(निश्वस्य) ।

बहुकुसुमितास्वपि सखे ! नोपवनलतासु रम्याविटपासु ।
चक्षुर्बध्नाति धृतिं तदङ्गनालोकदुर्ललितम् ॥ (८)
तदुपायश्चिन्त्यतां यथा सफलप्रार्थनो भवेयम ।

(श) भो ! एष कषणमणिशिलापट्टसनाथो माधवीलतामण्डपो भ्रमरसंघपद-विघट्टितैः कुसुमैः कृतोपचार इव अत्रभवतो वर्त्तते । तदनुगृह्यतामेषः ।

(ष) तदिदानीमिहासीनो ललितलतालोभमानलोचन उर्वशीगतामुत्कण्ठां विनो-दयतु भवान् ।

विदू०—महाराज ! यह देखिये काले रंग की मणिशिला में सुशोभित माधवी लताका मण्डप है, भ्रमरवृन्द अपने पदसमूह द्वारा उसके पुष्पसमूह को विघटित करने सेजान पड़ता है कि मानो—माधवीलताका मण्डप पुष्पराजि-द्वारा आपकी अर्चना कररहा है । अतः आप बैठकर उसको अनुगृहीत कीजिएगा ।

राजा—अच्छा ! जो तुम्हारी इच्छा हो,—

(दोनों आपस में बैठते हैं) ।

विदू०—तो अब आप इस स्थान में बैठकर मनोहर लताओं की शोभा देखते हुए उर्वशी की चिन्ता से उत्पन्न हुई उत्कण्ठा दूर कीजिए ।

राजा—(लम्बा सांस लेकर) ।

(८) अन्वयः—बहुकुसुमितास्विति । सखे ! तदङ्गनालोकदुर्ललितं (मे) चक्षुः बहुकुसुमितासु रम्यविटपासु उपवनलतासु अपि धृतिं न बध्नाति ।

व्याख्या—सखे ! मित्रवर ! तस्याः उर्वश्याः अङ्गनालोकेन दर्शनेन दुर्ललितम् अस्थिरं तद्दर्शनेन मे चक्षुः नेत्रम् (इदानीं) बहुकुसुमितासु अतीवगन्धयुक्तासु विकसितासु च रम्यविटपासु आदर्शविटपासु उपवनलतासु आरामवल्लीसु धृतिं धैर्य्यं न बध्नाति । आर्या छन्दः ।

भावार्थ—सखे ! यद्यपि यह कुसुमाकरोद्यान बहुत लताओं से

विदू—(विहस्य) भो भो ! अहल्लाकामुअस्स इन्दस्स बज्जो सचिवो, उव्वसीपज्जु स्सुअस्स भवदोवि अहं, दुवे वि एत्थ उन्मत्तआ। (स)

राजा—न खलु चिन्तयति भवान् ?

विदू—(चिन्तयति) एस चिन्तेमि ; मा उण परिदेविदेहिं समाधिं भञ्जिस्ससि। (निमित्तं सूचयित्वा आत्मगतम्) अहो ! अहं कज्जदंसी। (ह)

राजा—असुलभा सकलेन्दुमुखी च सा,

किमपि चेदमनङ्गविचेष्टितम्।

अभिमुखीष्विव वाञ्छितसिद्धिषु,

व्रजति निर्वृतिमेकपदे मनः ॥ (६)

(स) भो भो ! अहल्याकामुकस्य इन्द्रस्य वज्रं सचिवः, उर्वशीपर्युत्सुकस्य भवतोऽपि अहं, द्वावप्यत्र उन्मत्तौ।

(ह) एष चिन्तयामि, मा पुनः परिदेवितैः समाधिं भङ्क्ष्यसि। अहो ! अहं कार्य्यदर्शी।

तथा पुष्पादिक मनोहर शाखाओं से सुशोभित है किन्तु तो भी उर्वशी के दर्शन से मेरे नेत्र इससे देखकर धैर्य्य धारण नहीं कर सकते। यहां उर्वशी के वियोग से राजा का अधीरता वर्णन है।

ऐसा कोई उपाय सोचिये जिस से मैं सफल मनोरथ होऊँ।

विदू—(हंस कर)—महाराज ! अहिल्या कामुक इन्द्र का जिस प्रकार वज्र सहायक है मैं भी उसी प्रकार उर्वशी की उत्कण्ठा से (आकुल) आप का सहायक हूं। अब दोनों ही उन्मत हैं।

राजा—सखे ! क्या तुम इस विषय में कुछ भी चिन्ता नहीं करते ?

विदू—(चिन्ता मग्न)—यह लो मैं चिन्ता करता हूं, आप विलाप करके अब मेरी समाधि को भंग न करें क्योंकि मैं एक कार्य्य को करने वाला हूं,—(जिससे कि आपको उर्वशी शीघ्र मिल जाए यह देखने वाला हूं)।

राजा—(६) **अन्वयः**—असुलभेति। सकलेन्दुमुखी सा असुलभा किमपि च इदम् अनङ्गविचेष्टितम्, अभिमुखीषु वाञ्छितसिद्धिष्विव मनः एकपदे निर्वृत्तिं व्रजति।

व्याख्या—सकलेदुमुखी पूर्णचन्द्रमुखी सा उर्वशी-असुलभा दुष्प्राप्या किमपि च मयि राज्ञि इदम् अनङ्गविचेष्टितं कामविक्रीडितं तथापि अभिमुखीषु सम्पन्नोन्मुखीषु वाञ्छितसिद्धिषु इष्टसिद्धिषु यावन्मनस्तुष्टिर्जायते तद्वदिति ममाप्यत्रमनः एकपदे संशयराहित्येन निर्वृत्तिं सन्तोषम् एति याति गच्छतीत्यर्थ। द्रुतविलम्बितं छन्दः, तल्लक्षणं यथा,—"द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ"।

(इति मदनोत्सुकस्तिष्ठति)

(ततः प्रविशति आकाशयानेन उर्वशी चित्रलेखा च)

चित्र—सहि उव्वासि ! कहिं क्खु अणिद्दिट्ठकारणं गच्छीअदि ? (च)

उर्व—(मदनवेदनामभिनीय सलज्जम्) सहि ! हेमकूडसिहरे लदा-विडबे लग्गं वैजअन्तिअं मोआवेहित्ति मए भणिदा, तुए उण-उअहसिअ भणिदम्हि, दिढं क्खु लग्गा, ण सक्का मोआविदुं ; दाणिं पुच्छसि, कहिं अणिद्दिट्ठकारणं गच्छीअदि ? (क)

चित्र—किं णु क्खु तस्स राएसिणो पुरूरवस्स सआसं पत्थिदासि ? (ख)

उर्व—एसो सो अगणिदलज्जो ववसाओ । (ग)

(च) सखि उर्वशि ! कुत्र खलु अनिर्दिष्टकारणं गम्यते ?

(क) सखि ! हेमकूटशिखरे लताविटपे लग्नां वैजयन्तिकां मोचयेति मया भणिता, त्वया पुनरुपहस्य भणितास्मि, दृढं खलु लग्ना न शक्या मोचयितुम्; इदानीं पृच्छसि कुत्र अनिर्दिष्टकारणं गम्यते ?

(ख) किं खलु तस्य राजर्षेः पुरूरवसः सकाशं प्रस्थितासि ?

(ग) एष सोऽगणितलज्जो व्यवसायः ।

भावार्थ—उस पूर्णचन्द्रमुखी का सहज में मिलना कठिन है, मुझ में मदन का विकार भी बहुत है, किन्तु अभीष्ट की सिद्धि फलोन्मुखी होने से ही मेरे मनको एकबार धीरज मिलेगा।

(यह कहकर कामार्तभाव से अवस्थान)

(आकाशमार्ग से उर्वशी और चित्रलेखा का प्रवेश)

चित्र—सखि उर्वशि ! अनिर्दिष्ट, कारण से कहां जा रही हो ?

उर्वशी—(काम-पीड़ा का अनुभव करके लज्जा के साथ) सखि ! हेमकूट के शिखर पर जब लताजाल में मेरी एकावली लग गई थी तब मैंने कहा था, सखि ! खोल दो, तुम ने केवल हंसकर कहा था, यह दृढ़ रूप से है, छुड़ा नहीं सकती,' तो अब फिर मुझ से क्यों पूछती हो कि 'तूँ अनिर्दिष्ट कारण से कहां जा रही हो' ?

चित्र०—तो क्या उस पुरुरवा नामक राजर्षि के पास जाती हो ?

उर्व०—इसी इच्छा से लज्जा को मारा है।

चित्र—को उण सहीए पढमं तहिं पेसिदो ? (घ)

उर्व—णं हिअओ। (ङ)

चित्र—तधावि सम्पधारीअदु दाव। (च)

उर्व—मअणो क्खु णिओएदि मं, कुदो सम्पधारणा ? (छ)

चित्र—अदो अवरं णत्थि मे उत्तरं। (ज)

उर्व—तेण आदिसदु मे पिअसही मग्गं, जेण तहिं गच्छन्तीए ण अन्तराओ भवे। (झ)

चित्र—सहि ! बीसत्था होहि, णं भअवदा देअगुरुणा अवराइदं णाम सिहाबन्धणीं विज्जम् उअदिसन्तेण तिदसप्पालिपक्खस्स अलङ्घणीआ कदम्ह। (ञ)

(घ) कः पुनः सख्या प्रथमं तत्र प्रेषितः ?

(ङ) ननु हृदयम्।

(च) तथापि सम्प्रधार्य्यतां तावत्।

(छ) मदनः खलु नियोजयति मां, कुतः सम्प्रधारणा ?

(ज) अतोऽपरं नास्ति मे उत्तरम्।

(झ) तेन आदिशतु मे प्रियसखी मार्गं, येन तत्र गच्छन्त्या न अन्तरायो भवेत्।

(ञ) सखि ! विश्वस्ता भव ; ननु भगवता देवगुरुणा अपराजितां नाम शिखाबन्धनीं विद्यामुपदिशता त्रिदशप्रतिपक्षस्य अलङ्घनीये कृते स्वः।

चित्र०—क्या तुम ने वहां पहले भी किसी को भेजा है ?

उर्व—हां ! अपने हृदय को वहां पहले भेज रक्खा है।

चित्र—तो भी अपने मन को स्थिर रक्खो।

उर्व—कामदेव ने मुझको इस कार्य्य में नियुक्त किया है, तो फिर मन कैसे स्थिर रहेगा।

चित्र०—इस विषय में अब मेरा तो कोई भी उत्तर नहीं है।

उर्व—तो प्रियसखि ! आकाशमार्ग में कोई भी हानि न हो ऐसा कोई सरलमार्ग दिखाओ।

चित्र—सखि ! विश्वास रक्खो ! भगवान् देव गुरु ने हम दोनों को जिस प्रकार अपराजिता नाम्नी शिखाबन्धिनी विद्याका जो उपदेश दिया है, उस से हम दोनों देवशत्रुओं से अधर्षणीय हो गई हैं, अर्थात् वे देवशत्रु अब हमें मर्दन नहीं कर सकते।

उर्व—(सलज्जम्) ताए पश्रोग्रं सव्वं सुमरेसि ? (ट)

चित्र—हिअओ एदं सव्वं जाणादि । (ठ)

उर्व—सहि ! हिअअं एदं सव्वं जाणादि ज्जेव; मम उण तधावि अदिभएण अणिच्चओ । (ड)

(उभे भ्रमणं रूपयतः)

चित्र—सहि ? पेक्ख पेक्ख, एदं भअवदीए भाईरहीए जउणा-सङ्गमपावणेसु सलिलेसु पुण्णेसु अवलोअन्तस्स विअ अत्ताणअं पइट्ठाणस्स सिहाभरणभूदं विअ तस्स राएसिणो भवणम् उवगदम्ह । (ढ)

उर्व—(सस्पृहमवलोक्य) णं वोत्तव्वं ठाणान्तरगदो सग्गो त्ति । हला ! कहिं सो आवण्णाणुकम्पी भवे ? (ण)

(ट) तस्याः प्रयोगं सर्वं स्मरसि ?

(ठ) हृदयमेतत् सर्वं जानाति ।

(ड) सखि ! हृदयमेतत् सर्वं जानात्येव ; मम पुनस्तथापि अतिभयेन अनिश्चयः ।

(ढ) सखि ! पश्य पश्य, इदं भगवत्या भागीरथ्या यमुनासङ्गमपावनेषु सलिलेषु पुण्येषु अवलोकयत इवात्मानं प्रतिष्ठानस्य शिखाभरणभूतामिव तस्य राजर्षेर्भवनमुपगते स्वः।

(ण) ननु वक्तव्यं स्थानान्तरगतः स्वर्ग इति। अयि! कुत्र स आपन्नानुकम्पी भवेत्?

उर्व—(लज्जा के साथ) उस विद्या का प्रयोग क्या तुमको याद है ?

चित्र०—मेरा हृदय सब ही जानता है; (मुझे स्मरण है) ।

उर्व०—हृदय सब जानता है, सो तो ठीक है, किन्तु अत्यन्त डर के साथ मेरे हृदय में स्थिर विश्वास उत्पन्न नहीं होता ।

(यह कहकर परिक्रमण करती हैं) ।

चित्र०—सखि ! देखो—देखो ! हम प्रतिष्ठाननगर के शिखा-लंकार स्वरूप राजर्षि के भवन में पहुंच गई है । यहां भगवती-जान्हवी (गंगा) यमुना के साथ मिलकर पवित्र और पुण्य जनक निर्मल जल द्वारा मानो तुम्हारा दर्शन कर रही हैं ।

उर्व—(सतृष्ण नेत्रों से देखकर) स्थानानन्तर स्वर्ग में आई यह बात तुमको कहनी उचित है ? अरी ! मुझ सरीखी दुःखिया पर दया लाने के लिए राजर्षि इस समय कहां हैं ?

चित्र—**एदस्सिं णन्दणवणेक्कप्पदेसे बिअ पमदवणे ओदरिअ जाणिस्सामो ।** (त)

(उभे अवतरत:)

चित्र—(राजानं दृष्ट्वा सहर्षम्) **सहि ! एसो पढ़मोदिदो बिअ भअवं चन्दो कोमुदिम. अवेक्खदि तुमं ।** (थ)

उर्व—(विलोक्य) **हला ! दाणिं पढ़मदंसणादोबि सबिसेसपिअ-दंसणो मे महाराओ पड़िभादि ।** (द)

चित्र—**जुज्जदि ; ता एहि, उबसप्पम्ह ।** (ध)

उर्व—**ण दाब उबसप्पिस्सं तिरक्करिणीपच्छण्णा पासपलिब-त्तिणी भबिअ सुणिस्सं दाब, पासपलिबत्तिणा बअस्सेण सह विजणे किं मन्तअन्तो चिट्ठदि ।** (न)

चित्र—**जधा दे रोअदि ।** (प) (उभे यथोक्तमनुतिष्ठत:)

(त) एतस्मिन् नन्दनवनैकप्रदेश इव प्रमदवने अवतीर्य्य ज्ञास्याम: ।

(थ) सखि ! एष प्रथमोदित इव भगवान् चन्द्र: कौमुदीमपेक्षते त्वाम् ।

(द) अयि ! इदानीं प्रथमदर्शनतोऽपि सविशेषप्रियदर्शनो मे महाराज: प्रतिभाति ।

(ध) युज्यते ; तदेहि उपसर्पाव: ।

(न) न तावदुपसर्प्स्यामि, तिरस्करिण्या प्रच्छन्ना पार्श्वपरिवर्त्तिनी भूत्वा श्रोष्यामि तावत् पार्श्वपरिवर्त्तिना वयस्येन सह विजने किं मन्त्रयंस्तिष्ठति ।

(प) यथा ते रोचते ।

चित्र०—**नन्दनवन के एकांश की समान** (मनोहर) **इस प्रमद्वन में उत्तर कर जाना होगा ।**

(यह कहकर दोनों उतरती हैं) ।

चित्र०—(राजा को देखकर हर्ष से) **सखि ! यह देखो प्रथम उदय प्रकार हुए भगवान् चन्द्रमा जिस प्रकार ज्योत्स्ना की प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार राजर्षि भी तुम्हारी बाट देख रहे हैं ।**

उर्व—(देखकर) **अरी ! मैने राजर्षि को जब पहले देखा था, अब यह पहले से भी अधिक प्रियदर्शन दीख पड़ते हैं ।**

चित्र०—**यह बात ठीक है, तो आओ पास चलें !**

उर्व०—**इस समय पास नहीं चलूंगी, तिरस्करिणी विद्या-द्वारा गुप्त रीति से पास जाकर सुनूंगी कि समीप रहने वाले सखा से महाराज एकान्त में क्या कथोपकथन** (बातचीत) **करते हैं ?**

चित्र०—**तुम्हारी जैसी रुचि हो** (दोनों का उसी प्रकार से अवस्थान होता है) ।

विदू—भो ! चिन्तिदो मए दुल्लहपणइजणस्स समागमोवाओ (फ)

(राजा तूष्णीमास्ते)

उर्व—का उण धण्णा इत्थिआ, जा इमिणा परिमुग्गमाणा अत्ताणअं विणोदेदि ? (ब)

चित्र—हला ! झाणस्स किं बिलम्बीअदि ? (भ)

उर्व—सहि ! भीआमि क्खु सहसा पहावादो बिण्णादुं । (म)

विदू—भो ! णं भणामि चिन्तिदो मए दुल्लहपणइजणसमागमोवाओ । (य)

राजा—वयस्य ! कथ्यताम् ।

विदू—सिविणसमागमकारिणं णिद्दं सेवदु भवं; अथवा तत्थभोदीए उव्वसीए पडिकिदिं चित्तफलए अहिलिहिअ आलोअन्तो अत्ताणअं बिणोदेदु । (र)

(फ) भोः ! चिन्तितो मया दुर्लभप्रणयिजनस्य समागमोपायः ।

(ब) का पुनर्धन्या स्त्री, या अनेन परिमृग्यमाणा चात्मानं विनोदयति ?

(भ) अयि ! ध्यानाय किं विलम्ब्यते ?

(म) सखि ! बिभेमि खलु सहसा प्रभावाद्विज्ञातुम् ।

(य) भो ! ननु भणामि, चिन्तितो मया दुर्लभप्रणयिजनसमागमोपायः ।

(र) स्वप्नसमागमकारिणीं निद्रां सेवतां भवान्; अथवा तत्रभवत्या उर्वश्याः प्रतिकृतिं चित्रफलकेऽभिलिख्य आलोकयन्नात्मानं विनोदयतु ।

विदू—महाराज ! दुर्लभ प्रणयिजनों के समागम का उपाय मैंने सोच लिया है ।

(राजा का मौनभाव से अवस्थान)

उर्व०—कौन वैसी धन्य रमणी है ? जिसकी खोज करके महाराज आत्म विनोद कर रहे हैं ?

चित्र०—सखि ! ध्यान में अब विलम्ब क्यों है ? (अभी ध्यानयोग से सर्व तत्त्व जान लो) ।

उर्व०—सखि ! सहसा ध्यानयोग के द्वारा सब विषय जान लेने में डर लगता है (क्योंकि ध्यान योग से यदि बात ज्ञात हो कि महाराज किसी दूसरी रमणी में आसक्त हैं, तो फिर मेरे क्लेश की सीमा न रहेगी, इसी लिए डर लगता है)।

विदू—महाराज ! मैं यह बात कर रहा हूं कि दुर्लभ प्रणयिजनों के समागम का उपाय मैंने सोच लिया है ।

राजा—सखे ! क्या उपाय है ? कहो ।

विदू०—आप स्वप्न-समागम-कारिणी-निद्रा का सेवन कीजिए,

उर्व—हिअअ ! समस्सस। (ल)

राजा—तदुभयमपि अनुपपन्नं; पश्य।—

हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं, ततः
कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम्।
न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियां समवाप्य तां
मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे ! न भविष्यति ॥ (१०)

चित्र—सहि ! सुदं तुए वअणं ? (व)

(ल) हृदय ! समाश्वसिहि।
(व) सखि ! श्रुतं त्वया वचनम् ?

अथवा चित्रपट में उर्वशी की मूर्त्ति अंकित करके दर्शन दीजिए, तो फिर अवश्य ही अपनी आत्मा को आनन्दित कर सकोगे।

उर्व—हृदय ! आश्वसित हो (धैर्य्य धारण कर)।

राजा—ये दोनों बातें ही युक्ति के विरुद्ध हैं,—देखो—

(१०) **अन्वयः**—हृदयमिति। कामस्य इषुभिः इदं हृदयम् अन्तःसशल्यं, कथम् स्वप्ने समागमकारिणीं निद्रां न उपलभे ? ततः आलेख्येऽपि तां सुवदनां प्रियां समवाप्य सखे ! मम नयनयोः उद्बाष्पत्वं न भविष्यति ?

व्याख्या—कामस्य कामदेवस्य इषुभिः बाणैः इदं मामकीनं हृदयम् अन्तः अन्तःकरणं सशल्यम् (अस्ति) खलूर्वशीविरहेऽनङ्गेषवो मां पीडयन्ति विरहव्रणत्वादिति-भावः। कथमतोऽहं स्वप्ने समागमकारिणीं निद्रां न उपलभे न अधिगच्छामि ? अलेख्येऽपि चित्रपटेऽपि तां सुवदनां चारुमुखीं प्रियामुर्वशीं समवाप्य समेत्य सम्पूर्णमनालेख्येत्यर्थः। सखे ! मित्र ! मम राज्ञः पुरुरवसः नयनयोः लोचनयोः उद्बाष्पत्वं समागतनेत्रजलं किं न भविष्यति ? अपितु भविष्यत्येवेति। हरिणी छन्दः, तल्लक्षणं यथा—'रस-युगहयैर्न्सौ म्रौस्लौ गो यदा हरिणी तदा'।

भावार्थ—देखो ! मेरा हृदय कामदेव के बाणों से मानो विद्ध हो रहा है, किस प्रकार से ? स्वप्न-समागम-कारिणी-निद्रा का सेवन करूं, और उस चन्द्र मुखी के चित्र-पट में अङ्कित करके देखने में आंसू उमड़ आने के कारण उसको नहीं देख सकूंगा, सुतरां सखे ! ये दोनों उपाय ही मेरे पक्ष में विफल हैं।

चित्र०—सखि ! महाराज की बात सुनी है ?

उर्व—सुदं ; ण उण पज्जत्तं हिअअस्स । (श)

विदू—एत्तिको मे मदिविहवो । (ष)

राजा—(निश्वस्य) ।—

नितान्तकठिनां रुजं मम न वेद यो मानसीं
　　प्रभावविदितानुरागमवमन्यते वापि माम् ।
अबद्धफलनीरसं प्रतिनिधाय तस्मिन् जने
　　समागममनोरथं भवतु पञ्चबाणः कृती ॥ (११)

उर्व—(सखीमवलोक्य) हद्धी हद्धी ! मंपि एव्वं अवगच्छदि महाराओ, अहं उण असमत्थम्हि अग्गदो भविअ अत्ताणअं दंसइदुं, ता पहावणिम्मिदेण भुज्जवत्तेण लेहं सम्पादिअ अन्तरा से खिविदुमिच्छामि । (स)

(श) श्रुतं ; न पुनः पर्य्याप्तं हृदयस्य ।

(ष) एतावान् मे मतिविभवः ।

(स) हा धिक् हा धिक् ! मामप्येवमवगच्छति महाराजः । अहं पुनरसमर्थास्मि अग्रतो भूत्वा आत्मानं दर्शयितुम् ; तत् प्रभावनिर्मितेन भूर्जपत्रेण लेखं सम्पाद्य अन्तरा तस्य क्षेप्तुमिच्छामि ।

उर्व०—सुनी है, किन्तु इस में भी मेरा हृदय तृप्त नहीं होता ।

विदू०—मेरी बुद्धि की शक्ति यहीं तक है ।

राजा—(श्वास लेकर) ।

(११) अन्वयः—नितान्तकठिनामिति । यो मम नितान्तकठिनां मानसीं रुजं न वेद, वा प्रभावविदितानुरागं माम् अवमन्यते, पंचबाणः तस्मिन् जने अबद्धफलनीरसं समागममनोरथं प्रतिनिधाय कृती भवतु ।

व्याख्या—यो जनः खलूर्वशीरूपः मम राज्ञः पुरुरवसः नितान्तकठिनां मानसीं रुजं न वेद, ममातिशयपीडामविदन्नित्यर्थः । वा अथवेति प्रभावेण ध्यानबलेन विदितानुरागं ज्ञातरतिरहस्यं मां पुरुरवसम् अवमन्यते जानाति वेतीत्यर्थः, पञ्चबाणः कामः तस्मिन् एवं संभूते जने अबद्धफलनीरसं वैफल्यकठोरं समागममनोरथम् अभिलाषमित्यर्थः । प्रतिनिधाय प्रतिष्ठाप्य सन्निवेश्येत्यर्थः, कृती कुशलो भवतु अस्तु स्यादेवेत्यर्थः। पृथ्वीच्छन्दः।

भावार्थ—जो व्यक्ति मेरे अत्यन्त दारुण मानसिक कष्ट को नहीं जानता है अथवा अपनी शक्ति के बल से मेरा अनुराग जानकर भी मुझ को अपमानित करता है मदन उस उर्व्वशी रूप व्यक्ति में मेरा निष्फल समागमरूप मनोरथ स्थापन करके कुशली हो ।

उर्वशी—(सखी की ओर देखकर) हा धिक् ! हा धिक् ! महाराज

चित्र—अणुमदं मे। (ह)

(उर्वशी नाट्येनाभिलिख्य क्षिपति)

विदू—अविद ! भो किएणेदं ? भुअङ्गणिम्मोअ किं खादिदुं मं णिवडिदं ? (च)

राजा—(दृष्ट्वा) नायं भुजङ्गनिर्मोकः, भूर्जपत्रगतोऽयमक्षरविन्यासः।

विदू—णं अदिट्ठाए उव्वसीए भवदो परिदेविअं सुणिअ भुज्जवत्ते महाणुराअसूअआ अक्खरा अहिलिहिअ विसज्जिआ भवे। (क)

राजा—नास्ति अशक्यं दैवस्य। (गृहीत्वा अनुवाच्य, च सहर्षम्) सखे ! उपपन्नस्ते वितर्कः।

विदू—जं एत्थ अहिलिहिदं तं सुणिदुं इच्छामि। (ख)

(ह) अनुमतं मे।

(च) अविद भोः ! किमिदम् ? भुजङ्गनिर्मोकः किं खादितुं मां निपतितः ?

(क) ननु ! अदृष्टया उर्वश्या भवतः परिदेवितं श्रुत्वा भूर्जपत्रे महानुरागसूचका अक्षरा अभिलिख्य विसृष्टा भवेयुः।

(ख) यदत्र अभिलिखितं तत् श्रोतुमिच्छामि।

मुझको ऐसी निठुर हृदयवाली जानते हैं। मैं तो फिर भी अपनी आत्मा को आगे होकर दिखाने के लिये असमर्थ हूँ उसी ही के प्रभावनिर्मित भोजपत्र पर कुच्छ लेखकरके फैंकना चाहती हूं।

चित्र—मैं भी यह कहती हूं।

(उर्वशी नाट्यद्वारा पत्र को लिख कर फैंकती है)

विदू०—अहो ! अहो ! क्या यह सांप की कैंचुली हमको ग्रास करने के लिये गिरी है !

राजा—(देखकर) यह सांपकी कैंचुली नहीं है, किन्तु भोजपत्र पर लिखी हुई सुन्दराक्षरोंका एक विन्यास है।

विदू०—अहो ! निःसन्देह सौभाग्यवश आपका अनुताप सुनकर उर्वशीने भोजपत्र पर अनुरागसूचक पत्रिका लिखकर फैंकी है।

राजा—दैवके लिये असाध्य कुच्छ नहीं है। (पत्र ले तथा पढ़कर हर्ष के साथ) सखे ! तुम्हारा अनुमान ठीक है।

विदू—उस में क्या निकला ! यह सुनना चाहता हूं।

उर्व—साहु साहु अज्ज ! णाअरोसि । (ग)

राजा—श्रूयताम् । (इति वाचयति)—

सामिअ ! संभाविअ जह अहं तुए आअलिआ ण तहेअ ।

अणुरत्तस्स अइ सुहअ ! एअं एअ तुह णवरी ण ॥

ण मे ललिअ-पारिजाअ-सअणिज्जम्मि पिअ ! होदि सुहम् ।

णन्दण-वण-वाआवि हि सिहि विअ भान्दि णिअसरीरए॥(१२ (घ)

उर्व—किण्णु क्खु सम्पदं भणादि ? (ङ)

(ग) साधु साधु आर्य्ये ! नागरोऽसि ।

(घ) स्वामिन् ! सम्भाव्य यथाहं त्वया आकलिता न तथैव ।

अनुरक्तस्य अयि सुभग ! एवमेव तव केवलं न ॥

न मे ललित-पारिजात-शयनीयमपि प्रिय ! भवति सुखम् ।

नन्दन-वन-वाता अपि हि शिखिन इव भान्ति निजशरीरे । (१२)

(ङ) किं नु खलु साम्प्रतं भणति ?

उर्वशी—आर्य्ये ! साधु ! साधु ! सत्य ही आप एक नागर हैं ।

राजा—सुनो (पढता है)

(१२)अन्वय—स्वामिन्निति । स्वामिन् ! त्वया सम्भाव्य यथा अहम् आकलिता तथैव (त्वं मया न आकलितोऽसि) अयि ! सुभग ! एवमेव अनुरक्तस्य केवलं तव न, प्रिय ! मे ललितपारिजातशयनीयमपि सुखं न भवति, निजशरीरे नन्दन-वन-वाता अपि शिखिन इव भान्ति ।

व्याख्या—स्वामिन् प्रभो ! त्वया पुरुरवसा सम्भाव्य अनुमाय अहमुर्वशी यथा यादृशी आकलिता निरूपिता तथैव त्वं मया न आकलितोऽसि, अयि ! सुभग ! सुमनोहर ! अनुरक्तस्य अनुरागवतः सर्वस्यापि जनस्येत्यर्थः, एवमेव इत्यनुमानमेव भवतीतिशेषः, न केवलं तव राज्ञः । प्रिय ! प्रियतम ! मे मम ललितपारिजातशयनीयं कोमलचन्दनशय्यापि न सुखं भवति न सुखीकरोतीति, निजशरीरे नन्दन-वन-वाता इन्द्रकाननवायवोऽपि शिखिन इव वन्हयो भान्तीति शोभन्तेऽतिशयेनेत्यर्थः ।

भावार्थ—प्रभो ! हे सुभग ! आपने जिस प्रकार मुझको निष्ठुर हृदयवाली और मानसिक क्लेश से अनजान विचारा है मैं भी उसी प्रकार आपको अनभिज्ञ विचार से विचारती हूं । आपके वियोगसे मुझको कोमलचन्दन की शय्या पर भी सुख मालूम नहीं होता, चन्दनवन का पवन मेरे शरीर में लगने से यह अग्नि के समान जान पड़ता है ।

उर्व—महाराज क्या कहते हैं ? देखना है ।

चित्र—किं ण भणिदं इमिणा मिलाण-कमल-णालसरिसेहिं अङ्गेहिम्? (च)

विदू—दिट्टिआ मए बुभुक्खिदेण सोत्थिवाअणिअं विअ लद्धं भवदो समस्सासणकारणम। (छ)

राजा -समाश्वासनमिति किमुच्यते? पश्य,—

तुल्यानुरागपिशुनं ललितार्थबन्धं
पत्रे निवेशितमुदाहरणं प्रियायाः।
उत्पक्ष्मलं मम सखे! मदिरेक्षणाया-
स्तस्याः समागतमिवाननमाननेन॥ (१३)

उर्व—एत्थ णो समबिभागा मदी। (ज)

(च) किं न भणितममुना म्लानकमलनालसदृशैरङ्गैः?

(छ) दिष्ट्या मया बुभुक्षितेन स्वस्तिवाचनिकमिव लब्धं भवतः समाश्वासनकारणम्।

(ज) अत्रावयोः समविभागा मतिः।

चित्र—मलीन कमल-नाल के समान अंग द्वारा क्या उन्होंने वह बात नहीं कही?

विदू—मुझे भूख लगी है इस अवस्था में जो आपको आश्वास का कारण मिला है—यही मेरे पक्ष में स्वस्ति वाचन की समान हुआ है।

राजा—आश्वास का कारण क्या है—कहता हूं देखो,—

(१३) अन्वयः—तुल्यानुरागेति। सखे! तुल्यानुरागपिशुनं ललितार्थबन्धं पत्रे निवेशितं प्रियाया उदाहरणम्, मदिरेक्षणायास्तस्या उत्पक्ष्मलमाननमिव मम आननेन समागतम्।

व्याख्या—हे सखे! तुल्यानुरागस्य समानप्रेम्णः पिशुनं सूचकं ललितार्थबन्धं मनोहरार्थप्रकाशकं पत्रेऽस्मिन्दले निवेशितं अङ्कितं प्रियायाः उर्वश्याः उदाहरणमुक्तिः वा अवस्थानुयायिवृत्तान्तः, मदिरेक्षणायाःतस्या उत्पक्ष्मलमाननमिव मम आननेन मुखेन समागतं मिलितम्। वसन्ततिलकं छन्दः।

भावार्थ—इस पत्रमें जो बातें लिखी हुई हैं वे मनोहर अर्थयुक्त प्रिया की तरह प्रेम प्रकाशक है, मैं जिस समय ऊपरकी ओर देखता हूं तो जान पड़ता है कि मानो मदिरेक्षणा प्रियतमाके मुख से मेरा मुख मिल रहा है।

उर्वशी—हम दोनों का ही विचार एकसा है।

राजा—वयस्य ! अङ्गुलीस्वेदेन मे लुप्यन्ते अक्षराः, धार्य्यतामयं स्वहस्ते निक्षेपः प्रियायाः ।

विदू—तदो किं दाणिं तत्थभोदी उर्वसी भवदो मणोरह-तरुकुसुमं दंसिअ फले बिसंवददि ? (झ)

उर्व—हला ! जाव उवत्थाणकादरं अत्ताणअं संठावेमि, ताव तुमं अत्ताणअं दंसिअ जं मे अणुमदं, तं भणाहि । (ञ)

चित्र—तह (इति तिरस्करिणीमपनीय राजानमुपसृत्य) जेदु जेदु महाराओ । (ट)

राजा—(सम्भ्रमादरगर्भम्) स्वागतं भवत्यै ? (पार्श्वमवलोक्य) भद्रे !—

न तथा नन्दयसि मां सख्या विरहिता तया ।
सङ्गमे दृष्टपूर्वेव यमुना गङ्गया यथा ॥ (१४)

(झ) ततः किमिदानीं तत्रभवती उर्वशी भवतो मनोरथ-तरुकुसुमं दर्शयित्वा फले विसंवदति ?

(ञ) अयि ! यावदुपस्थानकातरमात्मानं संस्थापयामि तावत् त्वमात्मानं दर्शयित्वा यन्मे अनुमतं तत् भण ।

(ट) तथा, जयति जयति महाराजः ।

राजा—सखे ! अंगुलीके पसीने से सब अक्षर लुप्त होगयेहैं, अत एव प्रियतमा का फैंका हुआ पदार्थ तुम अपने हाथ में धारण करो ।

विदू०—तो क्या अब यह माननीया उर्वशी आपके मनोरथ रूपी वृक्षका फूल दिखाकर फल के सम्बन्धमें अन्यथा करती है ?

उर्वशी—सखि ! मैं इससमय राजाके निकट स्वयं उपस्थित होने में असमर्थ हूं, अत एव मैं जब तक आत्मा स्थिर (शान्त) न कर सकूं तब तक तुम स्वयं उनके पास जाकर मेरे अभिप्रायानुसार सब बातें निवेदन करो ।

चित्र—यही हो (यह कह कर तिरस्करिणी विद्या को दूर कर राजा के निकट जाकर) महाराज की जयहो ! जय हो !

राजा—(संभ्रम और आदर के साथ) तुम कुशल से तो आई ? (समीप के भाग में दृष्टि डालकर) भद्रे !—

(१४) अन्वयः—नेति । मां यथा यमुना गंगया संगमे दृष्टपूर्वेव नन्दयसि तथा तया सख्या विरहिता (त्वं मां) न (नन्दयसि)

व्याख्या—मां पुरुरवसं यथा यमुना गंगया संगमे मिलने पूर्वं दृष्टा दृष्टपूर्वा इव नन्दयसि तथा तया सख्या उर्वश्या विरहिता त्वं मां न नन्दयसि न सन्तोषयसि ।

चित्र—णं पढमं मेहराई दीसदि, पच्चा बिज्जुलिश्रा। (ठ)

विदू—(अपवार्य्य) कधं ण एसा उव्बसी उवगदा ? तत्थभोदीए सहअरीए एदाए होदव्वम्। (ड)

राजा—एतदासनमास्यताम्।

चित्र—(उपविश्य) उव्बसी महाराश्रं सिरसा पणमिश्र विण्णवेदि। (ढ)

राजा—किमाज्ञापयति ?

चित्र—मम तस्सिं सुरारिसम्भवे दुण्णए महाराश्रो ज्जेव सरणं आसी। सम्पदं साहं तुह दंसणसमुत्थेण आश्रासिणा बलिश्रं बाधेयमाणा मश्रणेण पुणोवि महाराश्रस्स अणुकम्पणीश्रा होमि। (ण)

(ठ) ननु प्रथमं मेघराजिर्दृश्यते, पश्चाद्विद्युल्लता।

(ड) कथं नैषा उर्वशी उपगता ? तत्रभवत्याः सहचर्य्या एतया भवितव्यम्।

(ढ) उर्वशी महाराजं शिरसा प्रणम्य विज्ञापयति।

(ण) मम तस्मिन् सुरारिसम्भवे दुर्णये महराज एव शरणमासीत, साम्प्रतं साहं तव दर्शनसमुत्थेन आयासिना बलवद्बाध्यमाना मदनेन, पुनरपि महाराजस्य अनुकम्पनीया भवामि।

भावार्थ—पहिले मैंने गंगा के साथ यमुनाका संगम देख आनन्द प्राप्त किया था, अब तुम को प्रिय सखि से रहित देखकर वैसा आनन्द नहीं मिलता।

चित्र—पहिले बादलोंकी कतार दीखती है, पीछे विद्युल्लता (बिजली) का आविर्भाव होता है।

विदू—(सरक कर) यह क्या उर्वशी नहीं है ? तो उर्वशी की सहचरी ही होगी ?

राजा—यह आसन है (बैठो)

चित्र०—(बैठकर) उर्वशी ने मस्तक झुकाकर प्रणाम-पूर्वक महाराजसे निवेदन किया है।

राजा—क्या अनुमति (आज्ञा) की है ?

चित्र—हमारी दैत्यजनितपीड़ा में राजर्षि ही आश्रयस्थान थे, दुर्जय असुर के हाथ से छुड़ाकर अब मैं आपके दर्शन-जनितकाम-बाधा से कष्ट पारही हूं, महाराज के लिये मेरा मन व्याकुल हो उठा है, पुनर्वार आप के दया की कृपापात्र बननी चाहती हूं।

राजा—**अयि सखि !—**

पर्य्युत्सुकां कथयसि प्रियदर्शनां ता-
मार्त्तिं न पश्यसि पुरूरवसस्तदर्थाम् ।
साधारणोऽयमुभयोः प्रणयो, यतस्व,
तप्तेन तप्तमयसा घटनाय योग्यम् ॥ (१५)

चित्र—(उर्वशीमुपेत्य) **हला ! इदो एहि, णिद्दअदरं भीसणमअणं पेक्खिअ पिअदमस्स दे दूईम्हि संवुत्ता । (त)**

उर्व—(शोकात् सकम्पा समाश्वसा) **अयि अणवत्थिदे ! लहुं उजेव तुए परिच्चत्ता म्हि । (थ)**

(त) अयि ! इत एहि; निर्दयतरं भीषणमदनं प्रेक्ष्य प्रियतमस्य ते दूती अस्मि संवृत्ता ।

(थ) अयि अनवस्थिते ! लघु एव त्वया परित्यक्तास्मि ।

राजा—**तुम क्या कहती हो ?**

(१५) **अन्वयः**—पर्य्युत्सुकामिति । तां प्रियदर्शनां पर्य्युत्सुकां कथयसि, पुरुरवसः तदर्थाम् आर्त्तिं न पश्यसि, उभयोः अयं साधारणः प्रणयः यतस्व, तप्तेन, अयसा तप्तं घटनाय योग्यम् (अस्ति) ।

व्याख्या—ताम् प्रियदर्शनाम् उर्वशीं पर्य्युत्सुकाम् उत्कण्ठितां कथयसि भाषसे, पुरुरवसः राज्ञः तदार्थां त्वत्सखीकृताम् इमम् आर्तिं पीड़ां (यातनां वा) न पश्यसि, उभयोः (आवयोः) अयं साधारणः प्रणयः प्रीतिरित्यर्थः, यतस्व आवयोर्मेलनाय यत्नं कुरुष्व, तप्तेन अयसा लोहेन तप्तमेव घटनाय योग्यमिमां लोकोक्तिं चारितार्थ्यं नयस्व । वसन्ततिलकं छन्दः ।

भावार्थ—**सखी यह तुम क्या कहती हो कि वह प्रियदर्शना उर्वशी मेरे लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हुई है ? किन्तु उसके लिए इस पुरुरवा के अंतर में जो यातना होरही है उसको क्या वह देखरही है ? वस्तुतः हे सखि ! हमारी यह प्रणयसमानभाव से ही उत्पन्न हुई है । अतएव जिस कारण तपेहुए लोहे के सदृश तप्त-लोह खण्डका मिलनहो वही ही करने का यत्न करो ।**

चित्र—(उर्वशी के पास जाकर) **सखि ! इस ओर को आओ, तुम्हारे प्राणप्यारे की भयंकर निगूढ़काम वेदना देखकर मैं उनकी दूती बनने को विवश हुई हूं ।**

उर्वशी—(शोक से डरती हुई तथा कांपती हुई दशा में) **हे अनवहिते ! तुम सहजही मुझको छोड़कर दूसरे की हुई जाती हो ?**

चित्र—(सस्मितम्) एदस्सिं मुहुत्ते जाणिस्सामो का कं परिच्च-इस्सदि त्ति; आआरं दाव पलिबज्ज। (द)

उर्व—(ससाध्वसमुपसृत्य सव्रीडम्) जेदु जेदु महाराओ। (ध)

राजा—(सहर्षम्) सुन्दरि!

मया नाम जितं यस्य त्वया जय उदीर्य्यते।
जयशब्दः सहस्राक्षादागतः पुरुषान्तरम्॥ (१६)

(हस्ते गृहीत्वा आसने उपवेशयति)

विदू—कीदिसी त्थिदी भोदिए? रण्णो पिअवअस्सो बम्हणो ण बन्दीअदि? (न)

(उर्वशी सस्मितं प्रणमति)

(द) एतस्मिन् मुहूर्त्ते ज्ञास्यामः का कां परित्यक्ष्यतीति; आकारं तावत् प्रतिपद्यस्व।

(ध) जयति जयति महाराजः।

(न) कीदृशी स्थितिर्भवत्याः? राज्ञः प्रियवयस्यो ब्राह्मणो न वन्द्यते?

चित्र०—(मधुरहास्य से) कौन किसको छोड़ता है यह मुहूर्त्तमात्र से ही जान लियाजाएगा, तुम शोक त्यागकरके स्थिर हो जाओ।

उर्वशी—(डरती हुई राजा के पास जाकर लज्जितभाव से) महाराज की जयहो! जयहो!

राजा—(सहर्ष) हे सुन्दरि!

(१६) अन्वयः—मयेति। त्वया यस्य जय उदीर्य्यते मया जितं नाम (तन्नाम) जयशब्दः सहस्राक्षात् पुरुषान्तरम् आगतः।

व्याख्या—त्वया यस्य व्यक्तिविशेषस्य जयः उदीर्य्यते कथ्यते मया पुरुरवसा जितं नाम (तन्नाम) जयशब्दः सहस्राक्षात् इन्द्रात् पुरुषान्तरं भिन्नमनुष्ये आगतः प्राप्तः।

भावार्थ—जब तुम मेरी जय उच्चारण करती हो, तो इस से मेरी जय ही हुई है, जयशब्द पहिले तो इन्द्रमें ही नियत था, परन्तु अब वह पुरुषान्तरमें (मुझमें) भी उपस्थित हुआ है।

(उर्वशी का हाथ पकड़कर आसन पर बैठाना)

विदू—आपकी स्थिति कैसी है? तेरे से राजा का प्रिय मित्र ब्राह्मण वंदित न होगा!

(हास्य द्वारा उर्वशी प्रणाम करती है)

विदू—सोत्थि भोदिए। (प)

(नेपथ्ये देवदूतः) **चित्रलेखे ! त्वरय उर्वशीम् ।—**

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयो निबद्धः ।
ललिताभिनयं तमद्य भर्त्ता मरुतां द्रष्टुमनाः सलोकपालः ॥(१७)

(सर्वे आकर्णयन्ति । उर्वशी विषादं रूपयति)

चित्र—**सुदं तुए देअदूअस्स वअणं ? ता अणुजाणाहि दाव महाराअं ।** (फ)

उर्व—(निश्वस्य) **णत्थि मे वाआविहवो ।** (ब)

चित्र-**महाराअ ! उव्वसी विण्णवेदि, परवसो अअं जणो, महा**(भ)

(प) स्वस्ति भवत्यै ।

(फ) श्रुतं त्वया देवदूतस्य वचनं ? तदनुज्ञापय तावत् महाराजम् ।

(ब) नास्ति मे वाग्विभवः ।

(भ) महाराज ! उर्वशी विज्ञापयति, परवशोऽयं जनः महा—

विदूषक--**आपका मंगल हो ।**

(नेपथ्य में देवदूत आता है) **चित्रलेखे ! उर्वशीसे शीघ्रता करनेको कहो ।**

(१७) **अन्वयः**—मुनिनेति । मुनिना भरतेन अष्टरसाश्रयः यः प्रयोगः भवतीषु निबद्धः सलोकपालः मरुतां भर्त्ता, तमद्य ललिताभिनयं द्रष्टुमनाः (वर्तते)

व्याख्या—मुनिना भरतेन तदाख्येन नाट्यशास्त्रकर्त्रा शृंगाराद्यष्टरसाश्रयः यः प्रयुज्यत इति प्रयोगो लक्ष्मीस्वयंवराभिधानं रूपकं भवतीषु निबद्धः रचितः निर्माय भवतीभ्योऽभिनयशिक्षार्थमर्पितवान् इत्यर्थः । लोकपालैः सहितः सलोकपालः मरुतां देवानां भर्त्ता अधिपतिः तम् अद्य तस्मिन्दिवसे ललितोऽतिसुन्दरोऽभिनयोऽर्थव्यंजनं यत्र द्रष्टुमनाः प्रष्टुमिच्छतीत्याशयः । औपच्छन्दसिकं छन्दः ॥

भावार्थ--**भरत मुनि ने शृंगारादि आठ रसात्मक लक्ष्मी स्वयंवर नामक जिस रूपक को रचकर तुम्हारी शिक्षा के लिए प्रदान किया था, इस समय इन्द्र ने लोकपालों के साथ मिलकर उस मनोहर अभिनय की इच्छा की है ।**

(सबका सुनना--उर्वशी का विषाद प्रकाश)

चित्र०--**सखि ! उर्वशि ! देवदूत की बात सुनी है ? अब महाराज की आज्ञा लेकर चलो ।**

उर्वशी—(श्वास लेकर) **अब मुझ में बात करने की शक्ति नहीं है ।**

चित्र०--**महाराज ! उर्वशी निवेदन करती है कि यह व्यक्ति (मैं)**

राएण अब्भणुराणादा इच्छामि देअदेअस्स अणवरद्धं अत्ताणअं कादुं। (भ)

राजा—(कथं कथमपि वचनं संस्थाप्य) नाहं भवत्योरीश्वरनियोग-हन्ता; किन्तु स्मर्तव्योऽयं जनः।

(उर्वशी वियोगदुःखं रूपयित्वा राजानं पश्यन्ती सह सख्या निष्क्रान्ता)

राजा—(सनिश्वासम्) वैयर्थमिव चक्षुषः सम्प्रति।

विदू—(पत्रं दर्शयितुकामः) णं भुज्ज—" (इत्यर्द्धोक्तेनात्मगतम्) अविद अविद ! भो, उव्वसीदंसणविम्हिदेण मए तं भुज्जवत्तं पब्भट्ठं पि हत्तादो ण विण्णादम्। (म)

राजा—किमासि वक्तुकामः ?

विदू—वअस्स ? इदम्हि वत्तुकामो, ण भवं अङ्गाइं मुञ्चदु, दिढं क्खु तइ बद्धभावा उव्वसी, ण सा इदो गदुअ एदं अणुबन्धं सिढिलीकरिस्सदि त्ति। (य)

राजेन अभ्यनुज्ञाता इच्छामि देवदेवस्य अनपराद्धमात्मानं कर्तुम्। (भ)

(म) ननु भूर्ज। अविद अविद भोः ! उर्वशीदर्शनविस्मितेन मया तत् भूर्जपत्रं प्रभ्रष्टमपि हस्तात् न विज्ञातम्।

(य) वयस्य ! इदमस्मि वक्तुकामः, न भवानङ्गानि मुञ्चतु; दृढं खलु त्वयि बद्ध-भावा उर्वशी, न सा इतो गत्वा एतमनुबन्धं शिथिलीकरिष्यतीति।

पराधीन है महाराज की अमुमति चाहती है, जिस से इन्द्र के निकट अपराधी न हो वही कीजिए।

राजा—(अत्यन्त कष्ट से रुककर कहता है) मैं तुम से देवेन्द्र की आज्ञा उल्लंघन करने के लिए नहीं कहता, किन्तु इस की (मेरी) याद अवश्य रहे।

(राजा को देखती हुई विरहदुःख से उर्वशी का सखी के साथ जाना)

राजा—(स्वास लेकर) मेरे नेत्र अब विफल होगए हैं,

विदू—(पत्र दिखाने की इच्छा कर के) अहो ! भोज .... (आधा शब्द कहकर स्वगत) क्या आश्चर्य है, उर्वशी को देखकर विस्मय होने से मेरे हाथ से वह भोजपत्र कहां गिर गया ? यह नहीं जान सका ?

राजा—तुम क्या कहना चाहते थे ?

विदू—सखे ! मैं यह कहना चाहता था कि आप विरह के दुःख

राजा—ममापि एतदेव मनसि वर्त्तते; तया खलु प्रस्थाने,—

अनीशया शरीरस्य हृदयं स्ववशं मयि।
स्तनकम्पक्रियालक्ष्यैर्न्यस्तं निश्वसितैरिव ॥ (१८)

विदू—(स्वगतम्) वेवदि मे हिअअं; केत्तिअं वेलं तस्स भुज्जवत्तस्स अत्तभवदा वअस्सेण णामं गेण्हिदव्वं त्ति ? (र)

राजा—वयस्य ! केनेदानीमुन्मनसमात्मानं विनोदयामि ? (स्मृत्वा) उपनय भूर्जपत्रम्।

विदू—(सर्वतो दृष्ट्वा सविषादम्) हा कधं ण दीसदि ! भो ! दिव्वं क्खु तं भुज्जवत्तं गदं उव्वसीए मग्गेण (ल)

(र) वेपते मे हृदयं, कियतीं वेलां तस्य भूर्जपत्रस्य अत्रभवता वयस्येन नाम ग्रहीतव्यमिति।

(ल) हा कथं न दृश्यते ! भो दिव्यं खलु तद्भूर्जपत्रं गतं उर्वश्या मार्गेण।

से देह त्याग न करें। आप में उर्वशी का अनुराग दृढ़ रीति से बंध गया है। वह यहां से जाकर इस प्रेमरज्जु को कभी भी ढीला न करेगी।

राजा—मैं भी अपने मन में यह विचार करता हूं कि जब वह जाने लगी तब उस ने..............

(१८) अन्वयः—अनीशयेति। शरीरस्य अनीशया स्तनकम्पक्रियालक्ष्यैः निश्वसितैः स्ववशं हृदयं मयि न्यस्तमिव (अस्ति)

व्याख्याः—अनीशयेति। शरीरस्य आत्मनो देहस्य अनीशया प्रभोरादेशतः अन्यत्र कुत्रापिस्थातुमशक्यत्वादिन्द्राधीनत्वादित्यर्थः, स्तनकम्प एव क्रियातया लक्ष्यैः सूचितैः निश्वसितैः स्ववशं स्वाधीनं हृदयं मयि राज्ञि न्यस्तामिव अर्पितमिवेत्यस्ति। अनुष्टुप् छन्दः।

भावार्थ—जब वह उर्वशी जाने लगी तब उस ने अपना शरीर पराधीन (इन्द्राधीन) होने पर भी स्तन-कम्पन और श्वास त्याग के सहित स्वाधीन हृदय मुझ में ही संलग्न कर दिया है।

विदू०—(स्वगत) मेरा हृदय कांपता है, कदाचित् किसी समय माननीय प्रिय सखा भोजपत्र की बात छेड़ बैठें ?

राजा—सखे ! इस समय किस उपाय से उत्कण्ठित चित्त को बहलाऊं ? (याद कर के) हां वह भोजपत्र तो दो ?

विदू०—(चारों ओर को देखकर विषाद से) हाय ! वह क्यों दिखाई

राजा—(सासूयम्) सर्वत्र प्रमादी वैधेयः।

विदू—णं बिचीअताम। (उत्थाय) इदो भवे एह वा भवे (इति बहुविधं नृत्यति)। (व)

(ततः प्रविशति औशीनरी चेटी च, विभवतश्च परिवारः)

औशी—हञ्जे णिउणिए! सच्चं लदाघरं बीसन्तो अज्जमाणवअ-सहाओ दिट्ठो तुए महाराओ? (श)

चेटी—अलिअं किं मए भट्टिणी विण्णविदपुव्वा? (ष)

देवी—तेण हि लदाविडवन्तरिदा सुणिस्सं दाव विस्सद्धमन्तिदाइं; जं तुए कधिदं सच्चकं ण वेत्ति (स)

चेटी—जं देईए रुच्चदि। (ह)

(व) ननु! विचीयताम्। इतो भवेत् इह वा भवेत्।

(श) अयि निपुणिके! सत्यं लतागृहं विशन् आर्य्यमाणवकसहायी दृष्टस्त्वया महाराजः?

(ष) अलीकं किं मया भर्त्त्री विज्ञापितपूर्वा?

(स) तेन हि लताविटपान्तरिता श्रोष्यामि तावत् विश्रब्धमन्त्रितानि, यत्त्वया कथितं सत्यकं न वेति।

(ह) यद्देव्यै रोचते।

नहीं देता? महाराज! यह दिव्य भोजपत्र जिस मार्ग को उर्वशी गई है, निश्चय ही उसी मार्ग को चला गया है।

राजा—(अनसूया से) मूर्ख आदमी के सभी कामों में असावधानी रहती है।

विदू०—अब खोज की जावेगी (उठकर) यहां है? या वहां है।

(इसी प्रकार ढूंढते २ नृत्य करता है)

(औशीनरी देवी और चेटी का यथासम्भव परिजन सहित प्रवेश)

देवी—हे निपुणिके! क्या आर्य्यमाणवक के संग आर्य्यपुत्र को लतामण्डप में प्रवेश करते तूँने सत्य ही देखा है?

चेटी—मैंने क्या इससे पहले कभी भी स्वामिनी के निकट मिथ्या बात कही है? इसलिए जो आपको रुचिकर लगे वह जानें।

देवी—तो अब लतामण्डप की ओर में होकर उनकी विश्वस्त बात चीत सुनूं और जो तूँने कहा है, वह सत्य है या नहीं? यह देखा जायगा।

चेटी—देवि! जो आपकी रुचि हो।

देवी—(परिक्रम्य पुरस्तादवलोक्य च) णिउणिए ! किएणेदं पत्तं णवचीरअं विअ इदो दक्खिणमारुदेण आणीअदि ? (च)

चेटी—(विभाव्य) भट्टिणि ! पलिबत्तणा-बिभाबिदक्खरं भुज्जबत्तं क्खु एदं, हन्त ! कधं देईए ज्जेव णे उरपरिलग्गं ? (गृहीत्वा) णं बाचीअदु एदम् । (क)

देवी—णं अबलोएहि दाव; जइ अबिरुद्धं तदो सुणिस्सम् । (ख)

चेटी—(तथा कृत्वा) भट्टिणि ! तं ज्जेव एदं कोलीणअं बिजिम्भदि महाराअं उद्दिसिअ उब्बसीअक्खरअं कब्बबन्धं त्ति तक्केमि अज्जमाणबअ-प्पमादादो अम्हाणं हत्थं आअदं त्ति । (ग)

देवी—णं गहिदत्था होहि । (घ)

(च) निपुणिके ! किमेतत् पत्रं नवचीरमिव इतो दक्षिणमारुतेन आनीयते ?

(क) भर्त्रि ! परिवर्त्तनाविभावितात्तरं भूर्जपत्रं खलु एतत् । हन्त ! कथं देव्या एव नूपुरपरिलग्नम् ? ननु वाचयतु एतत् ।

(ख) ननु अवलोकय तावत्, यदि अविरुद्धं तदा श्रोष्यामि ।

(ग) भर्त्रि ! तदेवेदं कौलीनं विजृम्भते, महाराजमुद्दिश्य उर्वश्यक्षरकं काव्यबन्धमिति तर्कयामि, आर्य्यमाणवकप्रमादादस्माकं हस्तमागतमिति ।

(घ) ननु ! गृहीतार्था भव ।

देवी—(घूमकर सामने को देखकर) निपुणिके ! नए वस्त्र के टुकड़े की समान एक पत्र दक्षिणीपवन से उड़ आया है, यह क्या है ?

चेटी—(चिन्ता कर के) स्वामिनि ! यह निःसन्देह भोजपत्र है, वायुवेग से उलट पुलट होने के कारण दिखाई देता है कि इस में अक्षरविन्यास भली भांति है । अहो ! उड़ते २ देवी के नूपरों (झांझरों) में कैसे आकर लगा है ? (उठाकर) आप इसको पढ़िए ।

देवी—पहले देखलो ! यदि विरुद्ध न हुआ तो फिर सुनूंगी।

चेटी—(वैसा ही करके) स्वामिनि ! इस भोजपत्र पर तो वह लोकापवाद ही प्रकाशित हो रहा है । मुझे मालूम होता है कि महाराज को लक्ष्य कर के उर्वशी ने ही इस काव्य की रचना की है । आर्य्यमाणवक की असावधानी से ही यह हमारे हाथ लग गया है॥

देवी—'अब इसका अर्थ ग्रहण करो' (पढ़ो) ।

(चेटी वाचयति)

देवी—हञ्जे ! एदेण ज्जेव उवहारेण तं अच्छराकामुअं पेक्खम्ह (छ)

चेटी—जं देई आणवेदि । (च)

राजा—भगवन् ! वसन्तसखे ! मलयानिल !—

वासार्थं हर सम्भृतं सुरभितं पौष्पं रजो वीरुधां,
किं कार्य्यं भवतो हृतेन दयिता स्नेहस्वहस्तेन मे ।
जानात्येव भवान् विनोदनशतैरेवंविधैर्धारितम् ।
कामार्त्तं जनमञ्जसाभिभवितुं नालम्बिताश्वासनम्॥ (१६)

(छ) हञ्जे ! एतेनैवोपहारेण तमप्सरः कामुकं पश्यामः ।

(च) यत् देवी आज्ञापयति ।

(चेटी पत्र पढ़ती है)

देवी—यह उपहार लेकर ही उस अप्सरा-कामुक राजा को देखूंगी ।

चेटी—देवी जी की जो अनुमति हो ।

राजा—हे भगवन् ! वसन्तसखे ! मलयानिल !

(१६) अन्वयः—वासार्थमिति । वासार्थं सम्भृतं सुरभितं पौष्पं वीरुधां रजः हर, मे दयिता स्नेहस्वहस्तेन हृतेन भवतः किं कार्य्यम् ? एवं विधैः विनोदनशतैः धारितम् आलम्बिताश्वासनं कामार्त्तं जनम् अञ्जसा अभिभवितुं भवान् न जानात्येव ?

व्याख्या—भगवन् मलयवायो ! वासार्थं सौगन्ध्यर्थं संभृतं संचितं सुरभितं सौगंध्यं सुगंधं वा पौष्पं पुष्पसम्बन्धि वा वीरुधां लतानां रजः परागं हर नय, मे मम दयितायाः प्रियायाः स्नेहस्य प्रणयस्य स्वहस्तेन निजकरलिखितप्रणयपत्रस्वरूपेण अनेन भूर्जपत्रेण हृतेन भवतः किं कार्यम् ? एवंविधैः लिपिदर्शनचित्रादिदर्शनरूपैः विनोदनशतैः धारितं मरणात्कथमपि रक्षितम् आलम्बिताश्वासनं प्राप्ताश्वासं कामार्त्तं मन्मथ-व्यथाव्यथितं जनम् अंजसा बलेन अभिभवितुं भवान् न जानात्येव ? किं न जानीते ? शार्दूलविक्रीडितं च्छन्दः ।

भावार्थ—हे मलयपवन ! तुम अपने को सुगन्धित करने के लिए लतिकाओं की सुगन्धियुक्त-पुष्परेणु हरण करते हो, किन्तु परमप्यारी उर्वशी ने प्रेमपूर्ण मुझ को अपने हाथ का लिखा जो भोजपत्र दिया था, उस को हरण करने से तुम्हें क्या लाभ हुआ है ? तुम जानते भी हो कि कामार्त्त-पुरुष इस प्रकार के पत्र और

चेटी—देइ ! पेक्ख पेक्ख, पदस्स ज्जेव भुज्जवत्तस्स अण्णेसणा बट्ठदि । (छ)

औशी--ता णं पेक्खम्ह दाव, तुण्हिं चिट्ठ । (ज)

विदू--भो ! किण्णु क्खु पदम् ? उम्मिल्लमाणणीलपङ्कजच्छविणा मउरपिच्छेण विप्पलद्धम्हि । (झ)

राजा—सर्वथा हतोऽस्मि मन्दभाग्यः ।

औशी—(सहसा उपसृत्य) अज्जउत्त ! अलं आवेपण; पदं तं भुज्जवत्तम् । (ञ)

राजा—(ससम्भ्रममात्मगतम्) । अये ! देवी (सवैलक्ष्यम् । प्रकाशम्) स्वागतं देव्यै ?

(छ) देवि ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व, एतस्यैव भूर्जपत्रस्य अन्वेषणा वर्त्तते ।

(ज) तत् ननु प्रेक्षावहे तावत् तूष्णीं तिष्ठ ।

(झ) भोः ! किं नु खलु एतत् ? उन्मीलन्नीलपङ्कजच्छविना मयूरपिच्छेन विप्रलब्धोऽस्मि ।

(ञ) आर्य्यपुत्र ! अलमावेगेन; एतत् तत् भूर्जपत्रम् ।

चित्रपटादि-शतशत-विनोद-पदार्थों के द्वारा ही जीवन धारण किया करते हैं, अतएव पुनः प्राप्ति की आशा में जो कामार्त्त व्यक्ति इस भाव से रहता है तो संसार के प्राणस्वरूप होकर आप को उसका प्राणनाश नहीं करना चाहिए ।

चेटी—देवि ! देखिए ! देखिए ! इस भोजपत्र की ढूंढ होरही है ।

औशी—तुम चुपचाप रहो, देखूं (कहां तक क्या होता है)

विदू०--सखे ! यह क्या हुआ है ? मैं प्रस्फुटितनीलपद्मकान्ति-मयूरपुच्छ से वञ्चित हुआ हूं ।

राजा—मैं मन्दभागी हूं, सर्वथा नष्ट ही हुआ हूं अर्थात् सब प्रकार से अब मरा पड़ा हूं ।

औशी--(सहसा सामने आकर) आर्य्यपुत्र ! आवेग का कुछ भी प्रयोजन नहीं है, देखो यह वही भोजपत्र है ।

राजा—(सम्भ्रम से मन ही मन) यह क्या ? (आश्चर्य से प्रगट होकर) देवी का आना सफल तो हुआ ?

औशी—दुरागदं दाणिं मे संवुत्तम। (ट)

राजा—(जनान्तिकम्) वयस्य ! कथमत्र प्रतिविधेयम ?

विदू—(जनान्तिकम्) लोत्तेण सुइदस्स कुम्भिलअस्स णत्थि वाआ पलिविधाणम्। (ठ)

राजा—(अपवार्य्य) मूढ़ ! नायं परिहासकालः । (प्रकाशम्) नेदं पत्रं मया मृग्यते; तत् खलु मन्त्रपत्रं, यदन्वेषणाय ममायमारम्भः।

औशी—जुज्जइ अत्तणो सोहग्गं णिगूहिदुम। (ड)

विदू—भोदि ! तुवरावेहि से भोअणं, जेण पित्तप्पसमणेण सुत्थो भोदि। (ढ)

औशी—णिउणिए ! सोहणं क्खु आस्सासिदो पिअवअस्सो बम्हणेण। किं अणं, अण्णचिन्ताए आवेसिदो पिओ खिज्जदि। (ण)

(ट) दुरागतमिदानीं मे संवृत्तम।

(ठ) लोप्त्रेण सूचितस्य कुम्भिलकस्य नास्ति वाचा प्रतिविधानम्।

(ड) युज्यते आत्मनः सौभाग्यं निगूहितुम्।

(ढ) भवति ! त्वरय अस्य भोजनं, येन पित्तप्रशमनेन सुस्थो भवति।

(ण) निपुणिके ! शोभनं खलु आश्वासितः प्रियवयस्यो ब्राह्मणेन, किमन्यत्, अन्नचिन्तायामावेशितः प्रियः खिद्यते।

औशी—इस समय मेरा आना दुरागत है।

राजा—(एकान्त में) सखे ! अब प्रतिविधान का क्या उपाय है ?

विदू०—(एकान्त में) अब चीज़ के साथ चोर पकड़ा गया है, अब दूसरी बात के द्वारा इस के प्रतिविधान का उपाय नहीं है।

राजा—(अपवारित होकर) मूर्ख यह हंसी करने का समय नहीं है। (प्रकट रूप से) मैं इस पत्र को नहीं ढूंढता था, बल्कि कंठ के कवच को ढूंढ रहा हूं।

औशी—अपने सौभाग्य को छिपाना युक्तिसंगत है।

विदू०—देवि ! शीघ्र महाराज के लिए भोज्यपदार्थ ले आइए, क्योंकि पित्त के शमन होने पर ही यह स्वास्थ्यता को प्राप्त होंगे।

औशी—निपुणिके ! इस प्रियसखा ब्राह्मण ने विलक्षण आश्वासन दिया है, क्या अब प्रियतम अन्नचिन्ता में निमग्न हो अनुत्ताप कर रहे हैं ?

विदू—एणं पेक्ख, सव्वो आस्सासिदो चित्तभोअणेण। (त)

राजा—मूर्ख! बलादपराधिनं मामापादयसि?

और्शी—णत्थि प्पभवन्तस्स अवराहो, अहं ज्जेव एत्थ अवरद्धा, जा पडिऊलदंसणा भविअ अग्गदो भवामि, णिउणिए! इदो एहि। (थ)

(इति सकोपं प्रस्थिता)

राजा—अपराधी नूनमहं, प्रसीद रम्भोरु! विरम संरम्भात्।
सेव्यो जनश्च कुपितः, कथं नु दासो निरपराधः? (२०)

(इति पादयोः पतति)

और्शी—किदव! लहुहिअआ क्खु अहं, अणुणअं ण गेण्हामि (द)

(त) ननु प्रेक्षस्व, सर्वं आश्वासितः चित्रभोजनेन।

(थ) नास्ति प्रभवतोऽपराधः अहमेवात्र अपराद्धा, या प्रतिकूलदर्शना भूत्वा अग्रतो भवामि; निपुणिके! इत एहि।

(द) कितव! लघुहृदया खलु अहम्, अनुनयं न गृह्णामि;—

विदू०—देखो! सब ही विचित्रित भोजन से सुस्थ होरहे हैं।

राजा—मूर्ख! बलपूर्वक मुझ को अपराधी करता है?

और्शी—प्रभुताशाली पुरुषों का कुछ भी अपराध नहीं है, मैं ही इस समय अपराधिनी हूं, क्योंकि विरुद्धाचरण कर के आप के सामने आई हूं। निपुणिके! इस ओर आओ।

(सरोष देवी का प्रस्थानोद्योग)

राजा—(२०) अन्वयः—अपराधीति। नूनम् अहम् अपराधी, रम्भोरु! प्रसीद, संरम्भात् विरम, सेव्यः जनश्च कुपितः, कथं नु दासो निरपराधः?

व्याख्या—नूनम् अहम् अपराधी अपराधकर्त्ताऽस्मि, रम्भोरु! प्रसीद प्रसन्ना भव, संरम्भात् क्रोधात् विरम दूरी भव, सेव्यः सेवायोग्यो जनः कुपितः क्रोधवान् अस्तीति, 'तदस्यसंजातम्' इतीच्प्रत्ययः। दासश्च निरपराधः अपराधरहितः कथं नु? अस्तीत्यर्थः।

भावार्थ—निःसन्देह मैं ही अपराधी हूं, हे रंभोरु! प्रसन्न हो कर क्रोध त्याग दो, सेवा करने योग्य व्यक्ति के कुपित होने पर दास कैसे निरपराधी होगा?

(राजा पैरों में गिरता है)

और्शी—हे शठ! मेरा हृदय निश्चय ही छोटा है, मैं विनय ग्रहण

किन्तु दक्खिणस्स दे किदपश्चात्ताबस्स भाआमि। (द)

चेटी—इदो इदो देई। (ध)

(इति राजानमपहाय सपरिजना देवी निष्क्रान्ता)

विदू—पाउस णई विअ अप्पसण्णा ज्जेव तत्थभोदी गदा; ता उट्ठेहि उट्ठेहि। (न)

राजा—(उत्थाय) वयस्य! नेदमुपपन्नम्। पश्य,—

प्रियवचनकृतोऽपि योषितां दयितजनानुनयो रसादृते।
प्रविशति हृदयं न, तद्विदां मणिरिव कृत्रिमरागयोजितः॥(२१)

विदू—अणुऊलं ज्जेव भवदो एदं बअणं; णहि अक्खिदुक्खिदो संमुहे दीवसिहं सहदि। (प)

किन्तु दक्षिणस्य ते कृतपश्चात्तापस्य बिभेमि। (द)

(ध) इत इतो देवी।

(न) प्रावृड्-नदीव अप्रसन्नैव तत्रभवती गता; तदुत्तिष्ठ उत्तिष्ठ।

(प) अनुकूलमेव भवत एतद्वचनं; नहि अक्षिदुःखितः सम्मुखे दीपशिखां सहते।

नहीं करती, तुम दक्षिण नायक हो, तुम्हें जो पीछे अनुताप करना होगा इसलिए डर रही हूं।

चेटी—देवि! इधर आइए।

(राजा को छोड़कर परिजनों के संग देवी का जाना)

विदू०—माननीया देवी वर्षाकालीन नदी के समान अप्रसन्न हो कर चली गई है, अतएव महाराज अब उठिए।

राजा—(उठकर) ऐसा नहीं होना चाहिये। देखो—

(२१) अन्वयः—प्रियवचनेति। प्रियवचनकृतोऽपि दयितजनानुनयः रसादृते योषितां हृदयं न प्रविशति, कृत्रिमरागयोजितः मणिः तद्विदामिव।

व्याख्या—प्रियैर्वचनैः कृतः संपादितः दयितजनानुनयः प्रियजनकृतं प्रसादनं रसादनुरागादृते योषितां ललनानां हृदयं न प्रविशति, हृदयग्राही न भवति, कृत्रिमरागेण लोहितादिना वर्णेन योजितो रंजितो मणिः स्फटिकादिस्तद्विदां परीक्षकाणां यथामनोहरो न भवति। आर्य्यावृत्तम्।

भावार्थ—सखे! मेरी विनती सफल नहीं हुई देखो अनुराग के बिना प्रियजन की की हुई विनती रमणी के हृदय में प्रवेश नहीं करती, बनावटी लालादिरंगों से रंगने पर भी मणि कभी परीक्षकों (जवाहरातियों) की हृदयग्राही नहीं होती।

विदू०—आपकी यह बात अनुकूल सत्य है, क्योंकि आंखो के

राजा—मैवं, उर्वशीगतमनसोऽपि मम देव्यां स एव बहुमानः; किन्तु प्रणिपातलङ्घनादहमपि तस्यां धैर्य्यमवलम्बिष्ये।

विदू—भो चिट्ठदु दाव देईकधा; बुभुक्खिदस्स मे जाविअं अवलम्बदु भवं; समओ क्खु ह्णाणभोअणं सेविदुं। (फ)

राजा—(ऊर्द्धमवलोक्य) कथमर्द्धं गतं दिवसस्य? अतः खलु।—

उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी
निर्भिद्योपरि कर्णिकारकुसुमान्याशेरते षट्पदाः।
तप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते
क्रीडावेश्मनिवेशिपञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते॥ (२२)

इति निष्क्रान्तौ

इति द्वितीयोऽङ्कः।

(फ) भोस्तिष्ठतु तावत् देवीकथा; बुभुक्षितस्य मे जीवितमवलम्बताम् भवान्; समयः खलु स्नानभोजने सेवितुम्।

रोगवाला सामने रक्खे हुए दीपक को कभी भी नहीं देख सका।

राजा—नहीं ऐसा नहीं है, मेरा चित्त उर्वशी में फंसा हुआ होने पर भी मैं देवी का बहुत सन्मान करता हूं। किन्तु जब वह मेरा उल्लघंन करके भी यदि चली गई है तो मैं भी धैर्य्यावलम्बन करके रहूंगा अर्थात् सहसा उसको प्रसन्न करूंगा।

विदू०—महाराज अब देवी की बात रहने दो, मैं भूख से घबरा रहा हूं, आप मेरे जीवन का कोई उपाय कीजिए, स्नान तथा भोजन का समय निकट है।

राजा—(ऊपर को देखकर) कैसे दिन का अर्द्धभाग व्यतीत हुआ इस लिये ही—

(२२) अन्वयः—उष्णालुरिति। उष्णालुः शिखी शिशिरे तरोः मूलालवाले निषीदति, षट्पदाः कर्णिकारकुसुमानि निर्भिद्य उपरि आशेरते, कारण्डवः तप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं सेवते, क्लान्तः क्रीडावेश्मनिवेशिपंजरशुकः जलं याचते।

व्याख्या—उष्णालुः ग्रीष्मार्त्तः शिखी मयूरः शिशिरे शीतस्थले तरोः वृक्षस्य मूलालवाले मूलकृतजलाधारे निषीदति उपविशति, षट्पदाः भ्रमराः कर्णिकारकुसुमानि परिव्याधाख्यवृक्षकलिकाः 'अथ द्रुमोत्पलः कर्णिकारः परिव्याधः' इति त्रिकाण्डी। निर्भिद्य विदार्य उपरि आशेरते, कारण्डवः पक्षिविशेषः 'तेषां विशेषः

तृतीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति भरतशिष्यौ)

प्रथमः—सखे पैलव ! अग्निशरणाद्गच्छता महेन्द्रमन्दिर-मुपाध्यायेन त्वमासनं ग्राहितः, अहमग्निशरणरक्षार्थं स्थापितः ततः पृच्छामि गुरोः प्रयोगेण देवपरिषत् आराधिता न वेति ?

द्वितीयः—गालव ! ण आणे कधं आराहिदा भोदि, तस्सिंउण सरस्सईकिदकव्वबन्धे लच्छीसअम्बरे उव्वसी तेसु तेसु रसन्त-रेसु उम्मादिदा आसी । (क)

(क) न जाने कथम् आराधिता भवति, तस्मिन् पुनः सरस्वतीकृतकाव्यबन्धे लक्ष्मीस्वयम्बरे उर्वशी तेषु तेषु रसान्तरेषु उन्मादिता आसीत् ।

हारीतः मद्गुः कारण्डवः प्लवः' इति त्रिकाण्डी । तप्तं वारि जलं विहाय परित्यज्य तीरनलिनीं तटनलिनीं सेवते, क्लान्तः क्रीडावेश्मनिवेशिपंजरशुकः जलं याचते । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

भावार्थ—मयूरगण धूप से व्याकुल हो कर वृक्ष की शीतल छाया में बैठे हुए हैं, भ्रमरों ने अपने चरणों से कर्णिकार पुष्पों को खिलाकर उन के बीच में शयन किया है, कारण्डवों ने (पक्षिविशेष) तप्त जल को छोड़कर तटस्थ नलिनी का सहारा लिया है, और कदलीगृह के मध्यस्थित पंजरस्थ तोता दुःखित अवस्था में जल की याचना कर रहा है ।

(राजा और विदूषक जाते हैं)

समाप्तोऽयं हिन्दीभाषानुवादितो द्वितीयोऽङ्कः ।

(भरत मुनि के दो शिष्यों का प्रवेश)

पहला—सखे ! पैलव ! अग्निशरणगृहसे इन्द्रालय जाने के समय उपाध्याय महर्षि भरत तुमको अपने पद में प्रतिष्ठित करके गये थे, अग्निशरण रक्षा के लिये मुझको नियुक्त किया था । अत-एव पूछता हूं कि गुरुदेव के नाटक प्रयोग द्वारा सुरसभा तो सन्तुष्ट हुई है ?

दूसरा—देव सभा कैसे सन्तुष्ट हुई थी ! नहीं जानता, किन्तु सरस्वतीकृतलक्ष्मी स्वयम्वरनामक दृश्य काव्य के अभिनयकाल में अन्यान्य रसोंका प्रयोग करते २ उर्वशी को उन्माद होगया,

प्र०—दोषावकाश इव वाक्यशेषः।

द्वि०—आं, ताए वअणं क्खलिदं आसी। (ख)

प्र०—किमिव ?

द्वि०—लच्छीभूमिआए वत्तमाणा उव्वसी वारुणीभूमिआए वत्तमाणाए मेणआए पुच्छिदा, समागदा तिल्लोअपुरिसा, सकेसवा लोअवाला, कस्सिं दे हिअआहिणिवेसो त्ति। (ग)

प्र०—ततस्ततः ?

द्वि०—ताए पुरिसोत्तमे त्ति भणिदव्वे पुरूरवसि त्ति णिग्गदा वाणी। (घ)

प्र०—भवितव्यतानुविधायीनि बुद्धीन्द्रियाणि, न तामभि क्रुद्धो मुनिः ?

द्वि०—सत्ता उअज्झाएण, महेन्देण उण अणुग्गाहिदा। (ङ)

(ख) आं, तस्या वचनं स्खलितमासीत्।

(ग) लक्ष्मीभूमिकायां वर्त्तमाना उर्वशी वारुणीभूमिकायां वर्त्तमानया मेनकया पृष्टा, समागताः त्रिलोकपुरुषाः सकेशवा लोकपालाः; कस्मिन् ते हृदयाभिनिवेश इति।

(घ) तस्याः पुरुषोत्तमे इति भणितव्ये पुरूरवसि इति निर्गता वाणी।

(ङ) शप्ता उपाध्यायेन; महेन्द्रेण पुनरनुग्राहिता।

पहला—तो तुम्हारा अन्तिम कहना यह है कि अनेक दोष दिखाई दिए थे।

दूसरा—हां ! उस समय उसके वाक्य स्खलित होगये थे।

पहला—किस प्रकार ?

दूसरा—उर्वशी ने लक्ष्मीका और मेनकाने वारुणीका अभिनय किया था। मेनकाने उर्वशीसे पूछा–'त्रिलोकस्थित जो सब पुरुष और केशवसमेत लोकपाल उपस्थित हुए हैं इनमें किसके प्रति तुम्हारा चित्त नष्ट हुआ है ?'

पहला—इसके पीछे ?

दूसरा—'पुरुषोत्तम' उच्चारण करने में उर्वशी के मुखसे 'पुरुरवा' ही केवल उच्चारित हुआ।

पहला—बुद्धि और इन्द्रियें भवितव्यता (होनहार) का ही अनुसरण करती हैं, इससे क्या महर्षि उसके प्रति कुपित नहीं हुए ?

दूसरा—उपाध्यायने शाप दे दिया, किन्तु पीछे देवेंद्रने उर्वशी के प्रति अनुग्रह दिखाया।

प्र०—कथमिव ?

द्वि०—जेण तुए मम उवदेसो लङ्घिदो, तेण ण दे दिव्वं णाणं हुविस्सदि त्ति उअज्झाअस्स सआसादो साओ, पुरन्दरेण उण लज्जाओणदमुहिं उव्वसिं पेक्खिअ एव्वं भणिदं, जस्सिं बद्धभावासि तुमं तस्स मे रणसहाअस्स राएसिणो पिअं करणिज्जं, ता तुमं पुरूरवसं जधाकामं उवचिट्ठ, जाव सो पडिट्ठिदसन्दाणो भोदि त्ति । (च)

प्र०—सदृशं पुरुषान्तरवेदिनो महेन्द्रस्य ।

द्वि०—(सूर्य्यमवलोक्य) कधाप्पसङ्गेण अवरद्धा अहिसेअवेला ता उअज्झाअस्स पासपलिवत्तिणो होम्ह । (छ)

(इति निष्क्रान्तौ । विष्कम्भकः)

(ततः प्रवशति कञ्चुकी)

(च) येन त्वया मम उपदेशो लंघितस्तेन न ते दिव्यं ज्ञानं भविष्यति इति उपाध्यायस्य सकाशात् शापः, पुरन्दरेण पुनर्लज्जावनतमुखीमुर्वशीं प्रेक्ष्य एवं भणितं, यस्मिन् बद्धभावासि त्वं तस्य मे रणसहायस्य राजर्षेः प्रियं करणीयम्, तस्मात् त्वं पुरूरवसं यथाकाममुपतिष्ठस्व, यावत् स प्रतिष्ठितसन्तानो भवतीति ।

(छ) कथाप्रसङ्गेन अपराद्धा अभिषेकवेला, तदुपाध्यायस्य पार्श्वपरिवर्तिनौ भवावः ।

पहला—किस प्रकार ?

दूसरा—तुमने मेरा उपदेश उल्लङ्घन किया है, इसलिए तुमको दिव्यज्ञान प्राप्त नहीं होगा । उपाध्यायने यह कहकर शाप दिया तब उर्वशी को लज्जा से सिर झुकाये देखकर इन्द्रने कहा-"जिन के प्रति तुम्हारे अनुराग बंधा है, वे राजर्षि पुरुरवा युद्धमें हमारे सहायक हैं, उन पर उपकार करना मेरा कर्तव्य है । अत एव जब तक उनके सन्तान उत्पन्न न हो, तब तक तुम इच्छानुसार उनके साथ संगवास करो" ।

पहला—देवेन्द्र दूसरे आदमी का गुण समझकर उसके अनुसार ही उसका सत्कार करना जानते हैं ।

दूसरा—(सूर्य की ओर देखकर) बातों ही बातों में समय अधिक होगया है, अत एव चलो, (हम उपाध्याय के पास चलें)

(दोनों जातेहैं इति विष्कम्भक)

कञ्चुकी का प्रवेश ।

कञ्चुकी—सर्वः कल्ये वयसि यतते लब्धुमर्थान् कुटुम्बी;
पश्चात् पुत्रैरुपहितभरः कल्पते विश्रमाय।
अस्माकन्तु प्रतिदिनमियं सादयन्ती प्रतिष्ठां
सेवाकाकुः परिणतिरभूत्, स्त्रीषु कष्टोऽधिकारः ॥(१)

आदिष्टोऽस्मि सनियमया काशिराजपुत्र्या, यथा व्रतसम्पादनाय मया मानमुत्सृज्य निपुणिकामुखेन पूर्वं याचितो महाराजः, तदेवं मद्वचनाद्विज्ञापयेति, यावदहमवसितसन्ध्याकार्य्यं महाराजं पश्यामि। (परिक्रम्य अवलोक्य च) रमणीयः किल दिवसावसानवृत्तान्तो राजवेश्मनः।

कञ्चुकी-(१) अन्वयः—सर्वे इति। सर्वः कुटुम्बी कल्ये वयसि अर्थान् लब्धुं यतते, पश्चात् पुत्रैरुपहितभरः विश्रमाय कल्पते, अस्माकं तु इयं परिणतिः प्रतिदिनं प्रतिष्ठां सादयन्ती सेवाकाकुः अभूत्, स्त्रीषु अधिकारः कष्टः।

व्याख्या—सर्वः समस्तः कुटुम्बी कुटुम्बं कलत्रम् अस्यास्तीति 'णीनिः' गृहस्थी कल्ये कार्य्योपयोगिनि वयसि यौवने अर्थान् धनानि लब्धुम् अधिगन्तुं यतते चेष्टते, पश्चात् पुत्रैरुपहितभरः पुत्रेषु समर्पितकुटुम्बपालनभारः विश्रमाय विश्रामाय कल्पते विश्रामसुखमनुभवतीत्यर्थः। अस्माकं तु इयं परिणतिः वयः परिणामः (वृद्धावस्था) प्रतिदिनं प्रतिष्ठां गौरवं सादयन्ती नाशयन्ती सेवाककुरभूत्, स्त्रीषु योषित्सु अधिकारः स्त्रीणां रक्षणभारः कष्टः कष्टकरोऽस्तीति। मन्दक्रान्ता वृत्तम्।

भावार्थ—कार्य्योपयोगी अवस्था (जवानी) में गृहस्थ माता, पिता, पुत्र कलत्रादि से घिरकर धनोपार्जन करने के लिये प्रयत्न करता है, फिर बुढापे में पुत्र के ऊपर सब भार डालकर आप विश्राम करता है, किन्तु हमारे इस बुढापे ने सुख से रहना नष्ट करके प्रतिदिन केवल पराई सेवा कराकर कातरवचन कहने को नियुक्त किया है, अत एव स्त्री के सम्बध में अधिकार क्लेशजनक है:—

व्रतधारिणी काशीराज की कन्याने आज्ञा दी है कि व्रतसम्पादन के अर्थ मैंने अभिमान परित्याग पूर्वक निपुणिका द्वारा इस से पहले महाराज के निकट प्रार्थना की है, अत एव मेरे कथनानुसार तुम जाकर महाराज को विदित करो कि सन्ध्याकृत्यसमाप्त होने पर मैं महाराज का दर्शन करूंगी। (घूमकर चारों ओर देखता हुआ) दिनके अन्त (सायंकाल) में राजगृह की शोभा कैसी मनोहर है।

उत्कीर्णा इव वासयष्टिषु निशानिद्रालसा बर्हिणो
धूपैर्जालविनिःसृतैर्वड़भयः सन्दिग्धपारावताः।
आचारप्रयतः सपुष्पबलिषु स्थानेषु चार्चिष्मतीः
सन्ध्यामङ्गलदीपिका विभजते शुद्धान्तवृद्धो जनः॥ (२)

(अवलोक्य)। **अये! इत एव प्रस्थितो देवः। य एषः,—**

परिजनवनिताकरार्पिताभिः
परिवृत एष विभाति दीपिकाभिः।
गिरिरिव गतिमानपक्षसादा-
दनुतटपुष्पितकर्णिकारयष्टिः॥ (३)

---

(२) **अन्वयः**—उत्कीर्णेति। निशानिद्रालसा बर्हिणः वासयष्टिषु उत्कीर्णा इव, जालविनिःसृतैः धूपैः वड़भयः सन्दिग्धपारावताः आचारप्रयतः शुद्धान्तवृद्धो जनः सपुष्पबलिषु स्थानेषु अर्चिष्मतीः सन्ध्यामंगलदीपिका विभजते।

व्याख्या—निशानिद्रालसा वर्हिणः मयूराः ' मयूरो बर्हिणो बर्हो नीलकण्ठो-भुजङ्गभुक् " इत्यमरः। वासयष्टिषु आवासदण्डेषु उत्कीर्णा इव लिखिता इव दृश्यते, जालविनिःसृतैः गवाक्षजालैर्निर्गच्छद्भिः धूपैः तदुत्थितधूमैः वड़भयः चन्द्रशालाख्यानि शिरोगृहाणि सन्दिग्धाः संशयिताः पारावताः कपोता यत्र, आचार प्रयतस्तत्परः शुद्धान्तवृद्धः अन्तःपुरवार्द्धतो जनःसपुष्पबलिषु सकुसुमोपहारेषु स्थानेषु अर्चिष्मतीः प्रज्वलिताः सन्ध्यामंगलदीपिका विभजते स्वेषु स्थानेषु विभज्य स्थापयति खल्वित्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं च्छदः।

भावार्थ—मोरगण रात्रीकालीन निद्रावश बांस की लकड़ी पर मानों चित्रलिखित के समान बैठे हैं। धूपका धूआं निकलने से चन्द्रशालागृह के सफेदवर्ण धारण करने से कबूतर अनुमान होता है और नियमपरायण अन्तःपुर निवासी वृद्धपुरुष पुष्प-पूजोपहार युक्त स्थान में प्रज्वलित सन्ध्याकालीन मंगलदीप प्रत्येक भाग करके देरहे हैं।

(चारों ओर देखकर) **अहो? महाराजतो इधरको आरहे हैं। जो कि यह—**

(३) **अन्वयः**—परिजनेति। परिजनवनिताकरार्पिताभिः दीपिकाभिः गतिमानपक्षसादादनुतटपुष्पितकर्णिकारयष्टिः गिरिरिव परिवृत एष विभाति।

व्याख्या—परिजनवनिताकरैः परिजनललनाहस्तैः अर्पिताभिः समर्पिताभिः दीपिकाभिः गीतमानपक्षसादादनुतटपुष्पितकार्णिकारयष्टिः सञ्चरणशीलपक्षच्छेदोनुतट-विकसितवृक्षोत्पलाख्यवृक्षशाखा गिरिः इव पर्वत इव परिवृतः उपेतः साम्मिलित इति यावत् एष विभाति शोभते तावत् गिरिरिवोपेतोऽयं पुरुषापि सम्यगेव शोभां विधते।

यावदेनमवलोकनमार्गे प्रतिपालयामि ।

(ततःप्रविशति यथा निर्दिष्टः सपरिवारो राजा विदूषकश्च)

राजा—(आत्मगतम)

कार्य्यान्तरितोत्कण्ठं दिनं मया नीतमनतिकृच्छ्रेण ।
अविनोददीर्घयामा कथं नु रात्रिर्गमयितव्या ॥ (४)

कञ्चुकी—(उपगम्य) जयति जयति देवः ; देव ! देवी विज्ञापयति ; मणिहर्म्यपृष्ठे सुदर्शनश्चन्द्रः , तत्र सन्निहितेन देवेन प्रतिपालनीयः; यावत् चन्द्ररोहिणीयोगः ।

राजा—विज्ञाप्यतां देवी , यस्तव च्छन्द इति ।

भावार्थ—परिचारिका नारियों के हाथकी दीपमालाद्वारा ये घिररहे हैं गिरिनितम्ब में कर्णिक का फूल खिलने पर पक्षवान् (पंखोंवाला) गीतशील-पर्वत जिस प्रकार शोभा पाता है महाराज भी उसी प्रकार शोभा पाते हैं ।

मैं अब इन की दृष्टि के सामने ठहरूं ।

(परिजन समेत राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा—(मन ही मन)

(४) अन्वयः—कार्य्येति । मया कार्य्यान्तरितोत्कण्ठं दिनम् अनतिकृच्छ्रेण नीतम्, अविनोददीर्घयामा रात्रिः कथं नु गमयितव्या ?

व्याख्या—मया पुरुरवसा कार्य्यैः कृत्यैरन्तरिता स्थगिता उत्कण्ठा यस्मिन् तत् कार्य्यान्तरितोत्कण्ठंदिनम् अनतिकृच्छ्रेण स्वल्पकष्टेन नीतं यापितं ज्ञापितमेवेत्यर्थः अविनोदाः विनोदनोपायरहिताः, अतएव दीर्घाः यामाः प्रहराः यस्याः सा रात्रिः कथं नु केन प्रकारेण गमयितव्या यापितव्या ? आर्या वृत्तम् ।

भावार्थ—राजकाज में लगे रहने पर थोड़े कष्ट से ही मैंने दिन बिता दिया. किन्तु लम्बे पहरवाली रात में तो चित्त को आनन्दित करने का कोई भी उपाय नहीं है ।

कञ्चुकी—(राजा के सामने जाकर) महाराज की जय हो, जय हो । देव ! देवी ने निवेदन किया है कि मणिमय अट्टालिका पर बैठने से सुदृश्य चन्द्रमा दिखाई देता है (अस्तु) जब तक चन्द्र के साथ रोहिणी का योग रहे, तब तक महाराज उसी स्थान में स्थिति करें ।

राजा—देवीसे विदित करो कि जो आपकी रुचि है, वहीहोगा ।

कञ्चुकी—तथा। (इति निष्क्रान्तः)

राजा—वयस्य किमु परमार्थत एव देव्या व्रतनिमित्तोऽयमारम्भः स्यात् ?

विदू—तक्केमि सञ्जादपच्छादाबा अत्तभोदी वदव्ववदेसेण तत्तभवदो प्पणिपादलङ्घणं प्पमुज्जिदुकाम त्ति। (ज)

राजा—उपपन्नं भवान् आह।—

> अवधूतप्रणिपाताः पश्चात् सन्तप्यमानमनसो हि।
> विविधैरनुतप्यन्ते दयितानुनयैर्मनस्विन्यः॥ (५)

तत आदेशय मणिहर्म्यपृष्ठस्य मार्गम्।

विदू—इदो इदो एदु भवं, इमिणा गङ्गातरङ्गसिसिरेण फडिअमणिसिलासोवाणेण आरोहदु भवं सव्वधा रमणिज्जं मणिहम्मदलम्। (झ)

(ज) तर्कयामि, सञ्जातपश्चात्तापा अत्रभवती व्रतव्यपदेशेन तत्रभवतः प्रणिपातलंघनं प्रमार्ष्टुकामेति।

(झ) इत इत एतु भवान्, अमुना गङ्गातरङ्ग शिशिरेण स्फटिकमणिशिलासोपानेन आरोहतु भवान् सर्वथा रमणीयं मणिहर्म्यतलम्।

कञ्चुकी—जो आज्ञा ? महाराज ! (कञ्चुकी जाता है)

राजा—सखे ! सत्यही क्या देवीव्रत करनेके लिए ऐसा करती हैं ?

विदू—मैं सोचता हूं कि माननीया देवी आपका प्रणिपात (अनुरोध) लंघन कर के पीछे अनुतप्त हुई है, अब इस व्रत के बहाने उस अपराध को धोना चाहती है।

राजा—तुम ने बात ठीक २ कही है—

(५) अन्वयः—अवधूतेति। मनस्विन्यः अवधूतप्रणिपाताः सन्तप्यमानमनसो हि पश्चात् विविधैः दयितानुनयैः अनुतप्यन्ते।

व्याख्या—मनस्विन्यः मानिन्यः अवधूतप्रणिपाताः तिरस्कृतपरिणामाः सन्तप्यमानमनसो हि विदूनमानसा हि पश्चात् विविधैः बहुभिः दयितानुनयैः प्रियानुबन्धैः अनुतप्यन्ते पश्चात्तापवत्यो भवन्ति। आर्य्यावृत्तम्।

भावार्थ—मनस्विनी रमणियां प्रणिपात (अनुरोध) लंघन करके फिर संतप्तचित्त होती हैं, और प्रसन्नताकारक अनेक अनुनय विनय से अनुताप को दिखाती हैं।

(जो कुछ हो) तुम मणिप्रसाद का मार्ग दिखाओ।

विदू०—महाराज ! इधर आइए ! इधर आइए ! गङ्गा की

(राजा आरोहति । सर्वे सोपानारोहणं नाटयन्ति)

विद्—(निरूप्य) पच्चासरणेन चन्देण होदव्वं, जधा तिमिरेण रेचीअमाणं पुव्वदिसामुहं आलोहिदप्पहं दीसदि । (अ)

राजा—सम्यग् भवान् मन्यते ।

उदयगूढशशांकमरीचिभि-
स्तमसि दूरतरं प्रतिसारिते ।
अलकसंयमनादिव लोचने
हरति मे हरिवाहनदिङ्मुखम् ॥ (६)

विद्—ही ही, भो भो ! एसो खण्डमोदअसरिसो उदिदो राआ ओषधीणम् (ट)

(अ) प्रत्यासन्नेन चन्द्रेण भवितव्यं, यथा तिमिरेण रिच्यमानं पूर्वदिङ्मुखमालोहितप्रभं दृश्यते ।

(ट) ही ही भो भो ! एष खण्डमोदकसदृश उदितो राजा ओषधीनाम् ।

तरंगों से सुशीतल स्फटिकमणिमय सीढ़ियों पर चढ़कर आप मणिप्रसाद में आरोहण कीजिए ।

(राजा तथा सभी का सीढ़ियों पर चढ़ना)

विदू० —(दिखाकर) चन्द्रदेव शीघ्र ही उदय होंगे, क्योंकि पूर्व-दिशा ने अंधकार से छूटकर अरुणप्रभा धारण की है ।

राजा—तुम ने ठीक ही अनुमान किया है—

(६) अन्वयः—उदयेति । उदयगूढशशाङ्कमरीचिभिः तमसि दूरतरं प्रतिसारिते हरिवाहनदिङ्मुखम् अलकसंयमनादिव मे लोचने हरति ।

व्याख्या—उदयेन उदयाचलेन गूढैः अन्तरितैः शशाङ्कस्य चन्द्रस्य मरीचिभिः किरणैः तमसि अन्धकारे दूरतरं बहुदूरं प्रतिसारिते दूरीकृते सति हरिवाहनस्य इन्द्रगनस्य या दिक् प्राची अलकानां केशानां संयमनात् नियमनात् मे मम लोचने नयने हरति तद्वदित्यर्थः । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

भावार्थ—जो चन्द्रमा अन्धकार से ढका हुआ था, अब उदयाचल के उस चन्द्रदेव की किरणमाला द्वारा अन्धकारसमूह को दूर करने के कारण पूर्वादि दिशाओं के मुख चूर्णकेश अपसारणपूर्वक मेरी आंखों को आनन्द देते हैं ।

विदू०—ही ही ! भो ! भो ! देखिए—औषधियों के राजा चन्द्र मानो एक मोदकखण्ड के समान उदय हुए हैं ।

राजा—(सस्मितम्) सर्वत्र औदरिकस्य अभ्यवहार्य्यमेव विषयः (प्राञ्जलिः प्रणम्य) भगवन् उडुराज !—

रुचिमावहते सतां क्रियायै
सुधया तर्पयते पितॄन् सुरांश्च ।
तमसां निशि मूर्च्छतां निहन्त्रे
हरचूडानिहितात्मने नमस्ते ॥ (७)

विदू—भो ! बम्हणसङ्कामिदक्खरेण पिदामहेण अब्भणुण्णादोऽसि, आसणगदो होहि; तेण अहम्पि सुहासीणो होमि । (ठ)

राजा—(विदूषकवचनं परिगृह्य उपविष्टः परिजनान् विलोक्य) अनभिव्यक्ताश्चन्द्रिकायां दीपिकाः पुनरुक्ताः ताद्विश्राम्यन्तु भवत्यः ।

(ठ) भो ! ब्राह्मणसंक्रामिताक्षरेण पितामहेन अभ्यनुज्ञातोऽसि, आसनगतो भव; तेन अहमपि सुखासिनो भवामि ।

राजा—(कुछ हंसी के साथ) सर्वत्र पेटु पुरुष के समान केवल तुम्हारी आहारचेष्टा देखता हूं । (हाथ जोड़कर प्रणाम-पूर्वक)हे चन्द्रदेव !

(७) अन्वयः—रुचिमिति । सतां क्रियायै रुचिम् आवहते, सुधया पितॄन् सुरांश्च तर्पयते, निशि मूर्च्छतां तमसां निहन्त्रे हरचूडानिहितात्मने नमस्ते ।

व्याख्या—सतां सज्जनानां क्रियायै कार्यार्थं रुचिमनुरागमावहते जनयते, सुधया अमृतवर्षेण पितॄन् सुरांश्च तर्पयते प्रीणयते, निशि रात्रौ मूर्च्छतां प्राप्नुवतां तमसां तिमिराणां निहन्त्रे नाशकाय हरचूडानिहितात्मने शंकरमौलिस्थिताय नमस्ते । औपच्छन्दसिकम्वृतम् ॥

भावार्थ—हे चन्द्रदेव ! आप साधुजनों के व्रत-यज्ञादिक शुभ कर्मों के अनुष्ठानार्थ प्रकाश धारण करते हैं, अमृत द्वारा पितृगण और अग्नि आदि देवताओं को प्रसन्न करते हैं, रात में अंधकार को दूर करते हैं, और आप महादेव के मस्तक पर चूड़ामणि के समान स्थिर रहते हैं, अतः आपको नमस्कार हो ।

विदू०—सखे ! ब्रह्म से ब्राह्मण शब्द उत्पन्न होता है, इसलिए मेरे वाक्य को भी ब्रह्मवाक्य जानना । अतएव आप ब्रह्माकर्तृक अनुज्ञात (आदिष्ट) होकर असान पर बैठिए, तब ही मैं सुख से बैठ सकूंगा ।

राजा—(विदूषक के कथनानुसार बैठकर तथा परिजनों की ओर देखकर) चन्द्रमा की किरणों से दीपक वैसी कान्ति को प्राप्त नहीं होते,

परिजनाः—जं देवो आएणवेदि (ड) (इति निष्क्रान्ताः)

राजा—(चन्द्रम् आलोक्य विदूषकं प्रति) वयस्य ! परं मुहूर्त्तादागमनं देव्याः, तद्विविक्ते कथयामि स्वाम् अवस्थाम् ।

विदू। भो ! ण दीसदि ज्जेव सा उव्वसी , किन्तु ताए तारिसं अणुराअं पक्खिअ सक्क क्खु आसाबन्धेण अत्ताणअं धारिदुं (ढ)

राजा—एवमेतत् , बलवान् मनसोऽभितापः; पुनः—

नद्या इव प्रवाहो विषमशिलासङ्कटस्खलितवेगः ।
विघ्नितसमागमसुखो मनसिशयस्त्वनुगुणो भवति ॥ (८)

(ड) यद्देव आज्ञापयति ।

(ढ) भो न दृश्यत एव सा उर्वशी; किन्तु तस्यास्तादृशमनुरागं प्रेक्ष्य शक्यं खलु आशाबन्धेनात्मानं धारयितुम् ।

इस बात को कहना ही पुनरुक्ति है, अतएव अब तुम विश्राम करने के लिए जाओ ।

परिजन—जो महाराज की आज्ञा हो—(परिजन जाते हैं)

राजा—(चन्द्रमा को देखकर विदूषक से) सखे ! मुहूर्त्तकाल के पीछे ही देवी आवेंगी, अतएव आओ एकान्त में बैठकर अपनी अवस्था कहें ।

विदू०—उर्वशी को तो अब भी नहीं देख पाते ? किन्तु उसके वैसा अनुराग देखकर निःसन्देह आशा के आश्वास से धैर्य्य धारण किया जा सकता है ।

राजा—यह बात ठीक है—मेरे मनका ताप प्रबल होरहा है

(८) अन्वयः—नद्येति । विषमशिलासङ्कटस्खलितवेगः नद्याः प्रवाहो इव विघ्नितसमागमसुखः मनसिशयः अनुगुणः भवति ।

व्याख्या—विषमाः निम्नोन्नताः शिलास्तद्रूपं संकटं तत्र स्खलितवेगः प्रतिबद्धरयः नद्याः प्रवाहो इव विघ्नितसमागमसुखः मनसिशयः कामः अनुगुणः अतिशयो भवति । आर्या वृत्तम् ।

भावार्थ—मेरे मन का ताप प्रबल हो उठा है, रास्ते में कठिन शिला संकट उपस्थित होने पर नदी के वेग को जिस प्रकार बाधा मिलती है, उसी प्रकार कामदेव भी उर्वशी के अभाव से निरन्तर ही प्रबल होता जाता है ।

विदू—जधा परिहीअमाणेहिं अङ्गेहिं सोहासि, तधा अच्छरेहिं समागमं दे पेक्खामि। (ण)

राजा—(निमित्तं सूचयन्)—

वचोभिराशाजननैर्भवानिव गुरुव्यथम्।
अयं मां स्पन्दितैर्बाहुराश्वासयति दक्षिणः॥ (९)

विदू—ण अयणधा बम्हणवअणं भोदि। (त)

(राजा सप्रत्याशं तिष्ठति)

(ततः प्रविशति आकाशयानेन कृताभिसरणवेशा उर्वशी चित्रलेखा च)

उर्व—(आत्मानं विलोक्य) सहि! रुच्चदि मे अअं मुत्ताहरणभूसिदो णीलमणिपरिग्गहो अहिसारिआवेसो (थ)

(ण) यथा परिहीयमाणैरङ्गैः शोभसे तथा अप्सरोभिः समागमं ते प्रेक्षे।

(त) नान्यथा ब्राह्मणवचनं भवति।

(थ) सखि! रोचते मे अयं मुक्ताभरणभूषितो नीलमणिपरिग्रहोऽभिसारिकावेशः।

विदू०—आप के अंग प्रत्यंग जब विरहावस्था से क्षीण होने पर भी शोभा पाते हैं, तो मैं देखता हूं कि उस अप्सरा का समागमन निःसन्देह शीघ्र ही होगा।

राजा—(शकुन को सूचित कर के)

(९) अन्वयः—वचोभिरिति। भवान् आशाजननैः वचोभिः गुरुव्यथं नाशयति, अयं मां स्पन्दितैः दक्षिणः बाहुः आश्वासयति।

व्याख्या—भवान् आशाजनकैः आशाप्रदैः वचोभिः वचनैः गुरुव्यथं महापीड़ां नाशयति, अयं मां स्पन्दितैः दक्षिणः बाहुः आश्वासयति समाधत्ते।

भावार्थ—सखे! तुम जिस प्रकार आशाप्रद वचनों से मेरी बड़ी भारी पीड़ा को दूर करते हो उसी प्रकार मेरी दहिनी भुजा फड़कती हुई मुझे धीर कर रही है।

विदू०—ब्राह्मण का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता।

(राजा आशा से स्थिति करता है)

(आकाशमार्ग से अभिसारिका वेशधारिणी उर्वशी और चित्रलेखा का प्रवेश)

उर्वशी—(अपनी आत्मा को देखकर) सखि? मोतिआदि नीलमणि खचित जो यह अभिसारिका वेश मैंने धारण किया है क्या यह मुझे अच्छा लगता है?

चित्र—णत्थि वाआ विहवो पसंसिदु इदं तु चिन्तेमि, अवि णाम अहं ज्जेव पुरूरवा भवेयं त्ति (द)

उर्व—सहि ! असमत्था क्खु अहं, तुमं आणेहि तं सिग्घं, णेहि मं वा तस्स सुहअस्स वसदिं (ध)

चित्र—णं पडिबिम्बिअं विअ जामिणीजमुणाए केलाससिहरं सस्सिरीअं दे पिअतमस्स भवनमुपगदम्ह (न)

उर्व—तेण हि प्पभावेण जाणाहि, कहिं सो मम हिअअचोरो, किं वा अणुचिट्ठदि त्ति । (प)

चित्र—(आत्मगतम्) भोदु ; कीलिस्सं दाव एदाए सह । (प्रकाशम्) हला ! दिट्ठो मए उअभोअक्खमे अवआसे मणोरहलद्धं पिआसमागमसुहं अणुभवन्तो चिट्ठदि । (फ)

(द) नास्ति वाग्विभवः प्रशंसितुम्; इदन्तु चिन्तयामि, अपि नाम अहमेव पुरूरवा भवेयमिति ।

(ध) सखि ! असमर्था खलु अहं, त्वमानय तं शीघ्रं, नय मां वा तस्य सुभगस्य वसातिम् ।

(न) ननु प्रतिविम्बितमिव यामिनीयमुनायां कैलासशिखरं सश्रीकं ते प्रियतमस्य भवनमुपगते स्वः ।

(प) तेन हि प्रभावेण जानीहि कुत्र स मम हृदयचौरः, किं वा अनुतिष्ठतीति

(फ) भवतु; क्रीडिष्यामि तावदेतया सह । अयि ! दृष्टो मया उपभोगक्षमेऽवकाशे मनोरथलब्धं प्रियासमागमसुखमनुभवंस्तिष्ठति ।

चित्र—इसकी बड़ाई करूं-मेरी वाणी में इतनी शक्ति नहीं है, किन्तु तो भी मेरे मन में ऐसा विचार होता है कि मैं ही इस समय पुरुरवा होती ।

उर्वशी—सखि ? मुझ में अब कुछ भी शक्ति नहीं है, तुम शीघ्र उनको लेआओ । अथवा मुझको ही उन प्रियतमके भवन में लेचलो ।

चित्र—रात के समय यमुना जलमें कैलाश शिखर की परछांही पड़ने से जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार परमश्री (शोभा) सम्पन्न तुम्हारे प्रियतम पुरुरवाके भवन में यह लो हम उपस्थित होगई हैं ।

उर्वशी—तो तुम अपने प्रभावसे जानलो कि मेरे हृदय को चुराने वाले वे इस समय कहां हैं ? और क्या करते हैं ?

उर्व—**अवेहि, हिअअं ण मे पत्तिआदि। हला चित्तलेहे! हिअए का उण किम्पि जप्पेसि? पिअसमागमस्स अग्गदो ज्जेव अणेण मे अवहारिदं हिअअं। (ब)**

चित्र—**एसो मणिहम्मप्पासादगदो वअस्समेत्तसहाओ राएसी ता उपसप्पम्ह। (भ)**

(उभे अवतरतः।)

राजा—**वयस्य! रजन्यां विजृम्भते मदनबाधा।**

उर्व—**अभिण्णत्थेण इमिणा बअणेण आकम्पिदं मे हिअअं; अन्तरहिदा सुणुम्ह से आलावं, जाव णो संसअच्छेदो भोदि (म)**

चित्र—**जं दे रोअदि (य)**

(ब) अपेहि। हृदयं न मे प्रत्येति; अयि चित्रलेखे! हृदये का पुनः किमपि जल्पसि? प्रियसमागमस्याग्रत एव अनेन मेऽपहृतं हृदयम्।

(भ) एव मणिहर्म्यप्रासादगतो वयस्यमात्रसहायो राजर्षिः; तस्मादुपसर्पाव:।

(म) अभिन्नार्थेनानेन वचनेनाकम्पितं मे हृदयम्; अन्तर्हिते शृणुवोऽस्यालापं, यावदावयोः संशयच्छेदो भवति।

(य) यत् ते रोचते।

चित्र—(स्वगत) **जो हो इसके साथ थोड़ी देर तक चुहल करूं** (प्रकट) **हे सखि! मैं देखती हूं कि तुम्हारे प्रियवल्लभ उपभोग स्थान में रहकर मनोरथ लब्ध प्रिया के समागम सुख को भोग रहे हैं।**

उर्वशी—**तूं दूर हो! मेरा हृदय इस बातको विश्वास नहीं करता, सखि! चित्रलेखे! तूने मनमें क्या सोचकर यह बात कही है? प्रियसमागम के पहिले ही उन्होंने मेरे चित्तको हरण किया है।**

चित्र—**सखि! राजर्षि केवल सखी के साथ मणिप्रासाद के ऊपर बैठे हुएहैं। चलो वहां हम लोक चलें।**

(दोनों का उतरना)

राजा—**सखे! रात के समय मदन यातना अधिक बढ़जाती है।**

उर्वशी—**यह कपट रहित बात सुनकर भी मेरा हृदय कम्पित और सन्दिग्ध होता है, छिपकर इन दोनों की बात सुनूं, कारण कि ऐसा होने पर ही मेरा सन्देह दूर होगा।**

चित्र०—**तुम्हारी जो इच्छा?**

विदू—णं इमे अमिअ-गब्भा सेवीअन्तु चन्दवादा। (र)

राजा—वयस्य! एवमादिभिरनुपक्रम्योऽयमातङ्कः।

कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं; चन्द्रमरीचयो,
न च मलयजं सर्वाङ्गीणं, न वा मणियष्टयः
मनसिजरुजं सा वा दिव्या ममालमपोहितुं
रहसि लघयेदारब्धा वा तदाश्रयणी कथा॥ (१०)

उर्व—हिअअ! जं दाणिं सि मं उज्झिअ इदो संकन्तं तस्स फलं तुए उवलद्धं? (ल)

(र) ननु इमे अमृतगर्भाः सेव्यन्तां चन्द्रपादाः।

(ल) हृदय! यदिदानीमासि मामुज्झित्वा इतः संक्रान्तं, तस्य फलं त्वया उपलब्धम्।

विदू०—महाराज! अब इस अमृतपूर्ण चन्द्रकिरण को सेवन कीजिए।

राजा—इसी तरह के कई उपायों से जो काम ज्वर है वह दूर नहीं हो सकता।

(१०) अन्वयः—कुसुमशयनमिति। मनसिजरुजं प्रत्यग्रं कुसुमशयनं न, चन्द्रमरीचयो न, सर्वाङ्गीणं मलयजं न, मणियष्टयः अपोहितुम् नालम्, (किन्तु) सा दिव्या रहसि आरब्धा तदाश्रयणी कथा मम (मनसिजरुजम् अपोहितुम् अलं वा) लघयेत्।

व्याख्या—मनसिजरुजं मन्मथव्यथां प्रत्यग्रं नूतनं कुसुमशयनं पुष्पशय्या न, चन्द्रमरीचयः चन्द्रकिरणाः न, सर्वाङ्गीणं सर्वाङ्गेषु लेपितं मलयजं चन्दनं न, मणियष्टयः मणियुक्ता हारा अपोहितुं दूरीकर्तुं नालं असमर्थाः। किन्तु सा उर्वशी दिव्या सुरलोक-निवासिनी रहसि निर्जने आरब्धा तदाश्रयिणी तद्विषयिणी कथा मम (मनसिजरुजम् अपोहितुं नाशयितुम् अलं समर्था वा) लघयेत् लघुकुर्य्यात्। हरिणी वृत्तम्।

भावार्थ—सखे! यह रोग चन्द्रकिरणादि के द्वारा शमन होने वाला नहीं है, नवीन फूलोंकी शय्या-चन्द्रकिरण, सर्वशरीर व्यापी चन्दन का लेप, मणिमयहार इन सब में किसी से भी यह काम-पीड़ा दूर नहीं हो सकती, केवल यह स्वर्गीया रमणी (उर्वशी) वा उसके विषय की बातें ही मेरा क्लेश हर सकती हैं।

उर्वशी—हृदय! तुम जो इस समय मुझको त्यागकर इस राज्य में आसक्त हुए हो, उसका अच्छा फल फला है?

विदू—आं, भो ! अहम्पि जदा सिहरिर्णी रसालं आण लहे, तदा तं ज्जेब चिन्तयन्तो आसादेमिसुहं। (व)

राजा—सम्पद्यते पुनर्भवतः।

विदू—तुमम्पि तं अइरेण पाविहिसि। (श)

राजा—सखे ! एवं मन्ये।

चित्र—सुणु असंतुट्ट ! (ष)

विदू—कधं विअ ? (स)

राजा—इदं तया रथक्षोभादङ्गेनाङ्गं निपीड़ितम्।
एकं कृति शरीरेऽस्मिन् शेषमङ्गं भुवो भरः॥ (११)

(व) भो ! अहमपि यदा शिखरिर्णी रसालाञ्च न लभे, तदा तदेव चिन्तयन्नासादयामि सुखम्।

(श) त्वमपि तामचिरेण प्राप्स्यसि।

(ष) शृणु असन्तुष्टे !

(स) कथमिव ?

विदू०—महाराज ! शिखरिणी और रसाला (खाद्यवस्तुविशेष) जब नहीं मिलते तब उसकी मनही मन में चिन्ता करके मैं सुख का अनुभव किया करता हूं।

राजा—वह सुख तुमको ही होताहै।

विदू०—वह सुख आपको भी शीघ्र मिलेगा।

राजा—सखे ! मैं भी यही सोचता हूं।

चित्र०—असन्तुष्ट ! सुन।

विदू०—किस प्रकार से ?

(११) अन्वयः—हृदयमिति। रथक्षोभात् तया अङ्गेन निपीडितम् इदम् अङ्गम् अस्मिन् शरीरे एकं कृति शेषम् अङ्गम् भुवो भरः अस्तीति।

व्याख्या—रथक्षोभात् स्यन्दनसञ्चलनवेगात् तया उर्वश्या अङ्गेन निपीड़ितम् प्राप्ततदङ्गसंघर्षणमित्यर्थः, इदं अङ्गम् शरीरैकदेशः अस्मिन् शरीरे शरीरमध्ये एकं केवलं कृति कृतकार्य्यं शेषमङ्गं भुवः पृथिव्या भरः भारभूतमस्तीति। अनुष्टुप् वृत्तम्।

भावार्थ—जब वेग के कारण रथ अत्यन्त शीघ्रगतिसे चला, तब उस प्रियतमा उर्वशीने अपने अंगद्वारा मेरे अंग को पीड़ित किया था, अतः मेरे शरीरका अंग वही सार्थक हुवा, अन्य अङ्ग प्रत्यङ्ग तो केवल पृथ्वी के भार स्वरूप हैं।

उर्व—किं दाणिं अवरं विलम्बिस्सं ? (सहसा उपगम्य) हला चित्तलहे ! अग्गदो वि मए ठिदाए उदासीणो महाराओ। (ह)

चित्र—(सस्मितम्) अइ अदि तुवरिदे ! असंकिखत्तिरक्करिणी आसि। (त्त)

(नेपथ्ये) इदो इदो भट्टिणी। (क)

(सर्वे कर्णं ददति; उर्वशी सह सख्या विषण्णा।)

विदू—अविद अविद, भो ! उवत्थिदा देई, ता मुद्दिदमुहो होहि। (ख)

राजा—भवानपि संवृताकारमास्ताम्।

उर्व—हला ! एत्थ किं करणिज्जं ? (ग)

चित्र—अलं आवेएण ? अन्तरिदा दाणिं सि तुमं, विहिद-णिअमव्वावारा अ महिसी दीसदि; ता एसा ण चिरं चिट्ठिस्सदि त्ति। (घ)

(ह) किमिदानीमपरं विलम्बिष्ये ? अयि चित्रलेखे ! अग्रतोऽपि मम स्थिताया उदासीनो महाराजः।

(त्त) अयि अतित्वरिते ! असंक्षिप्ततिरस्करिणी असि।

(क) इत इतो भट्टिनी।

(ख) अविद अविद भो ! उपस्थिता देवी, तन्मुद्रितमुखो भव।

(ग) अयि ! अत्र किं करणीयम् ?

(घ) अलमावेगेन ? अन्तरिता इदानीमसि त्वम्। विहितनियमव्यापारा च महिषी दृश्यते; तदेषा न चिरं स्थास्यतीति।

उर्वशी—(आप ही आप) तब फिर विलम्ब की क्या आवश्यकता है ? (प्रगट) सखि ! चित्रलेखे ! मेरे सन्मुख विद्यमान् होने से क्या महराज उदासीन रहेंगे ?

चित्र०—(मधुर हंसी से) हे अतित्वरिते ! तुम तिरस्कारिणी विद्या के बल से असंक्षिप्त हुई हो।

(नेपथ्य में) देवी ! इधर आओ ! इधर आओ !

(उसी ओर कान लगाकर सबका सुनना किन्तु सखीसहित उर्वशी का विषाद)

विदू०—(अस्त व्यस्त होकर) अहा ! अहो !! देवी स्वयं आकर उपस्थित हुई है आप चुपचाप रहिए।

राजा—आप भी चुपकर बैठ जाइये।

उर्वशी—हे सखि ! अब क्या करना चाहिये ?

(ततः प्रविशति भृतोपहारपरिजना देवी)

देवी—(चन्द्रमालोक्य) एसो रोहिणीजोएण अहिअं सोहदि भअवं मिअलच्छणो । (ङ)

चेटी—णं सम्पज्जिस्सदि भट्टिणीसहिदस्स भट्टिणी बिसेस-रमणीअदा । (च)

(इति परिक्रामतः)

विदू—भो ! णं आणामि, सोत्थिबाअणिअम्पि देदि; अधबा भवन्तं अन्तरेण चन्दबदव्बबदेसेण मुक्करोसा अज्ज मे अक्खीणं सुहदंसणा देई । (छ)

राजा—(सस्मितम्) उभयथापि भवतः यत्तु पश्चादभिहितं, तन्मां प्रति याति, यदत्रभवती ।—

(ङ) एष रोहिणीयोगेनाधिकं शोभते भगवान् मृगलाञ्छनः ।

(च) ननु सम्पत्स्यते भट्टिनीसहितस्य भर्तुर्विशेषरमणीयता ।

(छ) भो ! ननु जानामि, स्वस्तिवाचनिकमपि ददाति; अथवा भवन्तमन्तरेण चन्द्रव्रतव्यपदेशेन मुक्तरोषा अद्य मे अक्ष्णोः शुभदर्शना देवी ।

चित्र०— अबेर की क्या आवश्यकता है ? आपतो इस समय यहां स्थित हैं, देखती हूं कि महर्षि ने भी कोई व्रतधारण किया है, अतः यहां बहुत देर तक मत ठहरिए ।

(परिजन सहित उपहारादि लिये देवी का प्रवेश)

देवी—(चन्द्रमा की ओर देखकर) भगवान् शशांक (चन्द्रदेव) रोहिणी के साथ संयोग होने से परमशोभा पारहे हैं ।

चेटी –स्वामिनी के संग स्वामी के मिलने में भी परम-रमणी-यता सम्पादित होगी ।

(सबका परिक्रमण)

विदू —अहो ! मुझको निश्चय बोध होता है कि स्वतिवाचन भी प्रदान करेंगी, अथवा महाराज को न पाकर देवी चन्द्रव्रत के मिसक्रोध रहित होकर आज मेरे नयनों में शुभावलोकन होती हैं ।

राजा—(मधुर हास्यसे) सखे ! तुम्हारी दोनों ही बातें सच्ची हैं। किन्तु अन्त में जो कुछ कहा वह तो अब प्रत्यक्ष ही दीखता है । क्योंकि;—

सितांशुका, मङ्गलमात्रभूषणा,
विचित्रदूर्वांकुरलाञ्छितालका ।
व्रतापदेशोज्झितगर्ववृत्तिना
मम प्रसन्ना वपुषेव लक्ष्यते ॥ (१२)

देवी—(उपगम्य) जेदु जेदु अज्जउत्तो । (ज)

परिजनः—जेदु जेदु देओ । (झ)

विदू—सोत्थि भोदीए । (ञ)

राजा—देवि ! स्वागतम् ? (हस्ते गृहीत्वा उपवेशयति) ।

उर्व—ट्ठाणे इअं हि देईसद्देण उअरीअदि; ण किम्पि परिहीअदि सर्चीदो ओजस्सिदाए । (ट)

(ज) जयति जयति आर्य्यपुत्रः ।

(झ) जयति जयति देवः ।

(ञ) स्वस्ति भवत्यै ।

(ट) स्थाने, इयं हि देवीशब्देन उच्चार्य्यते; न किमपि परिहीयते शचीत ओजस्वितायाम् ।

---

(१२) अन्वयः—सितांशुकेति । सितांशुका मंगलमात्रभूषणा विचित्रदूर्वांकुरलाञ्छितालका व्रतोपदेशोज्झितगर्ववृत्तिना वपुषा एव (सा) मम प्रसन्ना लक्ष्यते ।

व्याख्या-सितांशुका श्वेतवस्त्रपरिधारिणी मङ्गलं हरिद्रोद्वर्तनंकुकुमादितन्मात्रभूषणा, विचित्रदूर्वांकुरलाञ्छितालका व्रतेषु यः उपदेशः शिक्षा तेन उज्झिता त्यक्ता गर्ववृत्तिर्येन वपुषा शरीरेणैव सा देवी मम मदर्थं प्रसन्ना सन्तुष्टा लक्ष्यते प्रतीयते । वंशस्थविलं वृत्तम् ।

भावार्थ—देवी का पहरावा सफेद वस्त्र है, पुष्पमाल्यादि मांगलिक अलंकारों से यह विभूषित है, और अलकावली में मनोहर दूर्वांकुर विराजमान हो रहा है, सारांश—व्रत के बहाने गर्वत्याग कर जो देवी मुझ पर प्रसन्न हुई है, सो इस के शरीरावलोकन से ही ज्ञात हो रहा है ।

देवी—(पास आकर) आर्य्यपुत्र की जय हो, जय हो ।

परिजन—देव ! आप विजय प्राप्त करें ।

विदू०—आपका कल्याण हो ।

राजा—देवी ! निर्विघ्न तो आई हो ? (देवी का हाथ पकड़कर आसन पर बैठाना)

उर्वशी—यह देवी शब्द से अभिहित हुई, यह युक्तिसंगत ही है, शची की समान तेजस्विता में यह कुछ भी कम नहीं है ।

चित्र—अत्थि अवरं मुहं मन्तिदुं दे ? (ठ)

देवी—अज्जउत्तं पुरोकदुअ कोबि वदविसेसो मए सम्पादणीओ; ता मुहुत्तअं उअरोधो सहीअदु। (ड)

राजा—माणवक ! अनुग्रहः खलु उपरोधः।

विदू—ईदिसो णं सोत्थिवाअणं करन्तो, मम बहुसो उअरोधो भोदु। (ढ)

राजा—किं नामधेयमेतद्देव्या व्रतम् ?

(देवी निपुणिकामवलोकयति)

चेटी—भट्टा-प्पिअप्पसादणं णाम। (ण)

राजा—(देवीं विलोक्य।)

अनेन कल्याणि ! मृणालकोमलं
व्रतेन गात्रं ग्लपयस्यकारणम्।

(ठ) अस्ति अपरं मुखं मन्त्रयितुं ते ?

(ड) अर्य्यापुत्रं पुरस्कृत्य कोऽपि व्रतविशेषो मया सम्पादनीयः; तन्मुहूर्तकमुपरोधः सह्यताम्।

(ढ) ईदृशो ननु स्वस्तिवाचनं कुर्वतो मम बहुश उपरोधो भवतु।

(ण) भर्तृप्रियप्रसादनं नाम।

चित्र०—सखि ! तुम से वार्तालाप करने में राजा का अन्य प्रकार मुख है।

देवी—आर्य्यपुत्री को सन्मुखवर्ती कर के मैं कोई व्रत विशेष सम्पादन करूंगी, अतएव मुहूर्त्तकाल तक उपरोध सह्य कीजिए।

राजा—सखे ! माणवक ! इस समय अनुग्रह ही उपरोध होता है।

विदू०—स्वस्तिवाचन करते २ मेरे इस प्रकार अनगिन्ति उपरोध होवें।

राजा—देवी के इस व्रत का नाम क्या है ?

(निपुणिका की ओर देवी का देखना)

चेटी—प्रभो ! इस व्रत का नाम 'प्रियप्रसादन' है।

राजा—(देवी की ओर देखकर)

प्रसादमाकाङ्क्षति यस्तवोत्सुकः
स किं त्वया दासजनः प्रसाद्यते ॥ (१३)

उर्व—(सवैलक्ष्यस्मितम्) महन्तो क्खु इमस्सिं पदस्स बहुमाणो (त)

चित्र—अइ मुद्धे ! अण्णसंकन्तप्पेमाणो णाअरा अहिअं दक्खिणा होन्ति। (थ)

देवी—इमस्स बदस्स अअं प्पहाओ, जं एत्तिअं बाधिदो अज्जउत्तो। (द)

विदू—विरमदु भवं; ण जुत्तं बन्धुभासिदं पच्चाक्खादुं (ध)

(त) महान् खलु अस्यामेतस्य बहुमानः।

(थ) अयि मुग्धे ! अन्यसंक्रान्तप्रेमाणो नागरा अधिकं दक्षिणा भवन्ति।

(द) अस्य व्रतस्य अयं प्रभावो, यदेतावद्बाधित आर्य्यपुत्रः।

(ध) विरमतु भवान्; न युक्तं बन्धुभाषितं प्रत्याख्यातुम्।

(१३) अन्वयः—अनेनेति। कल्याणि ! अनेन व्रतेन मृणालकोमलं गात्रं अकारणं ग्लपयसि, यः तवोत्सुकः दासजनः प्रसादं आकाङ्क्षति, स किं त्वया प्रसाद्यते ?

व्याख्या—हे कल्याणि ! अनेन व्रतेन मृणालवत् कोमलं मृदु यत् गात्रं शरीरम् अकारणं कारणाविनैव ग्लपयसि पीडयसि, यः तव उत्सुकः उत्कण्ठितः दासजनः तवप्रसन्नतां प्रसादं मनोऽभीष्टमाकाङ्क्षति इच्छति, स (अयं दासजनः) किं त्वया प्रसाद्यते। वंशस्थविलं छन्दः।

भावार्थ—हे कल्याणि ! इस व्रत का अनुष्ठान करके अपने कमल-कोमल शरीर को क्यों वृथा कष्ट देती हो ? जो व्यक्ति उत्कण्ठित होकर सदा तुम्हारी प्रसन्नता चाहता है, उस सेवक को क्या फिर तूं प्रसन्न करेगी ?

उर्वशी—(व्याकुलता की हंसीके साथ) इस देवी के प्रति महाराजका बहुत सन्मान देखती हूं।

चित्र—हे मुग्धे ! जिस नायक का प्रेम दूसरी रमणी में स्थित है वह इस प्रकार दक्षिण नायक होता है।

देवी—इस व्रतके प्रभाव से आर्य्य पुत्र वशीभूत होंगे।

विदू—महाराज ! आप शान्त रहिये, बन्धु की बात का निरादर करना उचित नहीं है।

(१) दक्षिण नायक अत्यन्त प्रियभाषी होता है।

देवी—दारिआओ! आणेध उअहारअं, जाव हम्मगदे चन्द-बादे अच्चेमि। (न)

परिजनः—जं देई आणवेदि। एसो उअहारो। (प)

देवी—उवणेध (नाट्येन कुसुमादिभिश्चन्द्रपादान् अभ्यर्च्च्य) हञ्जे! इमेहिं उवहारेहिं मोदएहिं अज्जमाणवअं कञ्चुइं अ अच्चेध। (फ)

परिजनः—जं देई आणवेदि; अज्ज माणवअ! इदं उववादिदं सोत्थिवाअणिअं (ब)

विदू—(मोदकशरावं गृहीत्वा) सोत्थि भोदीए; बहुफलो एसो वदो भोदु (भ)

चेटी—अज्जकञ्चुइ! इदं तुह। (म)

कञ्चुकी—(गृहीत्वा) स्वस्ति देव्यै।

देवी—अज्जउत्त! इदो दाव। (य)

(न) दारिकाः! आनयत उपहारकं, यावत् हर्म्यगतांश्चन्द्रपादानर्चयामि।

(प) यद्देवी आज्ञापयति। एष उपहारः।

(फ) उपनयत। अयि! एभिरुपहारैर्मोदकैरार्य्यमाणवकं कञ्चुकिनं च अर्च्चयत।

(ब) यद्देवी आज्ञापयति; आर्य्य माणवक! इदमुपपादितं स्वस्तिवाचनिकम्।

(भ) स्वस्ति भवत्यै; बहुफलमेतद् व्रतं भवतु।

(म) अयि कञ्चुकिन्! इदं तव।

(य) आर्य्यपुत्र! इतस्तावत्।

देवी—बालिकाओ! पुजा के सब उपहार-द्रव्य ले आओ, मैं अट्टालिका पर शोभायमान चन्द्रमा की पूजा करूंगी।

परिजन—जैसे आप आज्ञा करें यह उपहार तैय्यार है।

देवी—ले जाइये (नाटय द्वारा पुष्पादि से चन्द्रकिरणों की अर्चना कर) अयि! इन मोदकों की भेंट से आर्य्यमाणवक कञ्चुकी की पूजा करें।

परिजन—देवी की जैसी अनुमति हो (यह कहकर) आर्य्य माणवक! यह अनीत स्वस्तिवाचन ग्रहण कीजिये।

विदू०—(मोदक शराव लेकर) देवी का कल्याण हो, यह व्रत बहुत से फलका देने वाला है।

चेटी—कंचुकिन्! यह उपहार आपका है।

कंचुकी—(ग्रहण कर के) देवी का कल्याण हो।

देवी—आर्य्यपुत्र! इधर आइए।

राजा—अयमस्मि ।

देवी—(राज्ञः पूजामभिनीय , प्राञ्जलिः प्रणाम्य च) एसा देवदा-मिहुणं रोहिणी-मिअलञ्छणं सक्खीकदुअ अज्जउत्तं प्पसादेमि; अज्जप्पहुदि अज्जउत्तो जं इत्थिअं कामेदि, जा अ अज्जउत्त, समागमप्पणइणी, ताए सह अप्पाडिबन्धेण वत्तिदव्वं । (र)

उर्व—अह्महे ! णं जाणामि किं परं से वअणं ! मम उण विस्सासविसदं हिअअं संवुत्तं (ल)

चित्र—सहि ! महाणुभावाए पदिव्वदाए अब्भणुण्णादो अणन्तराओ दे पिअसमागमो भविस्सदि त्ति । (व)

विदू—(अपवार्य्य) छिण्णहत्थस्स पुरदो बज्झे पलाइदे भणदि,गच्छ धम्मो भविस्सदि त्ति (प्रकाशम्) भोदि ! किं उदासीणो तत्थभवं ? (श)

(र) एषा देवतामिथुनं रोहिणीमृगलाञ्छनं साक्षीकृत्य आर्य्यपुत्रं प्रसादयामि; अद्यप्रभृति आर्य्यपुत्रो यां स्त्रियं कामयते, या च आर्य्यपुत्रसमागमप्रणयिनी, तया सह अप्रतिबन्धेन वर्त्तितव्यम् ।

(ल) आश्चर्य्यम्, न जाने किं परमस्या वचनम् ! मम पुनर्विश्वासविषदं हृदयं संवृत्तम् ।

(व) सखि ! महानुभावया पतिव्रतया अभ्यनुज्ञातोऽनन्तरायस्ते प्रियसमागमो भविष्यतीति ।

(श) छिन्नहस्तस्य पुरतो बध्ये पलायिते भणति , गच्छ धर्मो भविष्यतीति । भवति किमुदासीनस्तत्रभवान् ?

राजा—मैं यह हूं—

देवी—(राजा की पूजा करके हस्तबद्ध प्रणाम-पूर्वक) मैं रोहिणी और चन्द्रमा इस देवदम्पति को साक्षी करके आर्य्यपुत्र को प्रसन्न करती हूं । आर्य्यपुत्र जिस रमणी की कामना करते हैं, और जो नारी आर्य्यपुत्र के समागम की अभिलाषिणी है, उसके साथ अब आर्य्यपुत्र निर्विघ्न अवस्थान करें ।

उर्वशी—कैसा आश्चर्य्य है, इस देवी के वचन का तात्पर्य्य समझ में नहीं आता, इसने जो कुछ कहा है वह सत्य है या कपटतापूर्ण, यह मैं नहीं समझ सकती । जो हो तो भी मेरा हृदय विश्वास विशद हो रहा है ।

चित्र—सखि ! महानुभावा पतिव्रता देवी ने आज्ञा देदी है अत एव प्रियतम के संग समागम में अब कोई भी विघ्न न होगा ।

विदू०—(दूसरा न सुन सके इस भावसे) कटे हाथवाले आदमी के निकट

देवी—मूढ़ ! अहं क्खु अत्तणो सुहावसाणेण अज्जउत्तस्स सुहं इच्छामि ; पत्तिएण चिन्तेहि दाव पिओ ण वेत्ति। (ष)

राजा—दातुमसहने ! प्रभवस्यन्यस्यै कर्त्तुमेव वा दासम्।
नाहं पुनस्तथा त्वयि, यथा हि मां शङ्कसे भीरु ! ॥ (१४)

देवी—भोदु; जधाणिद्दिट्ठं सम्पादिदं पिअप्पसादणव्वदं; ता एध परिअणा ! गच्छम्ह। (स)

राजा—न खलु प्रसादितमपि प्रतिविहाय गम्यते।

देवी—अज्जउत्त ! अलङ्घिदपुण्णो सम्पदं णिअमो (ह)

(ष) मूढ़ ! अहं खलु आत्मनः सुखावसानेन आर्य्यपुत्रस्य सुखमिच्छामि ; एतन्मात्रेण चिन्तय तावत् प्रियो न वेति।

(स) भवतु; यथानिर्दिष्टं सम्पादितं प्रियप्रसादनव्रतम्; तदेत परिजनाः ! गच्छामः।

(ह) आर्य्यपुत्र ! अलङ्घितपुण्यः साम्प्रतं नियमः।

से यदि वध्य व्यक्ति भाग जाए तो वह कहता है कि जाओ धर्म होगा (प्रकट) देवि ! महाराज क्या उदासीन हैं ?

देवी—मूढ़ ! मैं अपना सुख त्यागकर आर्य्यपुत्र के सुख की कामना करती हूं। बस इसी से विचार कर के देख लें कि आर्य्यपुत्र मुझ को प्यारे हैं या नहीं ?

राजा—(१४) अन्वयः—दातुमिति। असहने ! अन्यस्यै दातुं प्रभवसि वा दासं कर्त्तुम् (प्रभवसि) भीरु ! यथा हि त्वं मां शङ्कसे तथा अहं पुनः त्वयि न।

व्याख्या—असहने—असहिष्णुताशीले ! अन्यस्यै दातुं वितरितुं प्रभवसि वा दासं भृत्यं कर्त्तुम् विधातुम् प्रभवसि, भीरु ! भययुक्ते ! यथा येन प्रकारेण हि त्वं मां पुरुरवसं शङ्कसे शङ्कांकरोषि तथा अहं पुनः त्वयि न। आर्य्यावृत्तम्।

भावार्थ—असहिष्णुताशीले ! तुम इच्छा करने पर उस व्यक्ति को अन्य रमणी प्रदान कर सकती हो, इसको अनुचर करने की भी तुम में शक्ति है। हे भीरु ! तुम मेरे प्रति जैसी आशंका करती हो मैं वैसा नहीं हूं।

देवी—जो हो—यथानिर्दिष्ट 'प्रियप्रसादन व्रत' सम्पादित हुआ है, परिजनगण ! आइए अब हम चलें।

राजा—प्रसादित (प्रसन्न किए) व्यक्ति को छोड़ना उचित नहीं है।

देवी—आर्य्यपुत्र ! इस समय जो व्रत सम्पादित हुआ है यह

(इति सपरिजना निष्क्रान्ता)

उर्व— हला ! पिअकलत्तो राएसी; ण उण हिअअं णिअत्तइदुं सक्कणोमि (च)

चित्र—कधं थिरासो णिअत्ती अदि ? (क)

राजा—(आसनमुपसृत्य) वयस्य ! दूरं गता देवी ।

विदू—भण वीसत्थो, जं सि वत्तुकामो ; असज्झो त्ति परिच्छिदिअ आतुरो विअ वेज्जेण अइरेण मुक्को तत्थभोदीए भवं (ख)

राजा—अपि नामोर्वशी ?

उर्व—(आत्मगतम्) अज्ज कदत्था भवे । (ग)

राजा—गूढं नूपुर शब्दमात्रमपि मे कान्तं श्रुतौ पातयेत्,
पश्चादेत्य शनैः करोत्पलवृते कुर्वीत वा लोचने ।

(च) अयि ! प्रियकलत्रो:राजर्षिः ; न पुनर्हृदयं निवर्त्तयितुं शक्नोमि ।

(क) कथं स्थिराशो निवर्त्त्यते ?

(ख) भण विश्वस्तो, यदसि वक्तुकामः; असाध्य इति परिच्छिद्यातुर इव वैद्येन अचिरेण मुक्तस्तत्र भवत्या भवान् ।

(ग) अद्य कृतार्था भवेत् ।

अपरित्यक्त पुण्य है, अतएव मैं अब आपके निकट नहीं रह सकती।

(परिजनों के साथ देवी जाती है)

उर्वशी—सखि ! राजर्षि देवी को बहुत प्यार करते हैं, किन्तु मैं अब अपने हृदय को फिरा नहीं सकती ।

चित्र०—जिस हृदय में आशा स्थिर हुई है उस हृदय को फिर लौटाया क्यों जाय ?

राजा—(आसन पर बैठकर) सखे ! देवी बहुत दूर चली गई है ।

विदू०—अब जो कहना हो विश्वस्त चित्त से कहो, रोग को असाध्य निश्चय कर के पीड़ित व्यक्ति को जिस प्रकार वैद्य छोड़ देता है, आपको भी आज देवी ने उसी प्रकार छोड़ दिया है ।

राजा—उर्वशी क्या हमारी होगी ?

उर्वशी—(मन ही मन) अब उर्वशी कृतार्थ हुई है ।

हर्म्येऽस्मिन्नवतीर्य्य साध्वसवशान्मन्दायमाना बला-
दानीयेत पदात् पदं चतुरया सख्या ममोपान्तिकम् ॥(१५)

चित्र—हला उव्वसि ! इमं दाव से मणोरहं सम्पादेहि । (घ)

उर्व—(ससाध्वसम्) कीड़िस्सं दाव । (ङ)

(इति पृष्टेनागत्य राज्ञो लोचने संवृणोति । चित्रलेखा विदूषकं सञ्ज्ञां लम्भयति)

राजा—(स्पर्शं रूपयित्वा) सखे ! न खलु नारायणोरुसम्भवा वरोरु ?

विदू०—कधं भवं अवगच्छदि ? (च)

(घ) अयि उर्वशि ! इमं तावदस्य मनोरथं सम्पादय ।

(ङ) क्रीडिष्यामि तावत् ।

(च) कथं भवानवगच्छति !

राजा—(१५) अन्वयः—गूढमिति । गूढं कान्तं नूपुरशब्दमात्रमपि मे श्रुतौ पातयेत् वा शनैः पश्चात् एत्य करोत्पलवृते लोचने कुर्वीत् । अस्मिन्, हर्म्ये अवतीर्य्य साध्वसवशान्मन्दायमाना चतुरया सख्या मम उपान्तिकं बलात् पदात् पदं आनीयेत ।

व्याख्या—गूढं सशङ्कपदसंचारादविस्पष्टं कान्तं मनोहरम् नूपुरशब्दमात्रम् मंजीरशिञ्जितमात्रम् अपि नामेति संभावनायां मे मम श्रुतौ कर्णौ पातयेत कर्णगोचरं कुर्य्यात्, वा अथवा शनैः मन्दम् पश्चादेत्य करोत्पलवृते करकमलाच्छादिते लोचने नेत्रे कुर्वीत्, अस्मिन् हर्म्ये गृहे अवतीर्य्य साध्वसवशान्मन्दायमाना लज्जाशङ्कादिना जाड्येन कच्छपगतिरित्यर्थः । चतुरया निपुणया सख्या मम उपान्तिकं समीपं पदात् पदं बलात् आनीयेत । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

भावार्थ—पायजेब का मृदुमन्द मनोहर शब्द मेरे कानों में प्रवेश करेगा, धीरे २ पश्चाद् भाग में उपस्थित होकर कर कमल द्वारा मेरे दोनों नेत्रों को मींचेगा, और प्रसाद के ऊपर उतरकर भय और लज्जा के कारण मेरे समीप पहुंचने में देर करने से आतुर सखी एक २ पग करके उसको क्या मेरे निकट लावेगी ?

चित्र—हे उर्वशी ! अब इनका मनोरथ पूरा करो ।

उर्वशी—(भय से) तो मैं इस समय कुतूहल (तमाशा) करूं ?

(यह कहकर पीछे से राजा की दोनों आंखें मूंद लेती है, चित्रलेखा विदूषक को चैतन्य करती है)

राजा—(स्पर्श का सुख अनुभव कर के) सखे ! जिस ने मेरी आंखें मूंदी हैं वह क्या नारायण की उरूसे पैदा हुई वामोरु उर्वशी नहीं है ?

विदूषक—आप ने कैसे जाना ?

राजा—किमत्र ज्ञेयम् ?

अन्यत् कथमिव पुलकैः कलितं मम गात्रकं करस्पर्शात् ।
नोच्छ्वसिति तपनकिरणैश्चन्द्रस्यैवांशुभिः कुमुदम् ॥ (१६)

उर्व०—अह्मेह ? बज्जोवघाड़िदं बिअ मे हत्थजुअलं ण समत्थाम्हि अवणेदुं । (छ)

(राजा हस्ताभ्यां गृहीत्वा परिवर्त्तयति)

(इति मुकुलिताक्षी चक्षुषो हस्तावपनीय ससाध्वसा तिष्ठति । कथञ्चिदुपसृत्य)

उर्वशी—जेदु जेदु महाराओ (ज)

चित्र०—सुहं द बअस्स ? (झ)

राजा—नन्वेतदुपपन्नम् ।

(छ) अहो ! (आश्चर्य्यम्) वज्रोपघाटितमिव मे हस्तयुगलं न समर्थास्मि अपनेतुम् ।

(ज) जयति जयति महाराजः ।

(झ) सुखं ते वयस्य ?

राजा—इस में मेरे जानने की बात ही क्या है ?

(१६) अन्वयः—अन्यदिति । करस्पर्शात् मम गात्रकं पुलकैः कलितं कथमिव कुमुदं तपनकिरणैः न उच्छ्वसिति चन्द्रस्य इव अंशुभिः (उच्छ्वसिति) ।

व्याख्या—करस्पर्शात् हस्तसंलग्नात् मम राज्ञः गात्रकम् अङ्गं पुलकैः कलितं पुलकाङ्कितांङ्गं कथमिव सदन्यदिव सुखयतीत्यर्थः । कुमुदं तपनकिरणैः सूर्य्यकिरणैः न उच्छ्वसिति न विकसति, अपितु चन्द्रस्य अंशुभिः किरणैः विकसतीत्यर्थः । आर्य्यावृत्तम् ।

भावार्थ—केवलमात्र हाथ के स्पर्श होते ही मेरे अंग पुलकित हुए जाते हैं । देखो चन्द्रमा की किरण से 'कुमुद' (बबूने) खिलते हैं किन्तु सूर्य्य की किरण से उन के खिलने की संभावना नहीं है ।

उर्वशी—अहो ! मेरे दोनों हाथ मानो वज्रद्वारा लिप्तबोध होते हैं, मैं हाथों को हटा नहीं सकती ।

(राजा हाथों से पकड़कर दूर करता है)

(यह कहकर हाथ हटा निमीलिताक्षी भय से अवस्थान और अत्यन्त कष्ट से निकट जाकर)

उर्वशी—महाराज की जय हो, जय हो महाराज !

चित्र—सखा का मंगल तो है ?

राजा—अब तो सब ही मंगल हो गया है ।

उर्व॰—हला ! देईए दिण्णो महाराओ; अदो से प्पणयवदी विअ सरीरसङ्गदम्हि, मा क्खु मं पुरोभाइणि त्ति समत्थेहि। (ञ)

विदू॰—कधं इहज्जेव तुम्हाणं अत्थमिदो सूरो ? (ट)

राजा—(उर्वशीमवलोक्य)

देव्या दत्त इति यदि व्यापारं व्रजसि मे शरीरेऽस्मिन् ।
प्रथमं कस्यानुमते चोरितमयि ! मे त्वया हृदयम् (१७)

चित्र॰—वअस्स ! निरुत्तरा पेसा, मम सम्पदं विण्णत्ति सूणिअदु(ठ)

राजा—अवहितोऽस्मि ।

(ञ) अयि ! देव्या दत्तो महाराजः, अतोऽस्य प्रणयवतीव शरीरसङ्गतास्मि; मा खलु मां पुरोभागिनीति समर्थय ।

(ट) कथमिहैव युवयोरस्तमितः सूर्य्यः ?

(ठ) वयस्य ! निरुत्तरा एषा, मम साम्प्रतं विज्ञप्तिः श्रूयाताम् ।

उर्वशी—अरी ! देवी ने मुझे महाराज को दिया है, अतएव मैं इनकी प्रियतमा के समान अर्द्धाङ्गिनी हुई हूं, तुम मुझ को अनुचित कार्य्य में प्रवृत्त हुआ मत जानना ।

विदू॰—क्या इस समय ही आपका सूर्य्य अस्त होगया है ?

राजा—(उर्वशी की ओर देखकर)

(१७) अन्वयः—देव्येति । देव्या दत इति यदि अस्मिन् मे शरीरे व्यापारं व्रजसि, अयि ! प्रथमं त्वया कस्य अनुमते मे हृदयं चोरितम् ?

व्याख्या—देव्या दत इति यदि अस्मिन् मे मम शरीरे देहे व्यापारं आलिङ्गनादिकं व्रजसि गच्छसि, अयि ! प्रथमं पूर्वम् त्वया कस्य जनस्य अनुमते मे मम हृदयं चितं चोरितं हृतम् । आर्य्यावृत्तम् ।

भावार्थ—देवी ने मुझ को दान किया है, इसी कारण से यदि तुम मुझ से आलिङ्गन करके मेरे शरीर पर अधिकार करने को उद्यत हुई हो तो बताओ ? जब कि मेरा हृदय तुम ने चुराया था, तब तू ने किस की सम्मति ली थी ?

चित्र—सखे ! इस बातका उत्तर नहीं देसकती, अब मेरा निवेदन सुनिए—

राजा—एकाग्र चित हूं

चित्र—वसन्ताणन्तरं उण्णसमए भग्रवं सुज्जो मए उवअरिदव्वो, ता जधा इअं मे पिअसही सग्गस्स ण उक्कण्ठेदि, तहा वअस्सेण कादव्वम। (ड)

विदू—किं वा सग्गे सुमरिदव्वं, ण तत्थ खाईअदि, ण वा पीआदि, केवलं अणिमिसेहिं अच्छीहिं मीणदा अवलम्बीअदि। (ढ)

राजा—वयस्य!—

अनिर्देश्यसुखं स्वर्गं कथं विस्मारयिष्यते।
अनन्यनारीसामान्यो दासश्चायं पुरूरवाः॥ (१८)

चित्र—अणुग्गहिदम्हि। हला उव्वसि! अकादरा भविअ बिसज्जेहि मं। (ण)

(ड) वसन्तानन्तरम् उष्णसमये भगवान् सूर्यो मया उपचरितव्यः, तत यथा इयं मे प्रियसखी स्वर्गस्य न उत्कण्ठते तथा वयस्येन कर्त्तव्यम्।

(ढ) किं वा स्वर्गे स्मर्त्तव्यं न तत्र खाद्यते न वा पीयते, केवलमनिमिषैरक्षिभिर्मीनता अवलम्ब्यते।

(ण) अनुगृहीतास्मि, अयि उर्वशि! अकातरा भूत्वा विसर्जय माम्।

चित्र—वसन्त ऋतुके अन्त में मैं भगवान् सूर्य्यकी उपासना में प्रवृत्त हूंगी, अत एव मेरी प्रिया यह सखी जिससे स्वर्ग में जानेके लिए उत्कंठित न हो, आप वही कीजिए।

विदू—स्वर्ग में स्मरणयोग्य कौनसी वस्तु है? वहां कोई किसी भोजन वा पानको नहीं करसकता? वहां तो केवल मत्स्यकी समान एक- टक आंखों से सबको अवस्थान करते देखजाता है।

राजा—सखे!

(१८) अन्वयः—अनिर्देश्येति। अनिर्देश्यसुखं स्वर्गं कथं विस्मारयिष्यते, अनन्यनारीसामान्यः अयं पुरूरवाः दासः (अस्तीति)।

व्याख्या—अनिर्देश्यं वक्तुमशक्यं सुखं यस्य तत्स्वर्गं कथं केन प्रकारेण विस्मारयिष्यते? अनन्यनारीसामान्योऽसाधारण इत्यर्थः। अयं पुरूरवाः दासः किंकरः (अस्तीति)।

भावार्थ—स्वर्ग के सुख की सीमा नहीं है, वह क्या भुलाया जा सकता है? बात केवल इतनी है, कि पुरूरवा अन्य स्त्री से विमुख होकर इसका ही दास है।

चित्र—अनुगृहीत हुई सखि! उर्वशि! अब मुझे प्रसन्नता से बिदा करो।

उर्व—(चित्रलेखां परिष्वज्य सकरुणम्) सहि ! मा क्खु, मं विसु-मरेसि । (त)

चित्र—(सस्मितम्) वअस्सेण सङ्गदा तुमं मए एव्वं जाचिदव्वा (थ)

(इति राजानं प्रणम्य निष्क्रान्ता)

विदू—दिट्ठिआ मणोरहसिद्धीए वड्ढदु भवं । (द)

राजा—इमां तावत् मनोरथसिद्धिं पश्य ।—

सामन्तमौलिमणिरञ्जितपादपीठ-
मेकातपत्रमवनेर्न तथा प्रभुत्वम् ।
अस्याः सखे ! चरणयोरहमद्य कान्त-
माज्ञाकरत्वमधिगम्य यथा कृतार्थः ॥ (१६)

(त) सखि ! मा खलु मां विस्मरिष्यसि ।

(थ) वयस्येन सङ्गता त्वं मया एवं याचितव्या ।

(द) दिष्ट्या मनोरथसिद्ध्या वर्द्धतां भवान् ।

उर्वशी—(चित्रलेखा को अपनी छाती से लगाकर करुण वचनों से) सखि ! मुझे भूल मत जाना ।

चित्र—(मधुर हास्य से) सखि ! अब तुम अपने सखा से मिल गई हो, अतएव मैं भी तुम से यह प्रार्थना कर सकती हूं कि सखि ! मुझे भूल मत जाना ।

(राजा को प्रणाम कर के चली गई)

विदू०—सौभाग्य से आपकी अभिलाषा अब पूरी हुई, अब आप सब प्रकार से प्रसन्न रहें ।

राजा—मेरी अभिलाषा किस प्रकार से पूरी हुई ?

(१६) अन्वयः—सामन्तेति । सखे ! अहम् अद्य अस्याः चरणयोः कान्तमाज्ञाकरत्वम् अधिगम्य यथाकृतार्थः, तथा सामन्तमौलिमणिरञ्जितपादपीठं अवनेः एकातपत्रं प्रभुत्वं (प्राप्य) न कृतार्थः (अस्मि) ।

व्याख्या—सखे ! मित्र ! अहं पुरुरवाः अद्य अस्याः उर्वश्याः चरणयोः पादयोः कान्तमाज्ञाकरत्वं सेवकत्वम् अधिगम्य प्राप्य यथाकृतार्थः कृतकृत्योऽस्मि, तथा अहं सामन्तमौलिमणिरञ्जितपादपीठम् अधीशकिरीटकिरणरञ्जितचरणतलं अवनेः भुवः एकातपत्रं प्रभुत्वं प्राप्य न कृतार्थोऽस्मि । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥

भावार्थ—आज मैं इस उर्वशी के दोनों चरणों का प्रसन्नता पूर्वक दास बनकर जिस प्रकार कृतार्थ हुआ हूं-वैसा कृतार्थ तो समस्त सामन्त राजाओं के मुकुटमणि की किरणों से रंजित पाद

उर्व—णत्थि मे वाआ विहवो अदो अवरं मन्तिदुं ।(ध)

राजा—(उर्वशीं हस्तेन अवलम्ब्य) अहो ! अविरुद्धसंवर्द्धनेमतदिदानीमीप्सितलम्भानाम् । यतः ।—

पादास्तएव शशिनः सुखयन्ति गात्रं,
बाणास्त एव मदनस्य मनोऽनुकुलाः ।
संरम्भरूक्षमिव सुन्दरि ! यद्यदासीत्,
त्वत्सङ्गमेन मम तत्तदिवानुनीतम् ॥ (२०)

उर्व—अवरद्धाम्हि चिरआरिआ महाराअस्स । (न)

राजा—सुन्दरि ! मा मैवम् ।

(ध) नास्ति मे वाचा विभवोऽतोऽपरं मन्त्रयितुम् ।

(न) अपराद्धास्मि चिरकारिका महाराजस्य ।

पीठ में चरण रखने और पृथ्वी की एक छत्र प्रभुता पाने पर भी नहीं हुआ ।

उर्वशी—आपकी इस बात का उत्तर दूं, मेरे वाक्य में इतनी शक्ति नहीं है ।

राजा—(उर्वशी को हाथ से पकड़कर) यह ही इस समय मेरी अनुकूलता में अभीष्ट लाभ की पराकाष्टा है । क्योंकि—

(२०) अन्वयः—पादा इति । त एव शशिनः पादाः गात्रं सुखयन्ति, त एव मदनस्य बाणाः मनोऽनुकूलाः, सुन्दरि ! यत् यत् संरम्भरूक्षमिव आसीत्, तत् तत् त्वत् सङ्गमेन मम अनुनीतमिव ।

व्याख्या—त एव शशः कलङ्कोऽस्यास्तीति शशीः तस्य शशिनः पादाः किरणाः अङ्गं सुखयन्ति, त एव मदनस्य कामस्य बाणाः मनोऽनुकूलाः सम्भूताः । सुन्दरि ! मनोज्ञे ! यत् यत् वस्तु पूर्वं संरम्भरूक्षमिव रोषदारुणमिव आसीत्, तत् तत् त्वत्सङ्गमेन मिलापेन मम अनुनीतमिवेति जातम् । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

भावार्थ—इस समय चन्द्रमा की किरणें मेरे अंगको आनन्द दे रही है, और काम बाण भी अब मेरे अभिप्रायानुकूल है, हे सुन्दरि ! जब तुम नहीं थीं तब जो जो पदार्थ कुपित की समान मुझको रूखे लगते थे, तुम्हारे आने में इस समय वे सब उपस्थित होकर मुझे आनन्द देरहे हैं ।

उर्वशी—मैं विलम्ब करके महाराज के निकट उपस्थि हुई हूं ।

राजा—सुन्दरि ! ऐसे नहीं कहो ।

यदेवोपनतं दुःखं सुखं तद्धि रसान्तरम्।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः॥ (२१)

विदू—भोदि! सेविदा पदोसरमणीआ चन्दवादा, ता समओ क्खु दे गेहप्पवेसस्स। (प)

राजा—तेन हि सख्या मार्गमादेशय।

विदू—इदो इदो भोदी। (फ)

(इति परिक्रामति)

राजा—सुन्दरी! इयमिदानीं मे प्रार्थना।

उर्व—कीरिसी सा? (ब)

राजा—अनधिगतमनोरथस्य पूर्वं
शतगुणितेव गता मम त्रियामा।

(प) भवति! सेविताः प्रदोषरमणीयाश्चन्द्रपादाः, तत् समयः खलु ते गृहप्रवेशस्य।

(फ) इतइतो भवती।

(ब) कीदृशी सा?

---

(२१) अन्वयः—यदेवेति। यदेवोपनतं दुःखं तत् हि रसान्तरं सुखम्, विशेषतः हि तरुच्छाया तप्तस्य निर्वाणाय (अस्ति)।

व्याख्या—यदेव सुखं दुःखात्पीडोत्तरमुपनतं प्राप्तं तद्रसवत्तरं स्वादुतरं भवति, हि यतः तरुच्छाया निर्वाणाय सुखाय तप्तस्य विशेषतोऽतिसुखायेत्यर्थः। रोगमुक्तो हि उपशमसुखमनुभवति चिरमरोगी कथं तदवगच्छति? अनुष्टुप् छन्दः।

भावार्थ—जो जो वस्तु उपस्थित होकर दुःख देती है, वही फिर परिणाम में दूसरे रस में परिणत होकर सुख देती हैं। देखो वृक्षों की छाया धूपमें थके हुए पुरुष के लिये बहुत ही प्रसन्नता का कारण होती हैं।

विदू०—कल्याणि! प्रदोष (सायं) कालीन चन्द्रमा की मनोहर किरणों को भोगा जाचुका है अब आपके गृह प्रवेश का समय आगया है।

राजा—तो अब अपनी सखी को (गृह प्रवेश) का मार्ग बताओ।

विदू०—इधर आओ, इधर आओ।

राजा—अयि सुन्दरि! मेरी अब एक प्रार्थना है।

उर्वशी—वह अब क्या है?

यदि तु तव समागमे तथैव
प्रसरति सुभ्रु ! ततः कृती भवेयम् ॥ (२२)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति तृतीयोऽङ्कः ।

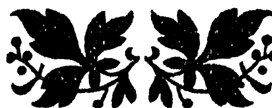
राजा—(२२) **अन्वयः**—अनधिगतेति । हे सुभ्रु ! पूर्वं अनधिगतमनोरथस्य मम त्रियामा शतगुणितेवगता, यदि तु तव समागमे तथैव प्रसरति तथा कृती भवेयम ।

व्याख्या—हे सुभ्रु ! पूर्वम् अनधिगतमनोरथस्य अप्राप्ताभिलाषस्य मम राज्ञः त्रियामा रात्रिः शतगुणितेव त्रिंशतप्रहरसंयुतेव गता अतीता, यदि तव उर्वश्याः समागमे मिलापे तथैव पूर्ववत् प्रसरति गच्छति, ततः परम् कृती कृतार्थो भवेयम् पुष्पिताग्रा वृत्तम् ।

भावार्थ—**हे सुन्दरि ! जब मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई थी, तब रात सौ गुना बड़ी जान पड़ती थी, अब तुम्हारे पाने पर यदि वह रात उसी प्रकार बड़ी होजावे, तब ही मैं कृतार्थ होजाऊंगा ।**

(सब जाते हैं)

इति तृतीयोऽङ्कःसमाप्तः ॥



चतुर्थोऽङ्कः ।

(नेपथ्ये सहजन्या-चित्रलेखयोः प्रावेशिकी आक्षिप्तिका)

पिअसहि विओअ-विमणा सहिसहिआ वाउला समुल्लवइ ।
सूरकर-फंस्स-विअसिअ-तामरसे सरवरुस्सङ्गे ॥ (क) (१)

(ततः प्रविशति सहजन्या चित्रलेखा च)

चित्र— (प्रवेशानन्तरे द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य)

सहअरि-दुक्खालिद्धअं सरवरअम्मि सिणिअम ।
वाहो वग्गिअ-णअणअं तम्मइ हंसीजुअलअम ॥ (ख) (२)

(क) प्रियसखी-वियोग-विमनाः सखीसहिता व्याकुला समुल्लपति ।
सूर्य्यकरस्पर्शविकसिततामरसे सरोवरोत्सङ्गे (१)

(ख) सहचरीदुःखालीढ़कं सरोवरे स्निग्धकम् ।
वाष्पावलगितनयनकं ताम्यति हंसीयुगलकम् (२)

(नेपथ्य में सहजन्या और चित्रलेखा का प्रवेशसूचक गीत)

(१) **अन्वयः**—प्रियसखीति । सूर्य्यकरस्पर्शविकसिततामरसे सरोवरोत्सङ्गे प्रियसखीवियोगविमनाः सखीसहिता व्याकुला समुल्लपति ।

व्याख्या—सूर्य्यकरस्पर्शविकसिततामरसे नवोदितभानुकिरणस्पर्शविकसिततामरसे (पुष्पविशेषे) सरोवरोत्सङ्गे प्रियसखीवियोगविमनाः प्रियसखीविरहदुःखमानसाः हंसी सखिसहिता समुल्लपति विरौति ।

भावार्थ—**चित्रलेखा सहजन्या नाम्नी सखी के साथ प्रियसखी उर्वशी के विरह में उत्कण्ठित चित्त होकर जिस सरोवर में सूर्य्य की किरणों के स्पर्श से पद्मिनी (कमलिनी) खिलकर विराजमान है उसी के तट पर बैठकर विलाप करती है ।**

(सहजन्या और चित्रलेखा का प्रवेश)

चित्र०—**प्रवेशान्तर द्विपदिका नामक गीत का गायन करते २** (चारों ओर देखकर) ।

(२) **अन्वयः**—सहचरीति । सरोवरे सहचरी दुःखालीढकं वाष्पावलगित् नयनकं स्निग्धकम् हंसीयुगलकं ताम्यति ।

व्याख्या—सरोवरे सहचरी दुःखालीढकं प्रियसखीदुःखसंयुतं वाष्पावलगित् नयनकं अश्रुजलपूरितनेत्रं स्निग्धकं यत् दृष्ट्वा नयनं स्निग्धं भवति तदेवस्निग्धकं हंसीयुगलकं ताम्यति ग्लानिंभजते ।

सह—(सखेदम्) सहि चित्तलेहे ! मिलाश्रमाणसश्रवत्तकसणा दे मुहच्छाश्रा हिश्रश्रस्स असुत्थदं सूचेदि; ता कहेहि मे अणिव्वि-दिकारणं, जेण दे समाणदुक्खा होमि । (ग)

चित्र—सहि ! अच्छरा-वावारपज्जाएण तत्थभश्रदो सुज्जस्स उअत्थाणे वट्टन्ती, पिअसहीए विणा वस्सन्तसमश्रो आअदो, त्ति बलिअं उक्कण्ठिदा म्हि (घ)

सह—सहि ! जाणामि वो अण्णोण्णगदं पेम्मं; तदो तदो ? (ङ)

चित्र—तदो इमेसुं दिअसेसुं को णवो वुत्तन्तो वट्टदि त्ति पणिधाणट्ठिदाए मए अच्चाहिदं उअलद्धं । (च)

(ग) सखि चित्रलेखे ! म्लायमानच्छतपत्रकृष्णा ते मुखच्छाया हृदयस्य असुस्थतां सूचयति; तत् कथय मे अनिर्वृतिकारणं येन ते समानदुःखा भवामि ।

(घ) सखि ! अप्सरोव्यापारपर्य्यायेण तत्रभवतः सूर्य्यस्य उपस्थाने वर्त्तमाना, प्रियसख्या विना वर्षतुसमय आगत इति, बलवदुत्कण्ठितास्मि

(ङ) सखि ! जनामि युवयोरन्योन्यगतं प्रेम; ततस्ततः ?

(च) तत एषु दिवसेषु को नवो वृत्तान्तो वर्त्तते । इति प्रणिधानस्थितया मया अत्याहितमुपलब्धम् ।

भावार्थ—सखी के दुःख के बोझ से दबकर स्नेहपरायण दोनों हंसी वाष्पाकुल नेत्रों द्वारा सरोवर के तट पर बैठी हुई विलाप करती है ।

सहजन्या—(खेद के साथ) सखि ! चित्रलेखे ! तुम्हारे मुख की कान्ति मलीन शतदलपत्र के समान देखकर प्रतीत होता है कि तुम्हारा चित्त स्वस्थ नहीं है, (अतएव तुम अपने चित्त के स्वस्थ न होने का कारण बताओ) क्योंकि मैं भी तुम्हारे दुःख में समान दुःखिनी प्रियसखी हूं ।

चित्र—सखि ! भगवान् सूर्य्यदेव की उपासना करना अप्सराओं का कर्त्तव्य है, इसी क्रमानुसार मैं अपने काम में लगी हुई हूं, वर्षा काल भी अब उपस्थित है, अतएव मैं प्रियसखी उर्वशी के विरह में अत्यन्त ही उत्कण्ठित हो रही हूं ।

सहज०—मैं दोनों के परस्पर प्रेम को जानती हूं; फिर ।

चित्र—फिर इतने दिनों में क्या घटना हुई ? इस विषय में मुझे ध्यान योग के द्वारा जो कुछ प्रतीत हुआ है उस से बड़ा ही भय हो गया है ।

सह—सहि कीरिसं तं ? (छ)

चित्र—(सकरुणम्) उव्वसी किल तं राएसिं लच्छीसणाहं गएाहिअ अमच्चेसु निवेसिदरज्जधुरं केलाससिहरुद्देसे गन्धमादणवणं विहरिदुं गदा। (ज)

सह—(सश्लाघम्) सहि ! सो सम्भोओ, जो तारिसेसु प्पदेसेसु तदो तदो ? (झ)

चित्र—तदो तहिं मन्दाइणीतीरे सिकदापव्वदेहिं कीलमाणा उदअवती णाम विज्जाहरदारिआ तेण राएसिणा खणं णिज्झाइदेत्ति कदुअ कुबिदा मे पिअसही उव्वसी। (ञ)

सह—असहणा क्खु सा; दुरारूढो अ से प्पणओ; ता भविदव्वदा एत्थ बलवदी; तदो तदो ? (ट)

(छ) सखि, कीदृशं तम् ?

(ज) उर्वशी किल तं राजर्षिं लक्ष्मीसनाथं गृहीत्वा अमात्येषु निवेशितराज्यधुरं कैलासशिखरोद्देशे गन्धमादनवनं विहर्त्तुं गता।

(झ) सखि ! स सम्भोगः यः तादृशेषु प्रदेशेषु; ततस्ततः ?

(ञ) ततस्तत्र मन्दाकिनीतीरे सिकतापर्वतैः क्रीडन्ती उदकवती नाम विद्याधरदारिका तेन राजर्षिणा क्षणं निध्यातेति कृत्वा कुपिता मे प्रियसखी उर्वशी।

(ट) असहना खलु सा; दूरारूढश्चास्याः प्रणयः; तस्माद्भवितव्यता अत्र बलवती। ततस्ततः ?

सह०—सखि ! कैसे ?

चित्र०—(करुणाभाव से) प्यारी सखी उर्वशी शोभामात्र ही अकेली राजर्षि को साथ लेकर कैलाश शिखर के प्रान्तवाले गन्ध मादन वन में विहार करने को चली गई है, महाराज राज्य का भार मंत्रियों के हस्तगत कर गए हैं।

सह०—(बड़ाई से) सखि! संभोग यदि ऐसे स्थानों में हो तो वह सच्चा संभोग है, इस के पीछे—

चित्र०—इसके पीछे सुनो। 'वहां मन्दाकिनी के किनारे वालुका द्वारा क्रीड़ापर्वत रचकर उदकवती नामवाली एक विद्याधर की बालिका खेल रही थी। उसी समय राजर्षि ने उस बालिका की ओर प्रेमसे से दृष्टि डाली थी, इसलिए प्रिय सखी उर्वशी राजा पर कुपित हुई है।

सह०—उर्वशी यह बात सहन नहीं करसकी ? तो देखती हूं उनका

चित्र—तदो सा भत्तुणो अणुणअं अप्पलिबज्जमाणा गुरुसाबसंमूढ़हिअआ बिसुमारिद-देवदाणिअमा कण्णआजणपरिहरणिज्जं कुमालबणं पबिट्ठा; पवेसाणन्तरं अ काणणोबन्तबत्तिलदाभावेण परिणदं से रूबम् (ठ)

सह—(सशोकम्) सब्बधा णत्थि बिहिणो अलङ्घणीअं णाम, जेण तारिसस्स रूबस्स अण्णारिसो ज्जेब परिणामो संबुत्तो; तदो तदो ? (ड)

चित्र—तदो सो बि तस्सिं ज्जेब काणणे पिअअहीं अण्णेसअन्तो उम्मत्तीभूदो इदो उब्बसी तदो उब्बसी त्ति कदुअ अहोरत्ताइं अदिबाहेदि (नभसोऽवलोक्य) एदिणा उण णिब्बिदाणं पि उक्कण्ठाआरिणा मोहोदएण अप्पदीआरो भबिस्सदि त्ति तक्केमि (ढ)

(ठ) ततः सा भर्तुरनुनयमप्रतिपद्यमाना गुरुशापसंमूढ़हृदया विस्मृतदेवतानियमा कन्यकाजनपरिहरणीयं कुमारवनं प्रविष्टा; प्रवेशानन्तरञ्च काननोपान्तवर्त्तिलताभावेन परिणतमस्या रूपम् ।

(ड) सर्वथा नास्ति विधेरलङ्घनीयं नाम, येन तादृशस्य रूपस्य अन्यादृश एव परिणामः संवृत्तः; ततस्ततः ?

(ढ) ततः सोऽपि तस्मिन्नेव कनाने प्रियसखीमन्विष्यन् उन्मत्तीभूतः; इत उर्वशी तत उर्वशी इति कृत्वा अहोरात्रण्यतिवाहयति । एतेन पुनर्निर्वृतानामपि उत्कण्ठाकारिणा मेघोदयेन अप्रतीकारो भविष्यतीति तर्कयामि ।

प्रेम बहुत ही बढ़ गया है, होनहार ही बलवान है, फिर ? फिर ?

चित्र०—फिर प्यारी सखी ने प्यारे की अनुनय प्रार्थना न मान कर नाट्याचार्य्य भरतमुनि के पूर्वदत्त शाप से विमुग्ध हो कुमारदेव का नियम भूल नारीगणों को छोड़कर कुमारवन में प्रवेश किया था । अन्त को कुमारवन के प्रान्तभाग में उसका रूप लावण्य लतिकारूप में परिणत हो गया है ।

सह०—प्रारब्ध के विपरीत कौन जा सकता है ? क्योंकि ऐसे रूप का भी यह परिणाम हुआ ? फिर ? फिर ?

चित्र०—राजर्षि ने भी उस वन में प्रियसखी को ढूंढते ढूंढते उन्मत्त होकर 'यहां उर्वशी है' 'यहां उर्वशी है' ऐसे कहते २ दिन रात बिताया है । (आकाश की ओर देखकर) आह ! फिर मेघ उदय हुआ है, इस मेघ को देखकर सुखी मनुष्य की उत्कण्ठा

(अत्रान्तरे जम्भलिका)

सहअरि दुक्खालिद्धअं सरवरअम्हि सिणिद्धअम ।

अविरल-बाहजलोएणअं तम्मई हंसीजुअलअम् ॥ (ण) (३)

सह—सहि ! अत्थि को वि समागमोबाओ ? (त)

चित्र—गौरीचरण-राअसम्भवं सङ्गममणिं बज्जिअ कुदो से समागमोबाओ ? (थ)

सह—ण ईदिसा आकिदिबिसेसा चिरं दुक्खाभाइणो होन्ति, ता अबस्सं को बि अणुग्गहणिमित्तभूओ समागमोबाओ भविस्सदित्ति तक्केमि । (प्राचीं दिशं विलोक्य) ता एहि उदआहिबस्स भअवदो सुज्जस्स उबत्थाणं करेम्ह । (द)

(ण) सहचरी-दुखालीढ़कं सरोवरे स्निग्धकम् ।

अविरलवाष्पजलोष्णकं ताम्यति हंसीयुगलकम् ॥

(त) सखि ! अस्ति कोऽपि समागमोपायः ?

(थ) गौरीचरणरागसम्भवं संङ्गममणिं वर्जयित्वा कुतोऽस्या समागमोपायः ?

(द) नेदृशा आकृतिविशेषाश्चिरं दुःखभागिनो भवन्ति; तदवश्यं कोऽपि अनुग्रहनिमित्तभूतः समागमोपायो भविष्यतीति तर्कयामि; तदेहि उदयाधिपस्य भगवतः सूर्य्यस्य उपस्थानं कुर्वः ।

और भी बढ़ जाती है । अब मेरे मत में यह अप्रतीकार का ही स्वरूप है ।

(जम्भलिका नाम द्विपादिका गीति का गान)

(३) अन्वयः—सहचरीति । (देखो चतुर्थाङ्क श्लोक संख्या २)

सह—सखि ? इस समय मिलने का कोई उपाय भी है ।

चित्र—गौरी के चरण कमलों में अनुराग वश जो संगममणि प्राप्त हुई थी, जब उसको छोड़ दिया तब फिर प्रिय सखी के मिलने का अन्य उपाय और क्या होगा ?

सह—जिन की ऐसी आकृति है वे कदापि दुःख नहीं भोगते, निश्चय से ही जाना जाता है कि कोई अनुग्रह मूलक ही उपाय होगा । अतएव आओ उदयाचलाधिपति भगवान् सूर्य्य की उपासना करें ।

(१) जम्भलिका गीतिविशेषः, तथा चाह भरतः—

'उद्ग्राहोदिःसकृद्द्वैकखण्डो द्विशकुलोऽथवा ।

यत्र ध्रुवो द्विराभोगो ध्रुवे मुक्तिः स जम्भकः ॥

(अत्रान्तरे खण्डधारा)

चिन्तादुम्मिअमाणसिआ सहअरि-दंसणलालसिआ।
विअसिअ-कमल-मणोहरए विहरइ हंसी सरवरए॥ (ध) (४)

(इति निष्क्रान्ते । प्रवेशकः)

(नेपथ्ये पुरूरवसः प्रावेशिकी आक्षिप्तिका)

गहणं गइन्दणाहो पिअ-विरहुम्माअ-पअलिअ-विआरो।
विसइ तरु-कुसुम-किसलअ-भूसिअ-णिअदेह-पब्भारो॥ (न)(५)

(ध) चिन्तादूनमानसिका सहचरीदर्शनलालसिका।
विकसितकमलमनोहरे विहरति हंसी सरोवरे॥ (४)

(न) गहनं गजेन्द्रनाथः प्रियाविरहोन्मादप्रकटितविकारः।
विशति तरुकुसुमकिसलयभूषितनिजदेहप्राग्भारः॥ (५)

(खण्डधारा[२] नामक द्विपदिका गीत का गान)

(४) **अन्वय**—चिन्तेति । विकासितकमलमनोहरे सरोवरे चिन्तादून-मानसिका सहचरीदर्शनलालसिका हंसी विहरति ।

व्याख्या—विकसितानि कमलानि मनोहराणि यत्र तस्मिन् सरोवरे चिन्तादून-मानसिका चिन्तादुखितचेताः सहचरीदर्शनलालसिका सखीदर्शनसोत्कण्ठा हंसी मराली विहरति विचरति ।

भावार्थ—**चिन्तावश व्याकुल चित्तवाली हंसिनी सहचरी के मिलने की आशा से खिले हुए कमलदलों से शोभायमान सरोवर के किनारे पर विचर रही है।**

(दोनों आते हैं । इति प्रवेशिक)

(नेपथ्य में पुरूरवा का प्रवेशसूचक गीत)

(५) **अन्वय—गहनमिति** । गजेन्द्रनाथः प्रियाविरहोन्मादप्रकाटितविकारः तरुकुसुमकिसलयभूषितनिजदेहप्राग्भारः गहनं (वनम्) विशति ।

व्याख्या—गजेन्द्रनाथः गजाधिपः प्रियायाः विरहेण वियोगेन यः उन्मादः मत्तता तेन प्रकटितः सुस्पष्टं प्रकाशितः विकारो मनसः यस्य सः, तरुभिः वृक्षैः कुसुमैः पुष्पैः किसलयैश्च भूषितः निजदेहस्य प्राग्भारः पृष्टदेशो येन सः, गहनं वनम् प्रविशति याति ।

भावार्थ – **गजराज प्रियतमा के विरह में उन्मत्त हो वृक्ष के पल्लव**

२ खण्डधारालक्षणं यथाह भरतः—

'चतुर्दशकलायुक्तैश्चतुर्भिश्चरणैरिह ।
खण्डाख्या द्विपदी गीतिः खण्डधारापि सा भवेत्॥

(ततः प्रविशति आकाशबद्धलक्ष्यः सोन्मादो राजा)

राजा—(सक्रोधम्) आ दुरात्मन् रक्षः ! तिष्ठ तिष्ठ, मम प्रियतमाम् आदाय क्व गच्छसि ? (विलोक्य) हन्त ! कथं शैलशिखराद्‌गगनमुत्पत्य बाणैर्मामभिवर्षति ?

(इति लोष्टं गृहीत्वा हन्तुं धावन्, अनन्तरं द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य)

हिअआहिअ-पिअदुक्खओ सरवरए धुदपक्खओ ।
बाहो-बग्गिअ-णअणओ तम्मइ हंसजुआणओ ॥ (५) (६)

(विभाव्य सकरुणम्) कथम् ?—

---

(५) हृदयाहितप्रियादुःखकः सरोवरे धुतपक्षकः ।
वाष्पवल्गितनयनकस्ताम्यति हंसयुवकः ॥

और फूलों से अपने पर्वत समान शरीर को विभूषित कर के गहन वन में प्रवेश करता है, (अर्थात् उर्वशी के ढूंढने के लिए कामार्त्त राजा गहन वन में जाता है)

(आकाश की ओर देखते २ कामावस्था में राजा का प्रवेश)

राजा—(सरोष) ओः ! दुरात्मन् राक्षसाधम ! ठहर ! ठहर ! मेरी प्रियतमा को लेकर तूँ कहां जाता है ? (चारों ओर देख कर) क्या पर्वत के शिखर आकाश मार्ग में उठ कर मेरे ऊपर बाणों की वर्षा करता है ।

यह कह कर लोहे के शस्त्र को हाथ में लेकर दौड़ता हुआ द्विपदिका गीतगान करता है (चारों ओर देख कर)।

(६) अन्वयः—हृदयेति । हृदयाहितप्रियादुःखकः धुतपक्षकः वाष्पवल्गितनयनकः हंसयुवकः सरोवरे ताम्यति ।

व्याख्या - हृदये मनसि आहितं सन्निधापितं प्रियायाः उर्वश्याः दुखं विपत्तिरूपं येन सः, धुतपक्षकः संचालितपक्षः वाष्पवल्गितनयनकः व्याप्तत्रासितनेत्रः हंसयुवकः युवकमरालः सरोवरे ताम्यति दुःखीभवति ।

भावार्थ—जिस के चित्त में प्रियतमा के विरह का दुःख स्थित है वह हंस-युवक सरोवर के तटपर बैठ आंखों के अश्रुपात से सिंचित होकर दुःख प्रकाश करता है ।

(चिन्ता कर के करुणा भाव से) यह क्या है ?

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं, न दृप्तनिशाचरः
सुरधनुरिदं दूराकृष्टं, न नाम शरासनम्।
अयमपि पटुर्धारासारो, न बाणपरम्परा,
कनकनिकषस्निग्धो विद्युत्, प्रिया मम नोर्वशी ॥ (७)

(इति मूर्च्छितः पतति । पुनर्द्विपदिकया उत्थाय निश्वस्य)

मइ जाणिअं, मिअलोअणि णिसिअरु कोवि हरइ।
जाव णु णवतलि-सामल-धाराहरु बरिसेइ ॥ (फ) (८)

(इति सकरुणं विचिन्त्य) **तत् खलु क नु गता स्यात्? कापि—**

(फ) मया ज्ञातं, मृगलोचनां निशाचरः कोऽपि हरति।
यावत् नु नवतडिच्छ्यामलो धाराधरो वर्षति ॥

---

(७) **अन्वयः**—नवेति । अयं नवजलधरः सन्नद्धः दृप्तनिशाचरः न, इदं दूराकृष्टं सुरधनुः, शरासनं नाम न, अयमपि पटुर्धारासारः बाणपरम्परा न, कनकनिकषस्निग्धो विद्युत, मम प्रिया उर्वशी न।

व्याख्या—अयं नवजलधरः मेघः सन्नद्धः उदितः दृप्तनिशाचरः न, इदं दूराकृष्टं सुविस्तृतं सुरधनुः शारासनं साधारणं धनुः न, अयमपि पटुः प्रबलः धाराणां वृष्टिः अभ्राणामासारः सम्पातः बाणपरम्परा न, कनकस्य सुवर्णस्य निकषः गुणपरीक्षास्थानं यः स्निग्धो विद्युत् मम प्रिया उर्वशी न,। हरिणी वृत्तम्।

भावार्थ—**यह गर्वित निशाचर नहीं (वरन) नवीन मेघ घनीभूत होगया है। यह शरासन नहीं (वरन) बहुत दूर तक फैला हुआ इन्द्र-धनुष है। यह बाण नहीं (वरन) घनीभूतधाराओं का गिरना है और यह प्यारी उर्वशी नहीं (वरन) यह तो कनकोज्ज्वल दामिनी है।**

(राजा मूर्च्छित होकर गिरता है, फिर द्विपदिकागीति के द्वारा सांस लेताहुआ उठताहै)

(८) **अन्वय**—मयेति (इस श्लोक के अन्वय सीधे हैं)

व्याख्या—मया पुरूरवसा ज्ञातम् अवगतम्, कोऽपि कश्चिज्जनः (निशाचरः) निशायां चरतीतिविग्रहे राक्षसः मम लोचनां हरिणनयनां हरति, यावत् नु इति प्रश्ने? नवताडितच्छ्यामलोऽभिनवविद्युच्छटयामलः धाराधरो मेघः वर्षति वर्षां कुरुते।

भावार्थ—**मैंने समझाथा कि-कोई निशाचर मृगनयनी को हर कर लिये जा रहा है, किन्तु वैसा नहीं है। यह तो अभिनवविद्युल्लता के सहित जलधारा की वर्षा होती है।**

(करुणभाव से चिन्ता करके) **तब फिर उर्वशी कहां चली गई?**

तिष्ठेत् कोपवशात् प्रभावपिहिता ? दीर्घं न सा कुप्यति;
स्वर्गायोत्पतिता भवेत् ? मयि पुनर्भावार्द्रमस्या मनः।
(सरोषम्)
तां हर्त्तुं विबुधद्विषोऽपि हि न मे शक्ताः पुरोवर्त्तिनीं
सा चात्यन्तमगोचरं नयनयोर्यातेति कोऽयं विधिः॥ (९)

(द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य निश्वस्य सास्रम्) अहो ! अपरावृत्तभागधेयानां दुःखं दुःखानुबद्धमेव। कुतः ?—

अयमेकपदे तया वियोगः प्रियया चोपनतः सुदुःसहो मे।
नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यञ्च निरातपत्वरम्यैः॥ (१०)

---

(९) अन्वयः— तिष्ठेदिति। कोपवशात् प्रभावपिहिता ? सा दीर्घं कुप्यति न तिष्ठेत् ? स्वर्गायोत्पतिता भवेत् ? मयि अस्याः पुनर्भावार्द्रं मनः, हि मे पुरोवर्त्तिनीं तां विबुधद्विषः अपि हर्त्तुं न शक्ताः, सा च नयनयोः अत्यन्तमगोचरं यातेति अयं कः विधिः ?

व्याख्या—कोपवशात् क्रोधवशात् प्रभावेण तिरस्कारिणी विद्या पिहिता आच्छादिता ? सा उर्वशी दीर्घं कुप्यति, अतिकुपिता सति न कुत्रापि तिष्ठेत् ? स्वार्गाय उत्पतिता भवेत् ? मयि पुनर् अस्याः उर्वश्याः भावेन अनुरागेण आर्द्रं स्निग्धं मनः, मे पुरूरवसः पुरोवर्त्तिनीं तां उर्वशीं विबुधद्विषः दानवा अपि हर्त्तुं न शक्ताः असमर्था एव सन्ति। सा उर्वशी नयनयोः लोचनयोः अत्यन्तमगोचरं अदृश्यं यातेति, अयं कः विधिः ? शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

भावार्थ—क्या वह रोषवश अपने प्रभाव से अन्तर्हित (गायब) होगई ? नहीं, वह बहुत देर तक क्रोधित होकर नहीं रहसकी तो क्या स्वर्ग में चली गई ? यह भी असंभव है। क्योंकि मुझ में उस का चित आसक्त है (वह क्रोध पूर्वक स्वर्ग में जाकर भी अधिक काल नहीं ठहर सकती) (सरोष) यदि वह मेरे सामने भी रहती तो कोई असुरराज भी उस को हरने में समर्थ नहीं होता। तब फिर जो एक बार ही वह मेरी आंखों की ओट हो गई यह कैसी बात है ?

(उसी समय द्विपदिका गीति से चारों ओर देख सांस लेकर) अहो ! जिनको सौभाग्य प्राप्त होने की आशा नहीं है उन को दुःख ही दुःख होते हैं। क्योंकिः—

(१०) अन्वयः—अयमिति। एकपदे तया प्रियया अयं सुदुःसहः मे वियोगः उपनतः, नववारिधरोदयात् अहोभिः निरातपत्वरम्यैः भवितव्यम्।

(अनन्तरे चर्चरी)

जलहर ! संहर एह कोवं मइ आणत्तओ,
अविरल-धारासाराक्कन्त-दिसामुहओ ।
अए! मइ पुहवि भमन्त जइ पिअं पेक्खिहिमि,
तआ जं जं करीहिसि, तं तं सहीहिमि ॥ (ब) (११)

(चर्चरिकया विचिन्त्य)

वृथा खलु मया मनसः सन्तापवृद्धिरुपेद्यते । यदा मुनयो-ऽप्येवं व्याहरन्ति 'राजा कालस्य कारणम्' इति । तत् किमहमेनं जलधरसमयं न प्रत्यादिशामि ?

(ब) जलधर ! संहर अत्र कोपं मया आज्ञप्तक,
अविरलधारासाराक्रान्तदिङ्मुखः ।
अये ! अहं पृथिवीं भ्रमन् यदि प्रियां प्रेक्षिष्ये,
तदा यद्यत् करिष्यसि तत्तत् सहिष्ये ॥

व्याख्या—एकपदे सपदि तया प्रियया उर्वश्या अयं सुदुःसहः कठिनः मे वियोगः विरहः उपनतः उपस्थितः, नववारिधरोदयात् नवीनमेघोदयात् अहोभिः दिवसैः निरात-पत्वरम्यैः रौद्राभावमनोहरैश्च भवितव्यम् ।

भावार्थ—एक तो मुझे प्यारी उर्वशी के विरह का दुःसह दुःख उपस्थित है, उस पर भी फिर नवजलधर (मेघ) के होने में धूप का अभाव होने के कारण सुखदायक दिन उपस्थित हुआ है ।

(तदनन्तर चर्चरी)

(११) अन्वयः—जलधरेति । (अन्वयादि स्पष्ट हैं)

भावार्थ—हे वारिधर ! (मेघ) मैं आज्ञा देता हूं, कि तुम रोष संवरण करो, लगातार जलधारा को गिराकर तुमने चारों ओर ही आक्रमण किया है । अरे ! मैं पृथ्वी पर पर्यटन (भ्रमण) करता करता जब प्रियतमा का दर्शन पालूं- तब तुम जो करोगे-वही मैं सह लूंगा ।

(फिर चर्चरी गीति और चिन्ता करता है)

मैं केवल वृथा ही अपने चित को सन्तोष बढ़ा रहा हूं, क्योंकि

(१) चर्चरीति गीतिविशेषसंज्ञा, तदुक्तं यथाः—
'द्रुतमध्यलयं समाश्रिता पठति प्रेमभरान्नटी यदि ।
प्रतिमएठक-रासकेन वा द्रुतमध्या प्रथमा हि चर्चरी ॥

(विहस्य उत्थाय, "यदा मुनयोऽप्येवं व्याहरन्ति" इति पुनः पठित्वा)

भवतु प्रत्यादिशामि ।

(अनन्तरे चर्चरी)

गन्धुम्माइअ महुअर-गीएहिं,
बज्जन्तेहिं परहुअतूरेहिं ।
पसरिअ-पवणुव्वेल्लिअ-पल्लव-णिअरू
सुललिअ-बिबिहपआरेहिंणच्चइ कप्पतरू (भ) (१२)

(तेन नर्त्तित्वा)

अथवा न प्रत्यादिशामि; यत् प्रावृषेण्यैरेव चिह्नैः सम्प्रति मम महाराजोपचारः क्रियते ।

(भ) गन्धोन्मादित-मधुकरगीतैर्वाद्यमानैः परभृततूर्य्यैः ।
प्रसृतपवनोद्वेल्लित-पल्लवनिकरः सुललितविविधप्रकारैः नृत्यति कल्पतरुः ॥

ऋषिगण भी कहते हैं कि राजा ही कालका कारण है, तो फिर मैं क्यों इस वर्षाकाल का तिरस्कार करता हूं ?

(हंसते हुए उठकर "जब ऋषिगण भी यह बात कहते हैं" ऐसा फिर कह कर)

जो हो तिरस्कार करता हूं ।

(चर्चरिकानाम गीति)

(१२) अन्वयः—गन्धेति । सुललितविविधप्रकारैः गन्धोनोन्मादितमधु-करगीतैः परभृततूर्य्यैः वाद्यमानैः प्रसृतपवनोद्वेल्लित-पल्लवनिकरःकल्पतरुः नृत्यति ।

व्याख्या—सुललितविविधप्रकारैः अनेकविधैरित्यर्थः, गन्धोनोन्मादित-मधुकरगीतैः सुगन्धिगन्धितोन्मत्तभ्रमरगानैः, वाद्यमानैः शब्दायमाणैः, परेणाभ्रियन्त इति परभृताः कोकिलास्त एव तूर्य्याणि वाद्यविशेषाणि तैः, प्रसृतेन प्रकर्षेण चलितेन वायुनोद्वेल्लन-शीलश्चञ्चलः पल्लवनिकरः किसलयसमूहो यस्य सः, कल्पतरुः कल्पवृक्षः नृत्यति ।

भावार्थ—कल्पतरु नाना प्रकार से हिलते हैं, उनकी फूल सुगन्धि से कोइलें उन्मत होकर गूंज रही हैं, मानों कोइलों की ध्वनि वाद्य-विशेष होकर चित्ताकर्षण कर रही हैं । पवन-वेग से जो पत्ते हिल रहे हैं मानो वे हाथ उठाकर सत्कार पूर्वक प्रणाम कर रहे हैं ।

(नृत्य करते करते)

अथवा अब प्रत्याख्यान नहीं करूंगा । वर्षाकालोत्पन्न चिन्हों से राजा के सब उपयुक्त उपचार सम्पादित होते हैं ।

(विहस्य पुनर्गन्धुम्माइश्च इति पठित्वा)

कथमिति ?—

विद्युल्लेखा-कनकरुचिरश्री वितानं ममाभ्रं
व्याधूयन्ते निचुलतरुभिर्मञ्जरीचामराणि ।
धर्मच्छेदात् पटुतरगिरो वन्दिनो नीलकण्ठा
धारासारोपनयनपरा नैगमाश्चाम्बुवाहाः ॥ (१३)

(पुनश्चर्चरी)

भवतु; किं परिच्छदश्लाघया । यावदस्मिन् कानने प्रियां प्रनष्टा-मन्वेषयामि ।

(हंसकर पूर्वोक्त चर्चरी गान-पूर्वक)

यह क्या ?—

(१३) अन्वयः—विद्युल्लेखेति । विद्युल्लेखा-कनकरुचिरश्रीःअभ्रं मम वितानम्, निचुलतरुभिर्मञ्जरीचामराणि व्याधूयन्ते, धर्मच्छेदात् पटुतरगिरः नीलकण्ठाः वन्दिनः, धारासरोपनयनपरा अम्बुवाहाः नैगमाः ।

व्याख्या—विद्युल्लेखया कनकस्य सुवर्णा इव (वादिति) रुचिरा मनोज्ञा श्रीः यस्य तत् अभ्रं मेघः मम राज्ञः वितानं चन्द्रातपः, निचुलतरुभिः वेतसवृक्षैः मंजरी-रुपचामराणि व्याधूयन्ते, धर्मच्छेदात् ग्रीष्मातपात् पटुतरगिरः सुस्पष्टभाषिणो नीलकण्ठाः मयुराः मम राज्ञः वन्दिनः स्तुतिपाठकाः (सन्ति) धाराधराणां वृष्टिजलधाराणामुपनयने परा अम्बुवहा मेघा नैगमा वणिजः (सन्ति) । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

भावार्थ—मनके हरनेवाली बिजुली के मित्र मेघ मेरे सुवर्ण-खचित राज्यकीय मुकुट की शोभा को बढाते हुए चन्द्रमा के यश को गारहे हैं, निचुलनामक वृक्ष चामररूप में मेरा सत्कार कर रहे हैं, ग्रीष्मऋतु के होने पर मोरगण स्तुति कर रहे हैं, निरन्तर ये मेघ जलधारा रूपी घन से मेरा बहुत सत्कार तथा कल्याण कर रहे हैं ।

(फिर चर्चरिका नामकी गीति होती है)

जो हो अपने संगियों की बड़ाई (स्तुति) करने की क्या आवश्यकता है । इस वन में छुपीहुई प्रिया को ढूंढूं ।

(पाठस्यान्तरे भिन्नकः)

दइआ-रहिओ अहिअं दुहिओ
बिरहाणुगओ परिमन्थरओ।
गिरिकाणणए कुसुमुज्जलए
गअजूहवई तह भीणगई॥ (म) (१४)

(अनन्तरे द्विपदिकया परिक्रम्य अवलोक्य च, सहर्षम्)

हन्त हन्त! व्यवसितस्य मे संवर्द्धनं वृत्तम्।

आरक्तकोटिभिरियं कुसुमैर्नवकन्दली मलिनगर्भैः।
कोपादन्तर्वाष्पे स्मरयति मां लोचने तस्याः॥ (१५)

(म) दयितारहितोऽधिकं दुःखितो विरहानुगतः परिमन्थरकः।
गिरिकाननके कुसुमोज्ज्वलके गजयूथपतिस्तथा क्षीणगतिः॥

(भिन्नके नामक रागमें गीत होता हैं)

(१४) **अन्वयः**—दयितेति। (इसके अन्वय प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—दयितारहितः प्रियारहितः अधिकं दुखितः विरहानुगतः वियोगयुक्तः परिमन्थरकः, क्षीणा मन्दा गतिः यस्य गजयूथपतिः गजेन्द्रः कुसुमोज्ज्वलके गिरिकाननके शैलवनप्रदेशे (भ्रमति)।

भावार्थ—**गजयूथपति पुष्पराशि से सुशोभित पर्वत के वन प्रदेश में फिर रहा है। परन्तु प्रिया के विरह से अब शोचनीय-दशा को प्राप्त होकर मन्थर (कच्छुआ) की तरह चलरहा है।**

(द्विपदिका गान करते २ घूमना और चारों ओर देख हर्ष से)

अहो! मेरा प्रियतम सम्बन्धी कार्य्य और भी बढ़गया है—

(१५) **अन्वयः**—आरक्तेति। (इस के अन्वय प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—आरक्तेति। इयं नवकन्दली आरक्ता कोटिः अग्रभागो येषां तैस्तथाविधैरेव मलिनगर्भैः मलिनान्तः करणैः कुसुमैः पुष्पैः अन्तर्वाष्पे अन्तर्भष्पे कोपादेव मां पुरूरवसं तस्याः प्रियायाः लोचने नयने स्मरयति मुहुर्मुहुस्तस्याः प्रियाया आदर्शो मम नयने समायातीत्यर्थः।

---

(१) भिन्नको रागविशेषः, यथाह भरतः—

'षड्जमध्यमिकोत्पन्नो भिन्नको मध्यमो बहुः।
षड्जग्रहांशो मन्यासो मन्द्रसोऽन्तोऽन्यथवा भवेत्।
षड्जादि मूर्द्धनः शुद्धः सञ्चारिणी सा काकलिः।
प्रसन्नादियुतो दानवीरे रौद्रेऽद्भुते रसे।
दिनस्य पश्चिमे यामे प्रयोज्यः सोमदैवतः॥

इतो गतेति कथं मया खलु तत्रभवती सूचयितव्या ? यतः,—

पद्भ्यां स्पृशेद्वसुमतीं यदि सा सुगात्री
मेघाभिवृष्ट-सिकतासु वनस्थलीषु।
पश्चान्नता गुरुनितम्बतया ततोऽस्याः
दृश्येत चारुपदपङ्क्तिरलक्तकाङ्का॥(१६)

(द्विपदिकया परिक्रम्य अवलोक्य च)

हन्त हन्त ! उपलब्धमुपलक्षणं, येन तस्याः कोपनायाः सरःसमुन्नीयते मार्गः।

हृतोष्ठरागैर्नयनोदबिन्दुभिर्निमग्ननाभेर्निपतद्भिरङ्कितम्।
च्युतं रुषा भिन्नगतेरसंशयं शुकोदरश्याममिदं स्तनांशुकम्॥(१७)

भावार्थ—यह नवीनकन्दली का फूल दिखाई देता है, उसकी नोक तो लाल रंग की है परंच मध्य (बीच) में काला है, इस को देखकर मुझको प्यारी के दोनों नेत्र याद आरहे हैं। रोष के होने पर उसके अन्तर्वाष्प नयन भी इसी प्रकार शोभा पाते हैं !

वह माननीया प्रियतमा इसी ओर से गई है, वह मैं कैसे जानूं ? क्योंकिः—

(१६) अन्वयः—पद्भ्यामिति। यदि सा सुगात्री मेघाभिवृष्टसिकतासु वनस्थलीषु पद्भ्यां वसुमतिं स्पृशेत्, ततोऽस्याः गुरुनितम्बतया पश्चान्नता अलक्तकाङ्का चारुपदपङ्क्तिः दृश्येत।

व्याख्या—यदि सा सुगात्री उर्वशी मेघैः अभिवृष्टाः सिकता यासु तासु वनस्थलीषु पद्भ्यां वसुमतीं पृथ्वीं स्पृशेत्। ततः तदा अस्याः गुरुनितम्बतया पश्चान्नता पश्चात्किञ्चिदवनता अलक्तकाङ्का चिन्होपेता चारुपदपंक्तिः मनोहरपादचिन्हपद्धतिः दृश्येत। वसन्ततिलकं वृत्तम्।

भावार्थ—यदि वह दोनों शोभायमान् चरण पृथ्वी को स्पर्श करते तो जलकी धारा से भीगी हुई वालुकामयी वन भूमि में उसके नितम्ब में गुरुवार वशतः पीछे की ओर को झुके अलक्ताकिंत (महावर लगे) ललित चरण चिह्न दिखाई देते इस में संदेह नहीं।

(द्विपदिकागीति से फिरकर और देखकर)

अहो ! मुझको यह चिन्ह मिलगया. इसी के द्वारा उस कोपना उर्वशी के जाने का मार्ग निश्चित करलूंगा।

(१७) अन्वयः—हृतोष्ठेति। हृतोष्ठरागैः नयनोदबिन्दुभिः निमग्ननाभेः निपतद्भिः अङ्कितं शुकोदरश्याममिदम् स्तनांशुकं असंशयं रुषा भिन्नगतेः च्युतम्।

भवतु आदास्ये तावत् । (परिक्रम्य विभाव्य च सास्रम्) कथं सेन्द्रगोपं शाद्वलमिदं स्थानम् ? तत् कुतोऽस्मिन् विपिने प्रियाप्रवृत्तिमागमयेयम् ? (विलोक्य) अयमासारोच्छलितशैलतटस्थलीपाषाणमधिरूढः ।

आलोकयति पयोदान् प्रबल-पुरोवात-नर्त्तितशिखण्डः ।
केकागर्भेण शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन ॥ (१८)

भवतु, यावदेनं पृच्छामि ।

व्याख्या—हृतोष्ठरागैः नष्टाधररागैः निमग्ननाभेः गम्भीरनाभेः तस्याः नयनोदबिन्दुभिः अश्रुकणैः अङ्कितं चिन्हितं शुकोदरश्यामामिदं स्तनांशुकं कुचोपरिवस्त्रम् असंशयं निश्चितम् मां प्रतिरुषा कोपेनभिन्नगतेः च्युतमं स्खलितमित्यर्थः । वशंस्थ वृत्तम्

भावार्थ—प्यारी जब क्रोध में भरकर आंसू बहाती २ गई तब उस के आंसुओं की बूंदें पहले होठों पर गिरने से होठ रंग से रंग गए, फिर अत्यन्त गहरी नाभी में गिरे, तत्पश्चात् शुकपक्षी के उदर के समान श्यामवर्ण स्तनांशुक में गिरे, प्यारी की चाल स्खलित होने से वह स्तनांशुक गिर पड़ा है ।

जो हो इसी को ही ले लूं (परिक्रमण तथा चिन्ता करके अश्रुपूर्ण नेत्रों से) यह स्थान तो नवीन तिनकों से ढका हुआ है । इन्द्र गोप कीड़े तिनकों पर विचरण कर रहे हैं । अतएव "प्यारी इस स्थान में आई है" यह कैसे निश्चय करूं ? (भली भांति देखकर) यह जो धारा के गिरने से सिंचित पर्वत के तटस्थपाषाण खंडों पर बैठा हुआ यह—

(१८) अन्वय—आलोकयतीति । प्रबल-पुरोवात-नर्त्तितशिखण्डः । शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन केकागर्भेण पयोदान् आलोकयति ।

व्याख्या—प्रबलेन पुरोवातेन नर्तितः शिखण्डो बर्हः यस्य स तथाभूतः, दूरोन्नमितेन उन्नतीकृतेन कण्ठेन केकागर्भेण शिखी मयूरः पयोदान् मेघान् आलोकयति ।

भावार्थ—मोरगण केकाशब्द करते २ मेघमाला की ओर देखते हैं, वेगयुक्त वायु में नृत्य करते हैं और अपनी लम्बी २ गर्दनों से मेघों को देखते हैं ।

जो हो इन से ही पूछूं ।

(अनन्तरे खण्डकः)

संपत्त-बिसूरणओ, तुरिअं परवारणओ।
पिअअम-दंसण-लालसओ गअवरु बिम्हिअ माणसओ॥(य) (१९)

(तेनाखण्डकान्तरे चर्चरी)

बरहिण-पब्भ ! तुइ अब्भत्थेमि; आअक्खुहि मे ता,
एत्थ अरण्णे भमन्ते जइ तुए दिट्ठा सा महु कन्ता।
णिसम्मइ मिअङ्कसरिसे बअणे, हंसगई,
ए चिण्हे जाणीहिसि, आअक्खिउ तुज्झ मई॥ (र)(२०)

(य) संप्राप्तविसूरणकस्त्वरितं परवारणकः।
प्रियतमा-दर्शन-लालसको गजवरो विस्मितमानसकः॥

(र) बर्हिणप्रभो ! त्वामभ्यर्थये; आचक्ष्व मे तत्,
अत्रारण्ये भ्रमता यदि त्वया दृष्टा सा मम कान्ता।
निशामय, मृगाङ्कसदृशं वदनं, हंसगतिः।
एतच्चिह्नं ज्ञास्यसि, आख्यातं तुभ्यं मया॥

(इसी अवसर में खण्ड[1]नामक गान होता है)

(१९) **अन्वयः**—संप्राप्तेति। (इस श्लोक के अन्वय प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—संप्राप्तविसूरणकः सम्प्राप्तखेदः त्वरितं शीघ्रं परवारणकः प्रियतमा-दर्शनलालसकः स्वप्रियासंवीक्षणोत्सुकः विस्मितमानसकः विस्मितहृदयः गजवरः श्रेष्ठगजः विचरति।

भावार्थ—**प्रिया के विरह से कातर महाबलवान् प्यारी के देखने को उत्सुक तथा विस्मित हृदयवाला गजराज भ्रमण करता है।**

(खण्डिकान्तर चर्चरी का गीत)

(२०) अन्वयः—बर्हिणेति (इस के अन्वय प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—बर्हिणेति। बर्हिणप्रभो ! मयूर ! त्वां मयूरं अभ्यर्थये प्रार्थये, अत्र अरण्ये वने यदि त्वया मयूरेण सा मम कान्ता उर्वशी दृष्टा अवलोकिता, मृगाङ्कसदृशं चन्द्रतुल्यं वदनं मुखं हंसवत् गतिःगमनं यस्याः सा मया पुरुरवसा तुभ्यं आख्यातं एतच्चिन्हं ज्ञास्यसीति निशामय, तत् मे मम पुरूवसः आचक्ष्व।

भावार्थ—**हे प्रभो नीलकण्ठ ! मैं आप के निकट प्रार्थना करता हूं कि इस वन में घूमते २ यदि आप मेरी प्रियतमा को देखें,**

(१) खण्डकलक्षणं यथाह भरतः—

"पूर्वं चतुर्विंशतिभिरष्टाविंशतिभिःपरम्।
मात्राभिरिह यस्यार्द्धं खण्डकः स प्रकीर्तितः॥"

(चर्चरिकयोपविश्य अञ्जलिं बद्ध्वा)

नीलकण्ठ ! ममोत्कण्ठा, वनेऽस्मिन् वनिता त्वया ।
दीर्घापाङ्गा सितापाङ्ग ! दृष्टा दृष्टिक्षमा भवेत् ? (२१)

(चर्चरिकया विलोक्य) कथमद्त्त्वैव प्रतिवचनं नर्त्तितुमारब्धः ?

(पुनश्चर्चरी)

तत् किं न खलु प्रहर्षकारणमस्य ? आं, ज्ञातम् ।—

मृदुपवन-विभिन्नो मत्प्रियायाः प्रणाशात्
घनरुचिर-कलापो निःसपत्नोऽद्य जातः ।
रतिविगलितबन्धे केशपाशे सुकेश्याः ।
सति कुसुमसनाथे कं हरेदेष बर्हः ? ॥ (२२)

तो मुझ से कह देना। उस की चाल हंस की चाल के समान और उसका मुख चन्द्रमा के तुल्य है, ये सब उस प्रिया के चिन्ह हैं।

(चर्चरी गीति से बैठ तथा हाथ जोड़कर)

(२१) अन्वयः—नीलकण्ठेति (इस के अन्वय प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—नीलकण्ठेति । हे सितापाङ्ग ! नीलकण्ठ ! हे श्वेतदृगन्त ! मयूर ! मम पुरूरवसः इयं उत्कण्ठा अभिलाषा यद्वा उत्कण्ठा रूपा सा दीर्घापाङ्गा आकर्णनयना मे वनिता उर्वशी अस्मिन् वने किं ते दृष्टिक्षमा दर्शनयोग्या भवेत् ?

भावार्थ—हे श्वेतवर्ण ! अपाङ्गसुशोभितनीलकण्ठ ! मेरी उत्कंठा की मूलमंत्र मृगनयनी प्रियतमा उर्वशी क्या तूने इस वनमें देखी है ?

(चर्चरी गीति के साथ चारों ओर दृष्टि डालकर) अहो ! मेरी बात का उत्तर न देकर नृत्य करता है,—

(फिर चर्चरी गीत)

तब इन के आनन्द का क्या कारण है ? हां समझा ।

(२२) अन्वयः—मृदुपवनेति । अद्य मत् प्रियायाः प्रणाशात् मृदुपवनविभिन्नः घनरुचिरकलापः निसपत्नः जातः, सुकेश्याः कुसुमसनाथ केशपाशे रतिविगलितबन्धे सति एष बर्हः कं हरेत् ?

व्याख्या—अद्य मत् मम प्रियायाः कान्तायाः प्रणाशात् नाशात् मृदुपवनविभिन्नः घनवत् रुचिरः कलापः पिच्छभारो यस्य 'कलापः संहते बर्हे काञ्च्यादौ तूणवृन्दयोः' इति विश्वलोचनः मयूर इत्यर्थः । निःसपत्नः शत्रुरहितः जातः सुकेश्याः कुसुमनाथे पुष्परचिते केशपाशे रतिविगलितबन्धे सति एष बर्हः कं हरेत् । मालिनी वृत्तम् ।

भावार्थ—मेरी प्यारी के अलक्षित होने में आज उनकी मेघवत् मनोरमा प्रति द्वन्द्वी हीन हो गई, उस सुकेशी के केशों में फूल

भवतु परव्यसनसुखितं न पुनरेनं पृच्छामि

(द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य)

अये ! इयमातपान्त-सन्धुक्षितमदा जम्बूविटपमध्यास्ते परभृता, विहंगेषु पण्डितैषा जातिः, यावदेनां पृच्छामि ।

(अनन्तरे खुरकः)

विज्जाहर-काणण-लीणओ
दुक्खविणिग्गअ-बाहुप्पीलओ ।
दूरोस्सारिअ-हिअआणन्दओ
अम्बरमाणेण भमइ गइन्दओ ॥ (ल) (२३)

(ल) विद्याधर-कानन-लीनको दुःखविनिर्गत-बाष्पोत्पीडकः ।
दूरोत्सारित-हृदयानन्दकोऽम्बरमानेन भ्रमति गजेन्द्रकः ।

बंधे हैं, रात्रि के श्रम से उनका बन्धन ढीला हो जाता है, और केशों के बन्धित होने से मयूर ही उस के चित्त को आनन्दित कर सकते हैं ।

जो हो सो पराई विपत्ति को देखकर इन को आनन्द उत्पन्न होता है ।

(द्विपदिका गीत गाते २ चारों ओर देखकर)

यह जो धूप दूर होने पर मद से मतवाली हो जाती है, पक्षियों की जातियों में चतुर यह कोइल जामुन के पेड़ की टहनी पर बैठी है, इस से पूछूं—

(खुरक[1]नामक गीत द्वारा)

(२३) अन्वय विद्याधरेति । (इस के अन्वय सीधे हैं)

व्याख्या—विद्याधरेति । विद्याधर-कानन-लीनकः विद्याधर-वन-संलग्नः । दुःखविनिर्गत-बाष्पोत्पीड़कः कष्टविनिसृताश्रुजलः दूरोत्सारित-हृदयानन्दकः दूरीकृतमानस-मोदः अम्बरमानेन अतिविशालेन गजेन्द्रकः गजाधिपः भ्रमति विचरति ।

भावार्थ—हृदय को आनन्द देनेवाली प्रिया को खोकर वह अत्यन्त ऊंचा गजराज विद्याधर वन में प्रवेश कर के दुःखजनित अश्रु-पात करता हुआ विचर रहा है ।

---

(१) खुरको नृत्याविशेषः, तदुक्तम्—
"पठमञ्जरिरागसंयुतं यद् द्रुतमध्येन लयेन यत्प्रयुक्तम् ।
प्रतितालयुतं च नर्तनं तत्खुराख्यं मुनये शिवेन दत्तम् ॥"

(खुरकान्तरे चर्चरी ।)

परहुअ ! महुर-पलाविणि ! कन्ता णन्दणवणे सच्छन्दं भमन्ती ।
जइ तुए पिअदमा सा महु दिट्ठा, ता आअक्खहि महु परपुट्ठे ॥ (व)(२४)

(एतदेव नर्त्तित्वा बलिन्तकया उपसृत्य जानुभ्यां स्थित्वा) **भवति !—**

त्वां कामिनो मदनदूतिमुदाहरन्ति,
मानापमान-निपुणं त्वममोघमस्त्रम् ।
तामानय प्रियतमां मम वा समीपं;
मां वा नयाशु, मृदुभाषिणि ! यत्र कान्ता ॥ (२५)

(व) परभृते मधुरप्रलापिनि ! कान्ता नन्दनवने स्वच्छन्दं भ्रमन्ती ।
यदि त्वया प्रियतमा सा मम दृष्टा, तदाचक्ष्व मह्यं परपुष्टे ! ॥

(खुरकान्तर चर्चरी गान)

(२४) अन्वय—परभृतेति (इस के अन्वय प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—परभृतेति । हे मधुरप्रलापिनि परभृते ! हे मधुरभाषिणि पिके ! नन्दनवने स्वच्छन्दं स्वेच्छया भ्रमन्ती विचरन्ती यदि त्वया सा मम प्रियतमा कान्ता उर्वशी दृष्टा चेत्तर्हि परपुष्टे ! मह्यं तदाचक्ष्व कथय ।

भावार्थ—**हे मीठे गलेवाली । कोइल ! तुम स्वेच्छयापूर्वक इस नन्दन वन में विचरती हो, यदि तुम ने मेरी प्यारी को देखा हो तो अब मुझे कह दो ।**

(यह कहकर बलन्तिका नामक राग में घुटनो के बल बैठकर) कोकिले ।

(२५) अन्वयः—त्वामिति । हे मृदुभाषिणि ! कामिनः त्वां मदनदूतिं मानापमाननिपुणाम् अमोघम् अस्त्रं च उदाहरन्ति । त्वं मम प्रियतमां ताम् आनय वा मां तत्समीपं आशु नय, यत्र मे कान्ता (स्यात्) ।

व्याख्या—हे मृदुभाषिणि ! परभृते ! कामिनः कामार्ताः जनाः त्वां मदनस्य कामस्य दूतिं दूतिकां मानापमाननिपुणं मानापमानयोश्चतुरम् अमोघम् अव्यर्थम् अस्त्रं च उदाहरन्ति कथयन्ति । त्वं मम पुरूरवसः प्रियतमाम् ताम् उर्वशीम् आनय, वा अथवा मां पुरूरवसं तत्समीपं तस्याः उर्वश्याः समीपं आशु शीघ्रं नय, यत्र मे मम पुरूरवसः कान्ता प्रियतमा (स्यात्) । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

भावार्थ—**हे मञ्जुभाषिणि ! कोकिले ! कामीजन तुमको काम की दूती कहते हैं, और तुम को ही मानापमान में निपुण अमोघ अस्त्र कहा करते हैं । इसलिए तुम प्यारी को मेरे पास ले आओ, अथवा जहां ही प्रियतमा हो वहां शीघ्र मुझे ले चलो ।**

(वामकेन किञ्चिद्वलित्वा आकाशे)

किमाह भवती ? कथं मामेवमनुरक्तमपहाय गतेति ?

(अग्रतोऽवलोक्य) भवति !

कुपिता न तु कोपकारणं सकृदप्यात्मगतं स्मराम्यहम् ।
प्रभुता रमणेषु योषितां न हि भावस्खलितान्यपेक्षते ॥ (२६)

(ससम्भ्रममुपविश्य, अनन्तरं जानुभ्यां स्थित्वा, कुपितेति पठित्वा, विलोक्य च)

कथं कथाविच्छेदकारिणी स्वकार्ये व्यासक्ता ? अथवा सुष्ठु खलु इदमुच्यते ।

महदपि परदुःखं शीतलं सम्यगाहुः,
प्रणयमगणयित्वा यन्ममापद्गतस्य ।
अधरमिव मदान्धा पातुमेषा प्रवृत्ता
फलमभिनवपाकं राजजम्बूद्रुमस्य ॥ (२७)

(मस्तक कम्पन तथा वाम पार्श्व से आकाश की ओर देखकर)

आप क्या कहती हो, क्या आप उस से प्रेम करती हो ? तब ही उस ने आप को छोड़ दिया है, क्या यह बात कहती हैं ?

(सामने की ओर देखकर) कोकिले !

(२६) अन्वयः—कुपितेति । अहं सकृदपि आत्मगतं कोपकारणं न स्मरामि, (कथं नु !) कुपिता सा, हि योषितां रमणेषु प्रभुता भावस्खलितानि न अपेक्षते ।

व्याख्या—अहं पुरूरवा सकृदपि आत्मगतं कोपकारणं क्रोधहेतुं न स्मरामि, यत् मत्प्रिया मयि कथं नु कुपिता ? हि यतः योषितां स्त्रीणां रमणेषु स्वामिषु प्रभुता प्रभुत्वं भावस्खलितानि अभिप्रायस्थगितानि नापेक्षते नेच्छति ।

भावार्थ—कोकिले ? यद्यपि वह कुपित हुई है किन्तु मैंने क्रोध का जो काम किया है वह मुझे तो याद भी नहीं आता, प्रियतम के ऊपर जो रमणियों की प्रभुता है वह प्रणय शैथिल्य की अपेक्षा ऐसा कार्य्य नहीं करती ।

(सम्भ्रम से बैठकर फिर दोनों घुटने टेक 'कुपितेति' श्लोक पढ़ तथा चारों ओर देखकर)

अहो ! यह तो अब मेरी बात का कोई भी उत्तर न देकर अपने काम में लगगई है—सो ठीक कहा है कि:—

(२७) अन्वयः—महदिति । महदपि परदुःखं शीतलं सम्यगाहुः, यत् मदान्धा एषा मम आपद्गतस्य प्रणयं अगणयित्वा राजजम्बूद्रुमस्य अभिनवपाकं फलं अधरमिव पातुं प्रवृत्ता ।

तदेवं गतेऽपि प्रियेव मे मञ्जुस्वनेति न मे कोपोऽस्याम्; सुखमास्तां भवती ; साधयामस्तावत् ।

(उत्थाय द्विपदिकया परिक्रम्यावलोक्य च)

अये ! दक्षिणेन वनधारां प्रियाचरण-निक्षेपशंसी नूपुरशब्दः । यावदेनमनुगच्छामि ।

(ककुभेन, षड्डुपभङ्गाः)

पिअअम-बिरह-किलामिअ-बदणओ,
अबिरल-बाहजलाउल-णअणओ ।
दुस्सहदुक्ख बिसंठुल-गमणओ,
पसरिअ-उरुताबअ-दीबिअ-अङ्गओ ॥
अहिअं दुम्मिअ-माणसओ दरिअं गओ,
काणणे परिब्भमइ गइन्दओ । (श) (२८)

(श) प्रियतमाविरहक्लान्तवदनकोऽविरलवाष्पजलाकुलनयनक. ।
दुःसहदुःखविसंष्ठुलगमनकः, प्रसृतोरुतापदीपिताङ्गकः ।
अधिकं दूनमानसको दुरितं गतः कानने परिभ्रमति गजेन्द्रकः ॥

व्याख्या—महदपि गुरुतरमपि परस्य अन्यस्य दुःखं कष्टं शीतलं सम्यगाहुरिति यथार्थमेव, यत् यस्मात् मदेन अन्धा एषा कोकिला मम आपद्गतस्य प्रियाविरहदुःखार्तस्य प्रणयं प्रेम अगणयित्वा अविचार्य्यैव राजजम्बूद्रुमस्य जम्बूवृक्षस्य अभिनवपाकं सद्यः पक्वं फलं अधरमिव पातुं प्रवृत्ता । मालिनी वृत्तम् ।

भावार्थ—पराया दुःख अत्यन्त अधिक होने पर भी दूसरे के निकट वह शीतल है, मैं दुःखी हूं, मेरे प्रेम को न गिनकर ही यह मदान्ध कोकिला अधर-तुल्य पके हुए जम्बुफल भक्षण में प्रवृत हुई है ।

जो हो यह कोयल ऐसी होने पर भी मेरा कोप इस पर नहीं है, क्योंकि इसके कण्ठका स्वर मेरी प्रिया के समान मधुर है, हे कोकिले ! तुम सुख से रहो, अब मैं जाता हूं—

(यह कहकर तथा उठकर द्विपदिकागीति से परिक्रमण तथा देखकर)

अरे यह तो वन के दक्षिण प्रान्त में प्यारी के चरण रखने की सूचना देने वाली पायजेब (नूपुर) शब्द सुनाई देता है, सो मैं इसकी ओर जाता हूं—

(कुकुभ नामक गीत से षड्विध स्वरयुक्त गान)

(२८) अन्वयः—प्रियतमेति । (इस के अन्वय प्रायः सीधे हैं)

(अनन्तरे द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य ।)

पिअकरिणी-विच्छेदिअओ, गुरुसोआणलदीविअओ ।
बाहजलाउल-लोअणओ, करिबर-भमइ-समाउलओ ॥ (घ) (२९)

(सकरुणम्) हा धिक् ! कष्टम्।—

मेघश्यामा दिशो दृष्ट्वा मानसोत्सुकचेतसा ।
कूजितं राजहंसेन नेदं नूपुरशिञ्जितम् ॥ (३०)

(घ) प्रियकरिणीविच्छेदितको गुरुशोकानलदीपितकः ।
वाष्पजलाकुललोचनकः करिवरो भ्रमति समाकुलकः ॥

व्याख्या—प्रियतमेति । प्रियतमाविरहक्लान्तवदनकः प्रियतमायाः विरहेण वियोगेन क्लान्तं वदनं यस्य सः, अविरलैः बहुभिः वाष्पजलैः अश्रुवारिभिः आकुले नयने यस्य सः, अविरलवाष्पजलाकुलनयनकः, दुःसहदुःखविसंष्ठुलगमनकः दुःसहेन दुःखेन विसंष्ठुलं विशृङ्खलं गमनं यस्य सः, प्रसृतोरुतापदीपिताङ्गकः अधिकं दुनमानासकः अतिदुःखितहृदयः गजेन्द्रकः कानने वने दुरितं दुःखं गतः प्राप्तः परिभ्रमति । आर्य्यावृत्तम् ।

भावार्थ—गजराज वन में विचरता है प्यारी के विरह से उस का मुख अत्यन्त मलीन है तथा असह्यदुख के भारसे शिथिलगति को प्राप्त होकर अपनी दोनों नेत्रों द्वारा वाष्पजल को छोड़ता हुआ अत्यन्त दुखी तथा भय से विह्वल है ।

(अनन्तर द्विपदिका गानपूर्वक चारों ओर देखकर)

(२९) अन्वयः—प्रियेति । प्रियकरिणीविच्छेदितः गुरुशोकानलदीपितकः वाष्पजलाकुललोचनकः समाकुलकः करिवरः भ्रमति ।

व्याख्या—प्रियकरिणीविच्छेदितिकः प्रियहस्तिनीविच्छेदितकः गुरुणा महता शोकानलेन शोकाग्निना दीपितकः वाष्पजलाकुललोचनकः अश्रुवारिधराकुलनयनकः समाकुलकः व्याकुलकः करिवरः गजराजः भ्रमति ।

भावार्थ—प्यारी हथिनी के विरह से शोकाग्निद्वारा सन्तप्त और अश्रुजल से आकुल नेत्र वाला विह्वल हृदय से यह गजराज घूमरहा है ।

(करुणा भाव से) **हा धिक् बड़ा कष्ट है ?**

(३०) अन्वयः—मेघश्यामेति । मानसोत्सुकचेतसा राजहंसेन मेघश्यामा दिशः दृष्ट्वा इदं कूजितं नूपुरशिञ्जितं न ।

(इति पठित्वा उत्थाय)

भवतु, यावदेते मानसोत्सुकाः पतत्रिणः सरसोऽस्मात् न उत्पतन्ति, तावदेतेभ्यः प्रियाप्रवृत्तिमागमयेयम् ।

(बलन्तिकया उपसृत्य जानुभ्यां स्थित्वा)

हंहो जलविहङ्गमराज !

पश्चात् सरः प्रतिगमिष्यसि मानसं त्वं,
पाथेयमुत्सृज बिसं ग्रहणाय भूयः ।
मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या,
स्वार्थात् सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव ॥ (३१)

व्याख्या—मानसे तदाख्यसरोवरे उत्सुकं मानसगमनाय उत्कण्ठितं चेतः हृदयं यस्य तेन राजहंसेन मेघेन मेघोदयेन श्यामा नीला दिशः दृष्ट्वा कूजितं शब्दः कृतः इदं नूपुरं मञ्जीरं शिञ्जितं ध्वनिः न अस्तीति शेषः ।

भावार्थ—**मानसरोवर में जाने के लिये उत्सुक राजहंस मेघ माला में श्यामवर्ण की दिशाओं को देख कर कूजित करता है, कि वह प्यारी की नूपरध्वनि नहीं है ।**

(यह पढ़कर उठता है)

जो हो- मानसरोवर में गमनोत्सुक हंस इस सरोवर से आकाश में जाना चाहते हैं, अत एव इन के समीप जाकर प्यारी का हाल मालूम करूं ।

(बलन्तिका गीति से निकटवर्त्ती होकर घुटनों के बल से)

हे जल के पक्षिराज !

(३१) अन्वयः—पश्चादिति । त्वं पाथेयं बिसं उत्सृज भूयः ग्रहणाय मानसं सरः प्रतिगमिष्यसि, तावत् मां दयिताप्रवृत्त्या शुचः उद्धर, प्रणयिक्रिया सतां स्वार्थात् गुरुतरा ।

व्याख्या—त्वं पथिषु साधु पाथेयं बिसं मृणालदण्डं उत्सृज, भूयः पुनः ग्रहणाय मानसं सरः तदाख्यं सरोवरं प्रतिगमिष्यसि, पूर्वं तावत् मां दयिताप्रवृत्त्या प्रियासंवाददानेन शुचः विरहदुःखादुद्धर, प्रणयिक्रिया प्रणयिजनोपकारः सतां सज्जनानां स्वार्थात् गुरुतरा महती । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

भावार्थ—**तुम मानसरोवर को तो पीछे जाना, इस समय पाथेयस्वरूप जो मृणाल छोड़ा है इसको भी पीछे ग्रहण करना,**

(तिर्य्यगवलोक्य)

अये ! यथा उन्मुखमालोकयति, तथा व्यक्तं, "प्रवासोत्सुकमनसा मया न दृष्टा" इत्याह।

(उपविश्य, चर्चरी)

अरे रे हंस ! किं गोइज्जइ ? (स)

(इति नर्तित्वा उत्थाय)

यदि हंस ! गता न ते नतभ्रूः,
सरसो रोधसि दृक्पथं प्रिया मे।
मदखेलपदं कथं नु तस्याः
सकलं चौर ! गतं त्वया गृहीतम ? ॥ (३२)

(स) अरे रे हंस ! किं गोप्यते ?

पहिले मुझ को इस प्यारी के विरह-जनित शोक से उद्धार करो। साधुजन अपने अर्थ साधन की अपेक्षा प्रमीजनों के काम को भारी विचारते हैं।

(तिर्य्यक् भावसे देखकर)

अये ! यह राजहंस जिस प्रकार मुझे उन्मुख होकर देखता है, इस से स्पष्ट मालूम होता है कि अब हम विदेश जाने के लिये उत्सुक हुए हैं, तुम्हारी प्यारी को मैंने नहीं देखा, केवल यह ही कहता है।

(बैठ कर चर्चरी गीत)

अरे ! रे ! हंस ! छिपते क्यों हो !

(यह कह कर नृत्य करते हुए उठकर)

(३२) अन्वयः—यदिति। हंस ? यदि नतभ्रूः सा मे प्रिया सरसः रोधसि ते दृक्पथं न गता ? चौर ! कथं मदखेलपदं तस्याः सकलं गतम् नु त्वया गृहीतम् ?

व्याख्या— रे हंस ! यदि नतभ्रूः सा मे प्रिया उर्वशी सरसः सरोवरस्य रोधसि तटे ते तव दृक्पथं दृग्गोचरं न गता न पतिता, तदा हे चौर ! कथं कस्माद्धेतोः मदेन खेला कामक्रीड़ा येषु तत् मदखेलपदं तस्याः उर्वश्याः सकलं सम्पूर्णं गतं गमनं त्वया हंसेन गृहीतम् ?

भावार्थ—रे हंस यदि मेरी चौड़ी भौंओंवाली प्यारी को तुमने नहीं देखा हो तो चोर ! तुम ने यह मदस्खलित विलासगति कहां से पाई। (क्योंकि ऐसी गति तो मेरी प्रिया की थी, वैसी तुम चलते हो, अतः तुम ने अवश्य ही प्यारी को देखा है)।

गइ अणुसारे मए लक्खिज्जइ । (ह)

(चर्चरिकया उपसृत्य अञ्जलिं बद्ध्वा)

हंस ! प्रयच्छ मे कान्तां, गतिरस्यास्त्वयाहृता ।
विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ॥ (३३)

(पुनश्चर्चरी)

कइ तुए सिक्खिदमेदं गइलालस ! ।
सा तुए दिट्ठा जहणभरालसा ॥ (च) (३४)

(पुनश्चर्चरी सानुनयं "हंस ! प्रयच्छ" इत्यादि पठित्वा, पुनश्चर्चरिकया "साक्षेपं हंस ! प्रयच्छ" इत्यादि पठित्वा, द्विपदिकया निरूप्य विहस्य) ।

"एष स्तेयानुशासी राजा" इति अतिभयादुत्पतितः; यावदन्यमवकाशमवगाहिष्ये ।

(ह) गत्यनुसारेण मया लक्ष्यते ।

(च) कुत्र त्वया शिक्षितमेतत् गतिलालस ! ।
सा त्वया दृष्टा जघनभरालसा ॥

तेरी चाल से मैंने जाना—

(चर्चरिका गीति से पास जा तथा हाथ जोड़कर)

(३३ अन्वयः—हंसेति । (इसके अनवय प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—हंसेति । हे हंस ! मे मम कान्तां प्रियां प्रयच्छ देहि, अस्याः उर्वश्याः गतिः गमनं त्वया हंसेन अपहृता, विभावितः दृष्टः एकदेशः चोरितद्रव्यांशः यस्मिन् एतादृशेन चोरेण यदभियुज्यते स्वामिना चौरे चोरित्वेनारोपिते तत्तेन देयम ।

भावार्थ—हे हंस ! जब कि मैं देखता हूं कि तुम ने मेरी प्यारी की चाल को हरण किया है, तब तुम ने ही मेरी प्यारी को लिया है । अतएव उस को दे दो ।

(३४) अन्वयः—कुत्रेति । गतिलालस ! त्वया एतत् (कर्म) कुत्र शिक्षितम् ? क्या सा जघनभरालसा दृष्टा ?

व्यख्या—(सरल है)

भावार्थ—हे गतिलालस ! तुम ने मेरी प्रियतमा के समान गमन करना कहां से सीखा है ? तुम ने निश्चय ही जघन के भार से मन्थरा मेरी प्यारी को देखा है ।

(सानुनय 'हंस' इत्यादि बारम्बार पाठ करने पर द्विपदिकादि गाने के सहित निर्देशपूर्वक)

'यह पुरुष चोरों का शासन करनेवाला राजा है' यह समझकर क्या हंस भय से उड़ गया है ? तो अब फिर दूसरा अवसर खोजूं ।

(द्विपदिकया परिक्रम्य अवलोक्य च)

अये ! प्रियासहायश्चक्रवाकास्तिष्ठति; यावदेनं गच्छामि ।

(अनन्तरे कुटिलिका)

मम्मर-रणिअ-मणोहरए,

(मन्दघटी)

कुसुमिअ-तरुवर-पल्लविए ।

(चर्चरी)

दइआ बिरहुम्माइअओ ।

काणणे भमइ गइन्दओ ॥ (क) (३५)

(द्विलयान्तरे चर्चरी)

गोरोअणा-कुकुंमवण्णा चक्का भणह मम ।

महुबासरे कीलन्ती धणिआ ण दिट्ठा तुए ॥ (ख) (३६)

(क) मर्मर-रणित-मनोहरके कुसुमित-तरुवर-पल्लविते ।

दयिता-विरहोन्मादितः कानने भ्रमति गजेन्द्रकः ॥

(ख) गोरोचना-कुङ्कुमवर्ण ! चक्र ! भण माम् ।

मधुवासरे क्रीडन्ती धन्या न दृष्टा त्वया ? ॥

(द्विपदिका के साथ परिक्रमण और देखकर)

यह चक्रवाक अपनी प्यारी के साथ बैठा है, इसी से पूछूं—

(तदनन्तर कुटिलिका नामक अभिनय विशेष)

(पुनः चर्चरी)

(३५) अन्वयः—मर्मरेति । दयिताविरहोन्मादितकः गजेन्द्रकः मर्मररणित मनोहरके कुसुमिततरुवरपल्लविते काननें भ्रमति ।

व्याख्या—(सुगम है)

भावार्थ—मर्मरध्वनियुक्त मनोहर (मन्द घटी नामक अभिनय विशेष) कुसुमित वृक्ष द्वारा पल्लवित (चर्चरी) वन में प्यारी के विरह से उन्मत्त गजराज घूम रहा है ।

(अनन्तर दोलयों के पीछे चर्चरी)

(३६) अन्वयः—गोरोचनाकुंकुमेति । गोरोचनाकुंकुमवर्ण ! चक्र । मधवासरे क्रीडन्ती धन्या त्वया न दृष्टा माम् भण ?

---

(१) कुटिलिका नाट्यविशेषः, यदुक्तम्—

"रागेण रहितं यत्तु चार्धमत्तालिकायुतम् ।

भाषयैव च तन्नाट्यं कुटलीसंज्ञकं मतम्" ॥

(चर्चरिकया उपसृत्य जानुभ्यां स्थित्वा)

रथाङ्गनामन् ! संत्यक्तो रथाङ्गश्रोणिविम्बया ।
अयं त्वां पृच्छति रथी मनोरथशतैर्वृतः ॥ (३७)

अयं कः क इत्याह, न किल विदितोऽहमस्य ।

सूर्य्याचन्द्रमसौ यस्य मातामहपितामहौ ।
स्वयं वृतःपतिर्द्वाभ्यामुर्वश्या च भुवा च यः ॥ (३८)

कथं तूष्णीमेवास्ते ? भवतु, उपालभे तावदेनम् ।

व्याख्या—(सुगम है)

भावार्थ—गोरोचन की समान कुंकुमवर्ण ! चक्रवाक ! तुम मुझको बताओ, जो वासन्ति दिन में क्रीड़ा करती है, उस धन्या प्रियतमा को क्या तुम ने देखा है ?

(चर्चरी के साथ निकटवर्त्ती हो दोनों घुटुए टेककर)

(३७) अन्वयः—रथाङ्गेति । रथाङ्गनामन् ! रथांगश्रोणिविम्बया संत्यक्तः रथी मनोरथशतैर्वृतः अयं त्वां पृच्छति ।

व्याख्या—हे रथाङ्गनामन् ! नामेतिसंभावनायाम्, रथाङ्गवत् श्रोणिविम्बं यस्याः तस्या उर्वश्यास्तन्द्रथस्य अहं रथी रथवान् सूतोऽस्मि । मनोरथशतैर्वृतः शताभिलाष-युतोऽयं राजा त्वां पृच्छति तदुत्तरं देहीत्यर्थः ।

भावार्थ—हे चक्रवाक ! रथांगकी समान नितम्बों वाली ने मुझे त्याग दिया है, शतशः मनोरथों से ढक रहा हूं, मैं उस प्रिया का रथी और राजा हूं, तुम से पूछता हूं (राजा के होने पर तथा पूछने पर भी तुम उत्तर देने में बिलम्ब कर रहे हो यह युक्त नहीं है) ।

इसने 'यह कौन है' 'यह कौन है' जो ऐसा शब्द किया, इस से मालूम होता है कि यह मुझे नहीं जानता ।

(३८) अन्वयः—सूर्य्येति । (इसके अन्वय प्रायः सीधे हैं) ।

व्याख्या—सूर्य्येति । यस्य मम सूर्य्याचन्द्रमसौ मातामहपितामहौ, उर्वश्या भुवा भूम्या च द्वाभ्यां यः पतिः स्वयं वृतः स्वीकृत इत्यर्थः । अनुष्टप् छन्दः ।

भावार्थ—सूर्य्य और चन्द्र जिस के मातामह एवं पितामह हैं और उर्वशी तथा पृथ्वी ने जिसको स्वयं वर्णन किया है मैं वही पुरूरवा हूं । *

चक्रवाक तो चुपचाप बैठा है, अच्छा मैं इसको पकरूं ।

---

* देखो "पुरूरवा और उर्वशी" नामक लेख (पुस्तकारम्भ में)

(जानुभ्यां स्थित्वा)

तद्यावत् तावत् आत्मानुमानेन वार्त्तितुम् । कुतः ?—

सरसि नलिनीपत्रेणापि त्वमावृतविग्रहां
ननु ! सहचरीं दूरे मत्वा विरौषि समुत्सुकः ।
इति च भवतो जायास्नेहात् पृथक्स्थिति-भीरुता,
मयि च विधुरे भावः कोऽयं प्रवृत्ति-पराङ्मुखः ? ॥(३९)

(उपविश्य) सर्वथा मदीयानां भाग्यविपर्य्ययाणामयं प्रभावः । यावत् अन्यमवकाशम् अवगाहिष्ये ।

(द्विपदिकया परिक्रम्य अवलोक्य च) अये ?—

इदं रुणाद्धि मां पद्ममन्तःक्वणितषट्पदम् ।
मया दष्टाधरं तस्याः सशीत्कारमिवाननम् ॥ (४०)

(जानुओं के बल बैठकर)

अब अनुमान द्वारा कार्यारम्भ करना चाहिए—कैसे

(३९) अन्वयः—सरसीति । सरसि नलिनीपत्रेण अपि त्वां सहचरीं आवृतविग्रहां दूरे मत्वा समुत्सुकः ननु विरौषि, इति च भवतः जायास्नेहात् पृथक्स्थिति-भीरुता मयि विधुरे अयं प्रवृत्तिपराङ्मुखः भावः कः ?

व्याख्या—सरसि सरोवरे नलिनीपत्रेण कमलिनीदलेन अपि त्वां सहचरीं सखीं आवृतविग्रहां आच्छादिततनुः दूरे मत्वा समुत्सुकः ननु विरौषि शब्दं करोषि ? इति च भवतः जायास्नेहात् स्त्रीस्नेहात् पृथक्स्थितिभीरुता मयि विधुरे स्त्रीविरहिते अयं प्रवृत्तिपराङ्मुखः वार्त्ताविमुखः भावः अभिप्रायः कः ।

भावार्थ—क्योंकि इस सरोवर में जब तुम्हारी प्रिया सखी दूर से नलिनी पत्र में अवस्थान (छुपती) है, तब ही उत्कण्ठित चित्त से तुम 'कलरव' (शब्द) करते हो । (यह अपनी पत्नी के ऊपर स्नेहवशतः पृथक् होना एक भयस्वरूप है) मैं भी पत्नी के विरह से दुःखी हूं, फिर मेरे प्रति तुम्हारा ऐसा आचरण क्यों है ?

(बैठकर) सब ही मेरे अभाग्य का फल है, तो अब कोई दूसरा सुयोग ढूंढू !

(द्विपदिका के साथ परिक्रमण तथा दर्शन पूर्वक) अये ?

(४०) अन्वयः—इदमिति । अन्तः क्वणितषट्पदम् इदं पद्मं मां रुणाद्धि, मया दष्टाधरं सशीत्कारं तस्याः आननमिव ।

इतो गतस्य अनुशयो मा भूदिति अस्मिन्नपि कमलशये भ्रमरे प्रणयं करिष्ये।

(अस्य अनन्तरे अर्द्धद्विचतुरस्रकः)

एक्कक्कम-वड्ढिअ-गुरुअर-प्पेम्मरसे।
सरे हंसजुआणओ कीलइ कामरसे ॥ (ग) (४१)

(चतुरस्रकेण उपविश्य अञ्जलिं बद्ध्वा)

मधुकर ! मदिराक्ष्याः शंस तस्याः प्रवृत्तिं
वरतनुरथ वाऽसौ नैव दृष्टा त्वया मे।
यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखोच्छ्वासगन्धं,
तव रतिरभविष्यत् पुण्डरीके किमस्मिन्? ॥ (४२)

(ग) एकक्रमवर्द्धितगुरुतरप्रेमरसः।
सरसि हंसयुवकः (वा नाव) क्रीडति कामरसे ॥

व्याख्या—अन्तर्मध्ये क्वणिता षट्पदा यस्य तथाभूतम्, इदं पद्मं कमलं मां रुणद्धि अग्रे गन्तुं न प्रयच्छति, मया इदं पद्मं दष्टाधरं संभोगकाले प्राप्तमदन्तक्षतं अत एव सशीत्कारं तस्याः उर्वश्या आननमिव। अनुष्टुप् वृत्तम्।

भावार्थ—दान्तों से प्यारी का होठ काटने पर उसके शीत्कार-समाकुल मुख की समान गर्भ में 'भ्रमर-ध्वनि' युक्त यह शतदल मुझको निरोध करता है।

यहां से जाने पर संतप्त न होना पड़े, इस लिये यह शत दल गर्भशाई भ्रमर के संग मित्रता करूं—

(इस के बाद अर्द्धाद्विचतुरस्रक नामक गीति)

(४१) अन्वयः—एकक्रमेति। (इसके अन्वय प्रायः सीधे हैं)।

व्याख्या—एकक्रमेति। एकक्रमवर्द्धितगुरुतरप्रेमरसः-लघीयसैवावृतस्नेहरासिकः हंसयुवकः हंसिनिपुत्रः कामरसे कामस्यास्वादे सरसि तड़ागे क्रीड़ति।

भावार्थ—जिसका बड़ा भारी प्रेम निरन्तर ही लगा है वही हंसयुवक कामके वशीभूत होकर सरोवर में क्रीड़ा करता है।

(चतुरस्रिक गीति के सहित उपवेशन पूर्वक हाथ जोड़ कर)

(४२) अन्वयः—मधुकरेति। मधुकर! मदिराक्ष्याः तस्याः प्रवृत्तिं शंस ? अथवा त्वया असौ मे वरतनुः नैव दृष्टा ? यदि सुरभिं तन्मुखोच्छ्वासगन्धं अवाप्स्यः तर्हि किं तव अस्मिन् पुण्डरीके रतिः अभविष्यत् ?

(इति द्विपदिकया परिक्रम्य अवलोक्य च)

अये ! करिणीसहायो नागाधिराजो नीपस्कन्ध-निषण्णस्तिष्ठति, यावदेनं गच्छामि ।

(कुटिलिका)

करिणी-बिरह-सन्दाबिअओ

(मन्दघटी)

काणणए गन्धुद्धुअ-महुअरओ । (घ) (४३)

(अतोऽन्तरे विलोक्य) अथवा न तावदयम् उपसर्पणकालः—

अयमचिरोद्गत-पल्लवमुपनीतं प्रियतमाग्रहस्तेन ।
अभिलषतु तावदासव-सुरभिरसं शल्लकीभङ्गम् ॥ (४४)

(घ) करिणीविरहसन्तापितकः कानने गन्धोद्धतमधुकरकः ।

व्याख्या—हे मधुकर ! भ्रमर ! मदिराक्ष्याः अलसलोचनायाः तस्याः प्रियायाः प्रवृत्तिं वार्तां शंस कथय ? अथवा त्वया असौ मे मम वरतनुः प्रिया नैव दृष्टा नावलोकिता ? यदि सुरभिं शोभनं घ्राणं तन्मुखोच्छ्वासगन्धं अवाप्स्यः तर्हि किं तव अस्मिन् तुच्छे पुण्डरीके रतिः आसाक्तिः अभविष्यत् ? मालिनी वृत्तम् ।

भावार्थ—हे मधुकर ! यदि मेरी उस मदिराक्षी प्यारी को देखा हो तो बतादो ? अर्थात् उस मेरी प्यारी को क्या तुमने नहीं देखा ? यदि तुम उसके मुख-कमल की निःश्वासगन्ध प्राप्त करते हो तो फिर क्या तुम्हारी पद्मके प्रति प्रीति होना संभव है ?

(यह कहकर द्विपदिका के सहित परिक्रमण और दर्शन करके)

अये ! हथिनीके साथ जो कदम्बवृक्षके गूहेमें छुपा गजराज बैठा है उस के पास जाता हूं—

(कुटिलिका नामक गीति)

(४३) अन्वयः—करणीति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—करणीति । करिणीविरहे हस्तिनीविरहे सन्तापितकः क्षुब्धः गन्धोद्धुतमधुकरकः गन्धक्षोभितभ्रमरः कानने वने तिष्ठति ।

भावार्थ—इस वन में गजराज हस्तिनी के विरह से सन्तापित होकर (मन्दघटी) गन्ध से भ्रमरों को उन्मादित करके भ्रमण करता है ।

(फिर चारों ओर देखकर) अब तो पास पहुंचने का ही समय है ।

(४४) अन्वयः—अयमिति । (प्रायः सीधे हैं)

(स्थानकेन अवलोक्य) अये ? कृताहारकः संवृत्तः, भवतु समीपम् अस्य गत्वा पृच्छामि।

(अनन्तरे चर्चरी)

अहं तुमं पुच्छिमि, आअक्खहि गअवरु !
ललिअ-प्पहारेण णासिद-तरुवरु ! ।
दूरविणिज्जअ-ससहरकन्ती
दिट्ठा पिआ तुए सम्मुहअन्ती ? ॥ (ङ) (४५)

(पदद्वयं पुरत उपसृत्य)

मदकल ! युवतिशशिकला, गजयूथप यूथिका-शबल-केशी।
स्थिरयौवना स्थिता ते दूरालोके सुखालोका ॥ (४६)

(ङ) अहं त्वां पृच्छामि, आचक्ष्व गजवर !
ललितप्रहारेण नाशिततरुवर !
दूरविनिर्जितशशधरकान्तिः
दृष्टा प्रिया त्वया संमोहयन्ती ? ॥

व्याख्या—अयमिति। अयं अचिरोद्गतं नूतनोत्पन्नं पल्लवं प्रियतमाप्रहस्तेन उपनीतम् आनीतम्। तावदादौ आसवसुरभिरसं मदिरायुतं रसं शल्लकीभङ्गं गजप्रियस्तरुभेदः अभिलषतु आस्वादयतु। आर्य्यावृत्तम्।

भावार्थ—इस समय प्यारी हथिनी अपने हाथ से शल्लकी वृक्ष के नवपल्लव तोड़कर प्रियतम हाथी को देती है, अब गजराज उसी मदगंध से पूर्णरस आस्वादन करें।

(आलाप विशेष करके दर्शनपूर्वक) अरे ! गजराज का आहार शेष हो गया है, ओ हो अब पास जाकर पूछूं--

(इस के पीछे चर्चरी)

(४५) अन्वयः—अहमिति (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—(सुगम है)

भावार्थ--हे गजराज ! तुम ने ललितप्रहार से तरुराज को ध्वंस किया है, मैं तुम से पूछता हूं कि जिस ने अपनी कान्ति से चन्द्रमा को भी परास्त किया था क्या उस मोहकारिणी प्रिया को देखा है ?

(दो पग आगे धरकर)

(४६) अन्वयः—मदकलेति। मदकल ! गजयूथप ! युवतिशशिकला यूथिकाशबलकेशी स्थिरयौवना सुखालोका ते दूरालोके स्थिता ?

(सहर्षमाकर्ण्य)

अहह ? अनेन प्रियोपलब्धि-शंसिना मन्द्रकण्ठगर्जितेन समाश्वासितोऽस्मि। साधर्म्यात् भूयसी मे त्वयि प्रीतिः। कथम् ? इति—

मामाहुः पृथिवीभुजामधिपतिं नागाधिराजो भवान्
अव्युच्छिन्नपृथुप्रवृत्ति भवतो दानं समानं मम।
स्त्रीरत्नेषु ममोर्वशी प्रियतमा यूथे तवेयं वशा;
सर्वं मामनु ते प्रियाविरहजां त्वन्तु व्यथां मानुभूः ॥(४७)

व्याख्या—मदेन कलो मधुराव्यक्तशब्दो यस्य तत्सम्बुद्धौ, गजयूथप ! नगाधिराज ! युवतिषु मध्ये शशिकला चन्द्रकलास्वरूपा यूथिकाभिः तदाख्यकुसुमैः शवलाश्चित्रिताः केशा यस्याः सा, स्थिरयौवना सुखालोका सुखदर्शना उर्वशी ते तव दूरालोके स्थिता किम् ?

भावार्थ—हे मदमत्त ! यूथपते ! यूथिकानाम पुष्पों के खोंचने से जिस के केशपाश विचित्र शोभा से सुशोभित होते हैं, जो स्त्रियों के बीच में से चन्द्रकला स्वरूप हैं, वह स्थिरयौवना सुदर्शना मेरी प्यारी (उर्वशी) तुम्हारे पास से क्या अधिक दूर रहती है ?

(सानन्द कान देकर)

अहो इस प्रियादर्शन की सूचना देनेवाली बढ़ती हुई ध्वनि से विश्वस्त हुआ हूं—मेरी प्रीति साधमर्य्य होने के कारण ही आपसे अधिक बढ़ गई है, कैसे—

(४७) अन्वयः—मामिति। मां पृथिवीभुजाम् अधिपतिम् आहुः, भवान् नागाधिराजः, अव्युच्छिन्नपृथुप्रवृत्ति भवतः दानं मम समानम्, स्त्रीरत्नेषु मम प्रियतमा उर्वशी यूथे इयं तव वशा, ते सर्वं मामनु, त्वं तु प्रियाविरहजां व्यथां मानुभूः।

व्याख्या—मां पृथिवीभुजां भूपालानाम् अधिपतिमधीश्वरमाहुः, जना इति शेषः। तथा भवान् त्वं नागाधिराजः, प्रत्युच्छिन्ना निरवच्छिन्ना पृथुः स्थूला प्रवृत्ति यस्य तत्, तव दानं मदजलं पक्षे—दीनेभ्यः अर्थादिवित्तरणं मम समानं तुल्यम्। स्त्रीरत्नेषु मध्ये उर्वशी मम प्रियतमा, तथा यूथे गजयूथमध्ये इयं तव वशा करिणी प्रिया प्रियतमा त्वयि अनुरक्ता अतएव ते तव सर्वं मामनु मम सदृशम्। त्वं तु प्रियाविरहजां व्यथां मानुभूः।

भावार्थ—मैं पृथ्विपति (राजा) हूं, तो तुम भी 'गजराज' हो, तुम्हारा दान (मद-धारा) और मेरा दान (धन देना) निरन्तर होता रहता है। मेरी प्यारी उर्वशी रमणीकुल में प्रधान है, तो तुम्हारी

सुखमास्तां भवान् ।

(द्विपदिकया परिक्रम्य अवलोक्य च)

अये ! अयमसौ सुरभिकन्दरो नाम विशेषरमणीयः सानुमान्, प्रियश्चायमप्सरसाम, अपि नाम सुतनुरस्य उपत्यकायामुपलभ्येत ?

(परिक्रम्य अवलोक्य च)

कथमन्धकारः ? भवतु विद्युत्प्रकाशेन अवलोकयामि । कथं मदीयैर्दुरितपरिणामैर्मेघोदयोऽपि शतह्रदाशून्यः संवृत्तः ? तथापि शिलोच्चयमेनमपृष्ट्वा न निवर्त्तिष्ये ।

(अनन्तरे खण्डिका)

खरखुर-दारिअ मेइणिओ वणगहणे अविअल्लु ।
परिसप्पइ पेच्छह लीणो णिअकज्जुज्जुअ कोल्लु ॥ (४८) (च)

(च) खरखुरदारितमेदिनीकी वनगहनेऽविचलः ।
परिसर्पति पश्यत लीनो निजकार्य्योद्युक्तः कोलः ॥

प्रियतमा भी हथिनी है, मेरे साथ तुम्हारी सभी बातें समान हैं, किन्तु इस में भेद केवल इतना है कि मैं प्रियतमा के वियोग से दु.ख भोग रहा हूं और तुम सुख भोग रहे हो । आप उसकी व्यथा न करें।

आप सुख से ही रहें--

(द्विपदिका के साथ फिरकर और देखकर)

अरे ! यह तो वह 'सुरभिकन्दर' नामक परम मनोहर पर्वत है । यह पर्वत अप्सराओं को अत्यन्त प्रसन्नता देनेवाला है, वह क्या शोभायमान अंगवाली इसी पर्वत भूमी में निवास करती है ?

(घूमकर तथा देखने पर)

यह क्या ! अंधकार हो गया ? हो जाए । बिजली के प्रकाश से इस पर्वत को भली भांति देखूंगा, यह क्या ! मेघ भी बिजली से खाली हो गया है ? यह क्या मेरे मन्दभाग्य का परिणाम है ? अच्छा इस पर्वत को विना देखे भी नहीं लौटूंगा ।

(तदनन्तर खण्डिका गीति)

(४८) अन्वयः—खुरखुरेति (प्रायः सीधे हैं) ।

व्याख्या—खरखुरेतिं । (अत्र वराहरूपेण राज्ञो वर्णनम्) खरैः प्रखरैः खुरैः दारिता मेदिनी येन सः, वनगहने अविचलः स्थिरः निजकार्योद्युक्तः लीनः कोलः सूकरः परिसर्पति भ्रमतीति पश्यत ।

अपि वनान्तरमल्पभुजान्तरा
श्रयति पर्वत पर्वसु सन्नता ।
इयमनङ्गपरिग्रहमङ्गला
पृथुनितम्ब ! नितम्बवती तव ? ॥ (४६)

कथं तूष्णीमेवास्ते ? शङ्के, विप्रकर्षात् न शृणोति, भवतु, समीपमस्य गत्वा पृच्छामि ।

(अनन्तरे चर्चरी)

फटिअ-सिलाअल-णिम्मल-णिज्झरु !
बहुविहकुसुमे बिरइअ सेअरु !
किण्णर-महुरुग्गीअ-मणोहरु !
देक्खावहि महु पिअअम महिअरु ! ॥(छ) (५०)

(छ) स्फटिक-शिलातल निर्मलनिर्झर !
बहुविधकुसुमैर्विरचितशेखर !
किन्नर-मधुरोद्गीत-मनोहर !
दर्शय मम प्रियतमां महीधर ! ॥

भावार्थ—घोरतम भवन में शूकरराज अपने प्रखर खुरों से भूमि को खोदते हुए घूम रहे हैं, यह वराह अपना काम सिद्ध करने में निःशंक तत्पर और निडर है ।

(४६) अन्वयः—अपीति । पृथुनितम्ब ! पर्वत ! अल्पभुजान्तरा पर्वसु सन्नता अनङ्गपरिग्रहमंगला इयं नितम्बवती तव वनान्तरम् अपि श्रयति ?

व्याख्या—हे पृथुनितम्ब । पर्वत ! अल्पं भुजयोरन्तरं वक्षःस्थलं यस्याः सा, पर्वसु संधिस्थलेषु सन्नता तथा अनङ्गस्य कामस्य परिग्रहः पत्नी तद्वत् मङ्गला सुलक्षणा-युक्ता इयं नितम्बवती सोर्वशी तव भवतो वनान्तरमपि श्रयति किम् ? द्रुतविलम्बितम्वृत्तम् ।

भावार्थ—हे विशाल नितम्बवाले पहाड़ ! देखो स्तनों की ऊंचाई के कारण जिस की छाती अल्प परिसर युक्त है (कमर छाती अंगों के जोड़ जिस के क्षीण हैं) जो काम-पत्नी रति के समान सुलक्षण तथा पृथु-नितम्बिनी है, इसी प्रकार लक्षणों से घटित सुन्दरी क्या इस वन के बीच आश्रय कर रही है ?

पर्वत तो चुपचाप ही है किन्तु दूर से मेरा बोलना इससे सुनाई नहीं देता, अस्तु । इसके पास जाकर कुछ पूछूं ।

(इस के पीछे चर्चरी गीत)

(५०) अन्वयः—स्फटिकेति । (इस के अन्वय प्रायः सीधे हैं)

(चर्चरिकया उपसृत्य अञ्जलिं बद्ध्वा)

सर्वक्षितिभृतां नाथ ! दृष्टा सर्वाङ्गसुन्दरी ।
रामा रम्ये वनान्तेऽस्मिन् मया विरहिता त्वया ? ॥ (५१)

(तथैव प्रतिशब्दं शृणोति । आकर्ण्य सहर्षम्)

कथं ! यथाक्रमं दृष्टेत्याह । भवतु अवलोकयामि ।

(दिशोऽवलोक्य सखेदम्)

कथं ! ममैवायं कन्दरान्तरविसर्पी प्रतिशब्दः ?

(इति मूर्च्छति । उत्थाय उपविश्य सविषादम्)

अहह ! श्रान्तोऽस्मि, यावदस्या गिरिनद्यास्तीरे तरङ्गवातमासेविष्ये ।

व्याख्या—(सुगम है)

भावार्थ—हे भूधरराज ! तुम्हारे स्फटिकमय पाषाण तल पर स्वच्छ निर्झर (झरने) शोभा पाते हैं, तुम्हारा शिखर प्रदेश भांति भांति के पुष्पों से विराजमान है, और किन्नरों के मधुर स्वर से गान करने पर तुम और भी सर्व प्रिय हो गए हो; तुम ने क्या मेरी प्रिया को देखा है ?

(चर्चरिका गीति द्वारा निकटवर्त्ती हो हाथ जोड़कर)

(५१) अन्वयः—सर्वेति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—सर्वेति । सर्वेषां क्षितिभृतां भूपालानां नाथः स्वामी तत्सम्बुद्धौ, त्वया अस्मिन् रम्ये सुन्दरे वनान्ते वनप्रदेशान्ते सर्वाङ्गसुन्दरी उर्वशीत्यर्थः दृष्टा ? किं तावदवलोकितेति ? मया राज्ञा सा विरहिताऽस्ति ।

भावार्थ—हे पर्वतों में श्रेष्ठ ! तुम ने क्या इस वन में मेरी सर्वाङ्ग सुन्दरी उर्वशी को देखा है ? मैं उसी के विरह में दुःखी होरहा हूं ।

(प्रतिध्वनि सुनकर आनन्द से)

इस ने तो क्रम क्रम से ही देखा है, जो हो, अब कहां देखूं ।

(चारों ओर देखकर सखेद)

अहो ! यह तो गुफा में फैली हुई मेरी बात की ही प्रतिध्वनि है ।

(मूर्च्छा और तुरन्त उठकर खेद के साथ)

अहह ! थक गया हूं—इस पहाड़ी नदी के किनारे की तरंगयुक्त वायु सेवन करूं ।

(द्विपदिकया परिक्रम्य अवलोक्य च)

इमां नवाम्बुकलुषां स्रोतोवहां पश्यता मया रतिरुपलभ्यते, कुतः ?—

तरङ्गभ्रूभङ्गा क्षुभित-विहग-श्रेणि-रसना
विकर्षन्ती फेनं वसनमिव संरम्भशिथिलम्।
यथा जिह्मं याति स्खलितमभिसन्धाय बहुशो,
नदीभावेनेयं ध्रुवमसहमाना परिणता॥ (५२)

भवतु, प्रसादयामि तावदेनाम्।

(अनन्तरे कुटिलिका)

पसिअ, पिअदमए! सुन्दरिए! णए!
खुहिअ-करुण विहङ्गमए णए।

(द्विपदिका गीति से परिक्रमण और देखकर)

नवीन जल के आने से कलकल करने वाली इस स्रोतस्विनी (नदी) को देखकर मुझ को परम सन्तोष उत्पन्न होता है क्योंकि—

(५२) अन्वय—तरङ्गेति। तरङ्गभ्रूभङ्गा-क्षुभितविहगश्रेणि-रसना संरम्भशिथिलं वसनमिव फेनं विकर्षन्ती इयं नदी बहुशः स्खलितम् अभिसन्धाय यथा जिह्मं याति तथा ध्रुवम् असहमाना नदीभावेन परिणता।

व्याख्या—तरङ्ग एव भ्रूभङ्गो यस्याः सा क्षुभितविहगश्रेण्य एव रसना काञ्ची यस्याः सा, तथा संरम्भेण संभ्रमेण शिथिलं स्खलितबन्धनं वसनमिव फेनं विकर्षन्ती इयं नदी बहुशः बहुवारम् स्खलितं यथास्यात्तथा अभिसन्धाय जिह्मं वक्रं याति, तथा ध्रुवं निश्चितमेव असहमाना कोपना सा उर्वशी नदीभावेन परिणता नदीत्वं प्राप्तेति तर्कयामि। शिखरिणी वृत्तम्।

भावार्थ—मेरी प्रिया उर्वशी इसी नदी के रूप में परिणत हो गई है, तरङ्गें ही उस की भ्रूभङ्गी हैं, तरंग के वेग से चंचल विहंग (पक्षी) श्रेणी ही काञ्ची स्वरूप है, फेनसमूह कोपवशतः शिथिल वस्त्र के समान है. कोप के कारण जैसे प्रियतमा वार २ टेढ़ी चाल चलती है, यह नदी भी वैसी चल रही है, अतएव निश्चय से प्रतीत होता है कि मेरे अपराध को न सह सकने पर अब वह नदी के रूप में परिणत हो गई है।

अो हो इस को प्रसन्न करूं—

(कुटिलिका नामक गीति)

सुरसरितीर-समूसुअ एणए
अलिउल-झङ्कारिए एणए ॥ (ज) (५३)

(तेन कुटिलिकान्तरे चर्चरी)

पुब्बदिसा-पवणाहअ-कल्लोलुग्गअ बाहुओ,
मेहअङ्गे णच्चइ सललिदं जलणिहि णाहओ।
हंस-रहङ्ग-सङ्ख-कुङ्कुम-किआभरणु,
करि-मअराउल-कसण-कमल-किआवरणु।
बेला-सलिलुब्बेल्लिअ-हत्थदिण्णु तालु,
ओत्थरइ दसदिसो रुन्धेइ णवमेहआलु ॥ (झ) (५४)

(ज) प्रसीद, प्रियतमे सुन्दरिके ! नदि ! क्षुभित-करुण विहङ्गमके नत्या।
सुरसरित्तीर-समुत्सुकैणके, अलिकुल-झङ्कारिते एनया ॥

(झ) पूर्वदिक्पवनाहत-कल्लोलोद्गत-बाहुको,
मेघाङ्गैर्नृत्यति सललितं जलनिधिनाथकः।
हंस-रथाङ्ग-शङ्ख-कुंकुमकृताभरणः,
करिमकराकुल- कृष्णकमल-कृतावरणः।
वेला सलिलोद्वेल्लित-हस्तदत्ततालः,
अवस्तृणाति-दशदिशो रुद्ध्वा नवमेघकालः ॥

---

(५३) अन्वय—प्रसीदेति (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—प्रसीदेति । क्षुभिताः करुणा विहङ्गमा हंसपिकादयो यस्यां तत्सम्बुद्धिः, सुरसरिद्रूपायास्तव तीरे समुत्सुका एणा मृगा यस्यास्तत्सम्बुद्धिः । अलि-कुल-झङ्कारिते ! भ्रमरकुलझङ्कारिते ! प्रियतमे ! सुन्दरिके ! नदि ! नदीभावापन्ने ! उर्वशि ! एनया नत्या अनेन पादपतनेन प्रसीद, मयि प्रसन्नासति जलरूपं त्यक्त्वा स्वरूपतो मत्समीपमागच्छ।

भावार्थ—हे प्रियतमे ! सुन्दरि ! नदीरूपे ! उर्वशि ! मेरे इस प्रणाम से प्रसन्न हूजिए, नदीरूपिणी तुम में हंस इत्यादि पक्षीगण चंचल होकर करुणस्वर से कूंजन करते हैं, गंगाजी के समान नदी रूपिणी तुम्हारे किनारे पर मृगगण विचरते हैं, और मकरन्द के लालच से भौंरे भी चारों ओर गुंजारते हैं।

(कुटलिका के पीछे चर्चरी)

(५४) अन्वयः—पूर्वदिगिति । (प्रायः सीधे हैं)

(चर्चरिकया उपसृत्य जानुभ्यां स्थित्वा)

त्वयि निबद्धरतौ प्रियवादिनि,
प्रणयभङ्ग-पराङ्मुख-चेतसि ।
कमपराधलवं मयि पश्यसि ?
त्यजसि मानिनि ! दासजनं यतः ॥ (५५)

व्याख्या—पूर्वदिगिति । पूर्वदिक्पवनेन आहतः कल्लोल एव उद्धृतबाहुः करो यस्य सः, जलनिधिनाथकः मेघाङ्गैः सह सललितं नृत्यति । जलनिधिनाथकमिदानीं वर्णयति—हंसादिभिः कृतं विहितम् आभरणं येन सः, करिभिः हस्तिभिः मकरैश्च आकुलं व्याप्तं कृष्णकमलं कृष्णजलमेव आवरणं यस्य सः, वेलासलिलानां वेला-समीपजलानां वेलास्यात्तीरनीरयो यत् उद्वेलितम् उल्लुण्ठनं तदेव हस्तदत्तः तालः यस्य सः, नवमेघकालः नवजलधरसमयः दशदिशः रुद्ध्वा अवस्तृणाति आच्छादयति ।

भावार्थ—जलनिधि नाथ के पूर्व दिशा से आती हुई वायु के वेग से ताड़ित होने पर जो कल्लोल उठती है, वही उसकी बाहु स्वरूप है, जलनिधि सुललित भाव से नृत्य कर रहा है, हंस, चक्रवाक, शंख, कुंकुम इत्यादि उस के गहने हैं, हाथी, मकर इत्यादि जन्तुगण नीलाञ्जल व्याप्त कर के अवस्थान करने के कारण वही मानो नीलवर्ण के उत्तरीयवस्त्र (डुपट्टा) स्वरूप हुआ है, जलराशि उफन कर जो वेला भूमी में टक्कर मारती है, वही करताली स्वरूप है, काले रंगवाले नूतन मेघ उदय होकर दशों दिशा ढक देने में जलनिधिनाथ इसी प्रकार नृत्य कर रहा है ।

(चर्चरी गीति के सहित निकटवर्ती हो दोनों घुटने टेककर)

(५५) अन्वयः—त्वयीति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—त्वयीति ! त्वयि निबद्धरतौ त्वय्येव गाढ़ानुरक्ते, प्रियवादिनि प्रणयस्य प्रीतेर्भङ्गात् पराङ्मुखं चेतोऽन्तःकरणं यस्मिन् मयि कम् अपराधलवं दोषलेशमपि पश्यसि, हे मानिनि ! यतो यस्मात् कारणात् दासजनं त्यजसि । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

भावार्थ—हे मानिनी ! मैं तुम में ही अत्यन्त आसक्त हूं, मैं सदा तुम्हारे निकट प्यारे वचन कहने में ही तत्पर रहता हूं, मेरा चित्त प्रीति तोड़ने में पराङ्मुख है, तो क्या मुझ में कोई अपराध देखा है ? जो कि इस दास को त्याग दिया है ।

कथं तूष्णीमेव आस्ते ? अथवा, परमार्थतः सरिदि न उर्वशी; अन्यथा, कथं पुरूरवसम अपहाय समुद्राभिसारिणी भवेत् ? अनिर्वेदप्राप्याणि श्रेयांसि, भवतु, तमेव उद्देशं गच्छामि, यत्र मे नयनयोः सा सुनयना तिरोहिता । (परिक्रम्य अवलोक्य च) इमं तावत् प्रियाप्रवृत्तये सारङ्गमासीनम अभ्यर्थये ।

अभिनव-कुसुम-स्तवकित-तरुवरस्य परिसरे,
मद्कल-कोकिल-कूजित-मधुप-झङ्कार-मनोहरे ।
नन्दनविपिने निजकारिणी-विरहानलेन सन्तप्तो,
विचरति गजाधिपतिरैरावतनामा ॥ (५६)

(गलितकः जानुभ्यां स्थित्वा)

कृष्णसारच्छविर्योऽयं दृश्यते काननश्रिया ।
नवशस्यावलोकाय कटाक्ष इव पातितः ॥ (५७)

यह क्या नदी तो चुपचाप ही रही है, अथवा वास्तव में यह नदी ही है, उर्वशी नहीं है ? अन्यथा पुरूरवा को छोड़कर समुद्र की अभिसारिणी क्यों होती ? बहुत ही कष्ट से कल्याण की प्राप्ति होती है । अस्तु, जिस स्थान पर सुलोचना दृक्पथ हुई है वहां जाता हूं । (परिक्रमण तथा अवलोकन करके) यह जो हरिण बैठा है, इस से ही प्यारी का सम्वाद पूछूं—

(५६) अन्वयः—अभिनवेति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—(स्पष्ट है)

भावार्थ—एरावत नामक गजराज अपनी हस्तिनी के विरहानल से संतप्त होकर नन्दनवन में विचरण करता है, मदमत्त कोकिला के कूजन और भौंरों की गुंजार से यह नन्दनवन मनोरम हो उठा है, और नये २ फूलों से सुशोभित मस्तक-वृक्ष-श्रेणी के द्वारा अत्यन्त मनोहरता धारण कर रहा है ।

(अनन्तर गलितकनामक अभिनय विशेष तथा घुटनों के बल से बैठकर)

(५७) अन्वयः—कृष्णसारेति (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—कृष्णसारेति । योऽयं कृष्णसारो मृगविशेषः तच्छविः दृश्यते, काननश्रिया वनलक्ष्म्या नवशस्य नवान्नस्य अवलोकाय दर्शनार्थं कटाक्ष इव पातितः ।

भावार्थ—यह तो कृष्णसार मूर्ति दिखाई देती है, इस से प्रतीत होता है कि मानों कानन लक्ष्मी नये अन्न को देखने के लिये कटाक्ष पात कर रही है ।

(विलोक्य)

अयमान्तिकमायान्तीं शिशुना स्तनपायिना ।
अनन्यदृष्टिस्तामेव मृगीं रुद्धां निरीक्षते ॥ (५८)

(चर्चरी)

सुरसुन्दरी जहणभरालअ पीणुत्तुङ्ग-घणत्थणी,
थिरजोब्बण तणुसरीरि हंसगइ ।
गअणुज्जल-काणणे मिअलोअणि ब्भमन्ते,
दिट्ठ तुए ? तहबिरह-समुद्दन्तरे उत्तराहि मं (अ)(५६)

(उपसृत्य अञ्जलिं बद्ध्वा) हंहो हरिणीपते !

(अ) सुरसुन्दरी जघनभरालसा पीनोत्तुङ्गघनस्तनी,
स्थिरयौवना तनुशरीरा हंसगतिः ।
गगनोज्ज्वलकानने मृगलोचना भ्रमन्ती,
दृष्टा त्वया ? तद्विरहसमुद्रान्तरादुत्तरय माम् ॥

(चारों ओर देख कर)

(५८) अन्वयः - अयमिति । (इस के अन्वय प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—स्तनपायिना पयःपायिना शिशुना पुत्रेण अन्तिकं समीपम् आयान्तीं तामेव मृगीं हरिणीं रुद्धाम् अयं कृष्णसारः अनन्यदृष्टिः निरीक्षते पश्यति ।

भावार्थ-स्तन पीनेवाले बच्चे के साथ एक हरिणी इधर चली आरही है, उपरोक्त कृष्णसार (मृग) एक टक दृष्टि से हरनी को ही देखता है।

(अनन्तर चर्चरी)

(५६) अन्वयः—सुरसुन्दरीति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या--(स्पष्ट है)

भावार्थ—जो सुरसुन्दरी (उर्वशी) है, जघन के भारसे जिस की चाल अलस है, जिसके दोनों स्तन पीनोन्नत और घन हैं, जो स्थिर यौवना है, जिसका शरीर दुबला और गति हंस की सी है, उस मृगनयनी प्यारी को क्या आकाश के समान निर्मल जङ्गल में विचरते हुए देखा है ? उसका समाचार मुझसे कहकर विरह के समुद्र से मेरा उद्धार करो ।

(पास पहुंच तथा हाथ जोड़कर) अहो हरिणीपते !

अपि दृष्टवानसि ? मम प्रियां वने,
कथयामि ते तदुपलक्षणं, शृणु ।
पृथुलोचना सहचरी यथैव ते,
सुभगा तथैव खलु सापि वीक्ष्यते ॥ (६०)

(विलोक्य)

कथमनादृत्य मद्वचनं कलत्राभिमुखं स्थितः ? सर्वथा उपपद्यते परिभवास्पदं विधिविपर्य्ययः । यावदन्यमवकाशमवगाहिष्ये ।

(परिक्रम्य अवलोक्य च)

हन्त ! दृष्टमुपलक्षणं तस्या मार्गस्य ।—
रक्तकदम्बः सोऽयं प्रियया घर्मान्तशंसि यस्येदम् ।
कुसुममसमग्रकेशर-विषममपि कृतं शिखाभरणम् ॥ (६१)

---

(६०) अन्वयः—अपीति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—हे हरिण ! मम प्रियां वने दृष्टवानसि, अपीति प्रश्ने ? ते तुभ्यं तदुपलक्षणं तस्याः चिन्हं कथयामि वर्णयामि, तत् शृणु, यथैव ते तव पृथुलोचना विशालनेत्रा सहचरी संगिनी तथैव सापि सुभगा उर्वशी खलु वीक्ष्यते। मंजुभाषिणी वृत्तम् ।

भावार्थ—हे हरिण ! क्या तुमने इस वन में मेरी प्रिया को देखा है ? उसका परिचय देता हूं, सुनो ! तुम्हारी सहचरी यह हरिणी जिस प्रकार विशालनयना है मेरी प्यारी भी निःसन्देह ऐसी ही है।

(देखकर)

यह हरिण तो मेरी बातका अनादर करके भार्य्या की ओर चला गया है, जब भाग्यका फेर होता है तब इसी प्रकार पराभवका पात्र होना पड़ता है। अतएव दूसरे उपायका कोई सहारा लेना चाहिए।

(परिक्रमण और दर्शन पूर्वक)

अहो ! प्यारी जिस रास्ते से गई है—उसका निशान मिल गया।

(६१) अन्वयः—रक्तकदम्ब इति । सोऽयं रक्तकदम्बः यस्य इदम् असमग्रकेशरविषममपि घर्मान्तशंसि कुसुमं प्रियया शिखाभरणं कृतम् ।

व्याख्या—सोऽयं रक्तानि रक्तवर्णानि कदम्बानि पुष्पविशेषाणि यस्य सः, यस्य इदम् असमग्रकेशरविषममपि असम्यक् प्रस्फुटितमपि घर्मस्य ग्रीष्मस्य अन्तं शंसति यत् कुसुमं पुष्पं प्रियया शिखाभरणं केशपाशालङ्करणं कृतं विहितम् । आर्य्या वृत्तम् ।

भावार्थ—यह जो लालरंग के कदम्बपुष्प खिले हैं, इससे ही जाना जाता है कि ग्रीष्मका अन्त होकर वर्षाका आविर्भूत हुआहै।

(परिक्रम्यावलोक्य च)

तत् किं नु खलु शिलाभेदगतं नितान्तरक्तमिदमवलोक्यते ?

प्रभालेपी, नायं हरिहत-गजस्यामिषलवः,
स्फुलिङ्गः स्यादग्नेर्गहनमभिवृष्टं पुनरिदम् ।
अये ! रक्ताशोकस्तवक-समरागो मणिरयं,
यमुद्धर्त्तुं पूषा व्यवसित इवालम्बितकरः ॥ (६२)

भवतु आदास्ये तावत् ।

(ग्रहणं नाटयति)

पणइणि-बद्धासाइओ,
बाहाउल-णिअ-णअणओ ।

(क्योंकि वर्षा काल में ही कदम्बनामक पुष्प विकसित हुआ करते हैं) यद्यपि तुरन्त के खिले होने से पूरे २ नहीं खिल सके हैं तो भी इन को प्रिया ने लेकर अपने सिरका आभूषण बनाया है ।

(परिक्रमण तथा चारों ओर देखकर)

शिलाभङ्ग के भीतर यह रक्तवर्ण क्या दिखाई देता है ?

(६२) अन्वयः--प्रभालेपीति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—प्रभालेपीति । प्रभया तेजसा लिम्पति व्याप्नोति तादृशः अयं हरिहतगजस्य सिंहमारितकरिणः अमिषलवः मासखण्डो न, अथवा अग्नेः वन्हेः स्फुलिङ्गः स्यात् ? इदं गहनं वनं पुनः अभिवृष्टं सद्यो वृष्टिधारासिक्तमेव प्रतीयते, अत एव अत्र वन्हिस्फुलिङ्गस्यासंभवः इत्यर्थः । अये ! अयं रक्ताशोकस्तवकेन रक्ताशोककुसुमगुच्छेन समः रागः यस्य तथाभूतः मणिः, यं मणिम् उद्धर्त्तुं भूमितो गृहीतुं पूषा सूर्य्यः अवलम्बितकरः सन् व्यवसितः कृतोद्योग इव (अस्तीतिशेषः) शिखरिणी वृत्तम् ।

भावार्थ—इस वस्तुने अपनी कान्ति द्वारा सब स्थानों को ही पीछे कर रक्खा है, यह तो सिंह से मारेहुए हाथी के मांस का टुकड़ा नहीं हैं, आग की चिनगारियां भी प्रतीत नहीं होतीं, क्योंकि अभी थोड़ी देर हुई कि वर्षा से यह स्थान गीला हो चुका है अरे ! यह तो लाल रंग अशोक स्तवक के समान एक मणि है; इस मणि को ग्रहण करने के लिये सूर्य्य ने मानो उठा लेने को अपने कर (किरणें) फैला दिये हैं ।

जो हो इस को ग्रहण करूं—

(मणिको लेता है)

गअवइ गहणे दुहिअओ,
परिब्भमइ किलामिअ-वअणओ ॥ (ट) (६३)
(द्विपदिकया उपसृत्य गृहीत्वा आत्मगतम्)
मन्दारपुष्पैरधिवासितायां।
यस्याः शिखायामयमर्पणीयः।
सैव प्रिया सम्प्रति दुर्ल्लभा मे
मैवैनमश्रूपहतं करोमि ॥ (६४)
(इति उत्सृजति)
(नेपथ्ये) वत्स ! गृह्यतां, वत्स ! गृह्यताम्। —
सङ्गमनीयो मणिरिह शैलसुता-चरण-रागयोनि-रयम्।
आवहति धार्य्यमाणः सङ्गममाशु प्रियजनेन ॥ (६५)

(ट) पणयिनी-बद्धाशार्दितको वाष्पाकुलनिजनयनकः।
गजपतिर्गहने दुःखितकः परिभ्रमति क्लान्त-वदनकः ॥

---

(६३) अन्वयः—प्रणयिनीति। (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—(सुगम है)

भावार्थ—प्यारी के मिलने की अधिक उत्कण्ठा रखने से कातर वाष्पाकुल नेत्र मलीन मुखवाला गजाधिप दुःखी होकर घने जङ्गल में फिरता है।

(द्विपदिका गीति के साथ निकटवर्ती होकर मणिग्रहण पूर्वक स्वगत)

(६४) अन्वयः—मन्दारेति (प्रायः सीधे ह)

व्याख्या—मन्दारेति। यस्याः मन्दारपुष्पैः तदाख्यकल्पवृक्षपुष्पैः अधिवासितायां सौगन्ध्यां शिखायाम् अयं मणिः रत्नविशेषः अर्पणीयः। संम्प्रति इदानीं सैव मे मम प्रिया उर्वशी दुर्लभा दुष्प्राप्या, अत एनं मणिं मैव अश्रूपहतं वाष्पदूषितं करोमि। इन्द्रवज्रा वृत्तम्।

भावार्थ—प्रियतमा के मन्दारपुष्परचित केशवेणी में यह मणि धारने योग्य है। जब वह प्यारी ही मेरे पक्ष में दुर्लभ है तब फिर मैं क्योंकर अश्रुपात से इस मणि को दूषित करूं।

(मणि को छोड़ देता है)

(नेपथ्य में) वत्स ! ग्रहण करो !! पुत्र ! ग्रहण करो !!

(६५) अन्वयः—सङ्गमनीय इति (प्रायः सीधे हैं)

राजा—(ऊर्ध्वमवलोक्य) को माम् अनुशास्ति ? (विलोक्य) कथं भगवान् मृगराजधारी ? भगवन् ! अनुगृहीतोऽहम् अमुना उपदेशेन (मणिमादाय) हंहो सङ्गमम‍णे !—

तया विमुक्तस्य निमग्नमध्यया,
भविष्यसि त्वं यदि सङ्गमाय मे ।
ततः करिष्यामि भवन्तमात्मनः,
शिखामणिं बालमिवेन्दुमीश्वरः ॥ (६६)

(परिक्रम्य अवलोक्य च) तत् किं खलु कुसुमरहितामपि लतामिमां पश्यता मया रतिरुपलभ्यते ? अथवा स्थाने मम मनो रमते, इयं हि:—

व्याख्या—सङ्गमनीय इति । इह अत्र अयं शैलसुताचरणरागयोनिः पार्वतीचरणकमलरागसंभूता सङ्गमनीयस्तदाख्यो प्रियजनेन मणिः धार्य्यमाणः अङ्गेषु गात्रेषु परिहितः सन् आशु शीघ्रं सङ्गमं मेलनं आवहति करोति । आर्य्या वृत्तम् ।

भावार्थ—इस का नाम संगमनीयमणि है, गिरिनन्दनी (पार्वती) के चरणों से यह उत्पन्न हुई है, इसको धारण करने से शीघ्र ही प्रियजन के साथ मिलना होता है ।

राजा—(ऊपर की ओर देख कर) मुझ को कौन उपदेश देता है ? (देखकर) यह क्या ? भगवान् चन्द्रदेव ? भगवन् ! मैं इस उपदेश से अनुगृहीत हुआ हूं, (मणि को लेकर) अहो ! संङ्गममणे !

(६६) अन्वयः—तयेति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—तयेति । निमग्नमध्यया अतिसूक्ष्मावलग्नया तया विमुक्तस्य मे यदि सङ्गमाय त्वं (मणिः) भविष्यसि, ततः भवन्तं त्वां आत्मनः ईश्वरः महादेवः बालमिन्दुमिव बालचन्द्रमिव शिखामणिं करिष्यामि, यथा ईशः चन्द्रकलां धारयति तथा अहमपि शिखामणिं धारणं करिष्यामि । वंशस्थविलं वृत्तम् ।

भावार्थ—मुझ को उस दुबली कमरवाली प्रिया ने अब त्याग दिया है, तुम भी मुझे उस के मिलने के लिये साथ दो, महादेव ने जिस प्रकार चन्द्रदेव को अपने मस्तक में रक्खा है, मैं भी उसी प्रकार तुम को रक्खूंगा ।

(परिक्रमण और अवलोकन पूर्वक) यह जो लता दीख रही है, यद्यपि इस पर अभी फूल नहीं है किन्तु तो भी इस के देखने से मेरे हृदय में प्रसन्नता होती है । अथवा मेरा मन जो इस में अब आसक्त है, तो यह युक्ति संगत है ।

तन्वी मेघजलार्द्र-पल्लवतया धौताधरेवाश्रुभिः,
शून्येवाभरणैः स्वकाल-विरहाद्विश्रान्त-पुष्पोद्गमा ।
चिन्तामौनमिवास्थिता मधुलिहां शब्दैर्विना लक्ष्यते,
चण्डी मामवधूय पादपतितं याता प्रकुप्येव सा ॥ (६७)
यावदस्यां प्रियानुकारिण्यां लतायां परिष्वङ्गप्रणयी भवामि ।
लए ! देक्ख विरणहिअए भवामि,
जइ विहिजोए पुणु तहिं पाविमि ।
ता रण्णेविण करेमि णिब्भन्ति,
पुणु णइ मेल्लइ ताइ कअन्तीम् ॥ (ठ) (६८)

(ठ) लते ! प्रेक्षस्व विन्नहृदयो भवामि,
यदि विधि योगेन पुनस्त्वां प्राप्नोमि ।
तदारण्येऽपि न करोमि निर्भ्रान्ति
पुनर्नहि प्रवेशयामि तां कृतान्ताम् ॥

---

(६७) अन्वयः—तन्वीति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—तन्वीति । तन्वी क्षीणा मेघजलार्द्रपल्लवतया वर्षाजलार्द्रपल्लवतया अश्रुभिः नयनजलैः धौताधरेव क्षालिताधरेव स्वकालविरहात् वसन्तसमयाभावात् विश्रान्तः पुष्पोद्गमो यस्या, अतएव आभरणैः अलङ्कारैः शून्येव, मधुलिहां भ्रमराणां शब्दैः विना चिन्ता मौनं आस्थिता तूष्णीं स्थितेव, अतएव प्रकुप्य पादपतितं चरणनिपतितं माम् अवधूय तिरस्कृत्य याता पलायिता, चण्डी कोपना सा उर्वशी इव लक्ष्यते । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ।

भावार्थ—इस कृशाङ्गी लतिका के पल्लव मेघके जल से गीले होने पर जाना जाता है कि मानो अश्रुधारा द्वारा होंठ धुल गये हैं । पुष्पोत्पत्तिका उपयुक्त समय में उपस्थित न होने से फूल नहीं खिले हैं, इसलिये आभूषण हीन मालूम होती है । जो कि फूल नहीं हैं इसलिये भ्रमर भी उपस्थित नहीं हुए, भौंरों की गूंज न होने से मालूम होता है कि मानो चिन्ता सागर में डूबी जाती है, मेरे पैर परने पर कोपवती मेरी प्रिया रोष से जिस प्रकार मेरा निरादर करके चली जाती है, यह लतिका भी वैसे दिखाई पड़ती है (मानो मुझको बोध होता है कि मेरी प्रिया इस लतिका के रूपमें अवस्थान करती है)

इस लिये इस प्रियतमा का अनुसरण करने वाली लतिका का आलिंगन करूं ।

(६८) अन्वयः—लतेति । (प्रायः सीधे हैं)

(इति चर्चरिकया उपसृत्य लतामालिङ्गति । ततस्तदीयस्थमाक्रम्यैव प्रविष्टा उर्वशी)

राजा—(निमीलिताक्षः स्पर्शं नाटयित्वा) **अये ! उर्वशीगात्रस्पर्शादिव निर्वृतं मे हृदयम् । न पुनरस्ति विश्वासः । कुतः ?—**

समर्थये यत् प्रथमं प्रियां प्रति
क्षणेन तन्मे परिवर्त्ततेऽन्यथा ।
अतो विनिद्रे सहसा विलोचने,
करोमि न स्पर्श-विभावित-प्रियः ॥ (६६)

(शनैरुन्मील्य चक्षुषी) **कथं सत्यमेव उर्वशी ?**

व्याख्या—(सुगम है)

भावार्थ—**हे लतिके ! देखो यदि मैं प्रारब्ध से तुझे पाजाऊं तो मेरा हृदय स्वस्थ हो; फिर मुझे इस वन में ऐसा न घूमना पड़े और फिर मैं अपने जीवन अन्त को करने वाली प्रिया को इस वन में नहीं घुसने दूंगा ।**

(यह कह कर चर्चरिका गीति से दोनों लतिकाओं को आलिंगन करता है)

(उसी स्थान को आक्रमण करके उर्वशी का प्रवेश)

राजा—(नेत्रों को बन्द करके स्पर्श नाटय द्वारा) **अरे ! उर्वशी के अंग को छूने से जिस प्रकार आनन्द प्रतीत होता है** (इस लतिका के छूने से भी मुझे वैसे आनन्द का संचार होता है) **किन्तु फिर भी विश्वास उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि:—**

(६६) **अन्वयः**—समर्थये इति । यत् प्रथमं प्रियां प्रति समर्थये, तत् क्षणेन मे अन्यथा परिवर्त्तते, अतः स्पर्शविभावितप्रियः सहसा विलोचने विनिद्रे न करोमि ।

व्याख्या—यत् किञ्चिद्वस्तु प्रथमम् आदौ प्रियाम् उर्वशीं प्रति समर्थये, तत् तद्वस्तु क्षणेन अन्यथा अन्यरूपेण मे परिवर्त्तते, अतोऽस्मात्कारणात् स्पर्शेन विभाविता अनुमिता प्रिया येन एवम्भूतोऽहं विलोचने नेत्रे सहसा शीघ्रं विनिद्रे उन्मीलिते न करोमि । वंशस्थविलं छन्दः ।

भवार्थ — **मैंने पहले जिसको प्रिया समझा था, वह मुहूर्त्तभर में ही दूसरे रूप में बदल गई थी । अतएव स्पर्श मात्र से प्रणयिनि जानकर दोनों आखें मीचली हैं । अब इस को एकाएक नहीं खोलूंगा**

(धीरे २ दोनों आंखें खोल कर) **यह तो सत्य ही उर्वशी है ।**

(इति मूर्च्छितः पतति)

उर्व—समस्ससदु समस्ससदु महाराओ। (ड)

राजा—(संज्ञां लब्ध्वा) प्रिये! अद्य जीवितम्।

त्वद्वियोगभवे चण्डि! मया तमसि मज्जता।
दिष्ट्या प्रत्युपलब्धासि चेतनेव गतासुना॥ (७०)

उर्व—मरिसदु महाराओ, जं मए कोबवसं गदाए अवत्थन्तरं प्पाबिदो महाराओ। (ढ)

राजा—नाहं प्रसादयितव्यस्त्वया, त्वद्दर्शनेन प्रसन्नो मे सबाह्यान्तरात्मा, तत् कथय, कथमियन्तं कालं मया विरहिता स्थितासि?

(अनन्तरे चर्चरी)

मोरा-परहुअ-हंस-रहङ्ग,
अलि-गअ-पब्बअ-सरिअ-कुरङ्गम।

(ड) समाश्वसितु समाश्वासितु महाराजः।

(ढ) मर्षयतु महाराजो यत् मया कोपवशं गतया अवस्थान्तरं प्रापितो महाराजः।

(मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरता है)

उर्वशी—महाराज! सावधान हूजिये, सावधान हूजिये।

राजा—(सचेत होकर) प्रियतमे! इस समय मैं पुनः जीवित हुवा।

(७०) अन्वयः—त्वदिति। (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—त्वदिति। चण्डि! कोपने! त्वद्वियोगभवे तव विरहादुत्पन्नेः तमसि मोहे मज्जता दिष्टामुत्पुण्योदयेन भोग्येनेत्यर्थः। गतासुना मृतेन चेतना इव चैतन्यं प्रत्युपलब्धाऽसि प्राप्तासि। अनुष्टुप्छन्दः।

भावार्थ—हे चण्डि! मैं तुम्हारे विरह से अन्धकार में डूब गया था; सो मरा हुआ पुरुष जिस प्रकार चेतना प्राप्त करता है मैंने भी सौभाग्य से उसी प्रकार तुम्हें पाया है।

उर्वशी—महाराज! क्षमा कीजिये मैंने रोष से आप को अन्य-प्रकार अवस्था में छोड़ दिया था।

राजा-तो अब मुझे प्रसन्न करना नहीं पड़ेगा, तुम्हारा दर्शन करते ही मेरा अन्तरात्मा तथा बहिरात्मा प्रसन्न हुआ है, अब कहो कि मुझ को छोड़ कर इतने दिन तुम अन्यत्र क्यों रही थी।

(अनन्तर चर्चरि गीति)

तुज्झह कारणा रणणं भमन्ते,
को ण हु पुच्छिअ मए रोअन्ते ॥ (ण) (७१)

उर्व—एव्वं अन्तक्करण-पच्चक्खीकिद वुत्तन्तो महाराओ । (त)

राजा—प्रिये ! अन्तःकरणमिति न खलु अवगच्छामि ।

उर्व—सुणादु महारओ । पुरा भअवदा महासेणेण सास्सदं कुमारव्वदं गेह्निअ, अअं सअलकलुसो णाम गन्धमादणकच्छो अज्झासिदो, किदा अ ट्ठिदी । (थ)

राजा—कीदृशी ?

उर्व—जा किल इत्थिआ इमं प्पदेसं आगमिस्सदि सा लदाभाए परिणदरूआ भविस्सदि, गोरीचरण-राअसम्भवं मणिं वज्जिअ अ लदाभावं ण मुंचिस्सदि त्ति । तदो अहं गुरुसाव-समूढहिअआ बिसुमरिद-देवदा-णिअमा कण्णआजण-परिहरणीअं कुमारवणं प्प-

(ण) मयूर-परभृत-हंस-रथाङ्गम्,
अलि-गज-पर्वत-सरित कुरङ्गम् ।
तव कारणादरण्ये भ्रमता,
को न खलु पृष्टो मया रुदता ॥

(त) एवमन्तः करण-प्रत्यक्षीकृतवृत्तान्तो महाराजः ।

(थ) शृणोतु महाराज , पुरा भगवता महासेनेन शाश्वतं कुमारव्रतं गृहीत्वा अयं सकलकलुषो नाम गन्धमादनकच्छोऽध्यासितः कृता च स्थितिः ।

(७१) अन्वयः—मयूरेति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—(स्पष्ट है)

भावार्थ—'तुम्हारे वियोग से भ्रमण करते २ मैंने मोर-हंस-चक्रवाक, भ्रमर, गजराज, पर्वत, नदी और मृग इन सब में किसी से तुम्हारा सम्वाद नहीं पूछा ।

उर्वशी—इसी प्रकार से महाराजके अन्तःकरण को देखा गया है।

राजा—प्रिये ! 'अन्तःकरण' इस बातको तो मैं कुछ भी नहीं समझ सका ।

उर्वशी—महाराज ! सुनिये पूर्वकाल में भगवान् कीर्तिकेय ने 'शाश्वत-कुमारव्रत' ग्रहण पूर्वक सर्वपापनाशक इस गन्धमादन प्रान्त में आकर अवस्थान किया था ।

राजा—किस प्रकार से ?

विट्ठा प्पवेसाणन्तरं अ काणणोबन्तवत्तिणा लदाभाएण परिणदं मे रूअम्। (द)

राजा—प्रिये! सर्वमुपपन्नम।

रतिखेदसुप्तमपि मां शयने या मन्यसे प्रवासगतम।
सा त्वमिहैतदवस्थं कथं सहेथाश्चिरवियोगम? (७२)

इदश्चैतत् यथा-कथितं संगमनिमित्तं पुनरुपलब्धप्रभावमस्माभिः।

(इति मणिं दर्शयति)

(द) या किल स्त्री इमं प्रदेशमागमिष्यति सा लताभावे परिणतरूपा भविष्यति; गौरीचरणरागसम्भवं मणिं वर्जयित्वा च लताभावं न मोक्ष्यतीति। ततोऽहं गुरुशापसंमूढहृदया विस्मितदेवतानियमा, कन्यकाजनपरिहरणीयं कुमारवनं प्रविष्टा; प्रवेशानन्तरञ्च काननोपान्तवर्तिना लताभावेन परिणतं मे रूपम्।

उर्वशी—जो कोई रमणी इसी स्थान पर आवेगी, उसीको लतिकारूप में परिणत होना पड़ेगा, गौरी के चरण राग से उत्पन्न मणिके अतिरिक्त उसके छुटकारे का कोई और दूसरा उपाय नहीं है, मैं गुरुदेव के शापवश विमुग्ध होकर उस देव नियम को भूल गई थी, और नारीजनों के त्याग देने योग्य इस कुमार वन में चली आई थी, फिर वनप्रान्त में मेरे अङ्ग लतारूप में परिणत हो गए।

राजा—प्रियतमे! सब ही ठीक है।

(७२) अन्वयः—रतिखेदेति। या शयने रतिखेदसुप्तमपि मां प्रवासगतं मन्यसे, सा त्वं इह एतदवस्थं चिरवियोगं कथं सहेथाः?

व्याख्या—या त्वं शयने शय्यायां रतिखेदात् संभोगक्रीडोद्भवपरिश्रमात् सुप्तमपि मां पुरूरवसं विदेशगतं मन्यसे जानासि, सा त्वं इह अस्मिन् निर्जने वने एतदवस्थं चिरवियोगं चिरविरहं कथं सहेथाः? आर्या वृतम्।

भावार्थ—मेरे रतिजनित परिश्रम से शय्यापर सो जाने पर भी तुम मुझको विदेश में गया हुआ जानती थी, अत एव इस वन में ऐसी अवस्था में पड़कर तुमने मेरा चिरविरह कैसे सहन कियाथा?

यह देखो—यही मणि ही हमारे पुनः समागम का कारण है। इस की शक्ति को अब प्रत्यक्ष ही देख लिया है।

(मणि को दिखाता है)

उर्व—कधं अम्हो ! सङ्गमणीओ अअं मणी ? अदोज्जेव महाराएण आलिङ्गिदोज्जेव प्पइदित्थम्हि संवुत्ता ! (ध)

राजा—(ललाटे मणिं सन्निवेश्य)

स्फुरता विच्छुरितमिदं रागेण मणेर्ललाट-निहितस्य ।
श्रियमुद्वहति मुखं ते बालातप-रक्तकमलस्य ॥ (७३)

उर्व—प्पिअंवद ! महन्तो क्खु कालो अम्हाणं पइट्ठाणादो णिग्गदाणं, कदाइ असूइस्सन्ति प्पइदीओ अम्हाणम । ता एहि गच्छम्ह । (न)

राजा—यदाह भवती । (इति उत्तिष्ठतः)

उर्व—अध, कधं उण महाराओ गन्तुं इच्छदि ? (प)

(ध) कथम् आश्चर्य्यम् ! सङ्गमनीयोऽयं मणिः ? अत एव महाराजेन आलिङ्गितैव प्रकृतिस्थाऽस्मि संवृत्ता !

(न) प्रियंवद ! महान् खलु कालः आवयोः प्रतिष्ठानात् निर्गतयोः, कदाचित् असूयिष्यन्ति प्रकृतय आवाभ्याम् तदेहि गच्छावः ।

(प) अथ, कथं पुनर्महारजो गन्तुमिच्छति ?

उर्वशी—अहो ! आश्चर्य है, यह तो सङ्गमनीय मणि है, इस निमित्त महाराज ने मुझे ज्यों ही आलिङ्गन किया, तो मैं वैसे ही प्रथमावस्था को प्राप्त होगई ।

राजा—(उर्वशी के ललाट में मणि को रख कर)

(७३) अन्वयः—स्फुरितेति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—ललाटनिहितस्य मस्तकस्थितस्य मणेः स्फुरता रागेण इदं ते तव मुखम् आननं बालातप-रक्तकमलस्य श्रियं शोभाम् उद्वहति धारयति । आर्य्या वृत्तम् ।

भावार्थ—ललाटस्थापित मणि की समुज्वल किरणों द्वारा माला से तुम्हारे मुख मण्डलने परिव्याप्त होने के कारण मानों तरुण अरुण किरणों द्वारा लालरंग के कमल की शोभा को धारण करती हुई विराजमान है ।

उर्वशी—हे प्रियबोलने वाले ! बहुत दिन हुए मैं प्रतिष्ठान नगर से बाहिर निकली हूं, सुतरां प्रजा असूया के वशीभूत होसकती है, अत एव चलिये शीघ्र हम वहां जाएं ।

राजा—प्रियतमे ! जैसी तुम्हारी इच्छा । (यह कहकर उठना)

उर्वशी—महाराज ! किस भाव से आप जाना चाहते हैं !

राजा—अचिरप्रभा-विलसितैः पताकिना,
सुरकार्मुकाभिनव-चित्र-शोभिना।
गमितेन खेलगमने! विमानतां
नय मां नवेन वसतिं पयोमुचा॥ (७४)
प्पाविअ-सहअरि-सङ्गओ पुलअ-प्पसाहिअ-अङ्गओ।
सेच्छा-प्पत्त-विमाणओ विहरइ हंस जुआणओ॥ (फ) (७५)
(इति खण्डधारया निष्क्रान्तौ)

चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः।

(फ) प्राप्त-सहचरी-सङ्गकः पुलकप्रसाधिताङ्गकः।
स्वेच्छा-प्राप्तविमानको विहरति हंसयुवकः॥

राजा-(७४) अन्वयः—अचिरेति। खेलगमने! अचिरप्रभाविलसितैः पताकिना सुरकार्मुकाभिनवचित्रशोभिना विमानतां गमितेन नवेन पयोमुचा वसतिं मां नय।

व्याख्या—हे खेलगमने! हे सलीलगमने! अचिरप्रभाविलसितैः पताकिना अचिरप्रभाविद्युद्विलसितैः केतुमता सुरकार्मुकं देवधनुरेव अभिनवं नूतनं चित्रं आलेख्यं तेन शोभिना शोभमानेन विमानतां गमितेन विमानत्वं प्रापितेन नवेन पयोमुचा नवमेघेन वसतिं गृहं मां नय प्रापय। मञ्जुभाषिणी वृत्तम्।

भावार्थ—हे ललितगामिनि? विद्युतविलास-पताका-युक्त इन्द्रधनुरूप नूतनचित्रशोभा सम्पन्न नवीन मेघको विमानस्वरूप करके मुझको वासस्थान में लेचलो।

(७५) अन्वयः—प्राप्तेति। (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—प्राप्तसहचरीसङ्गकः अधिगतसहचरीमिलापः पुलितप्रसाधिताङ्गकः पुलकितभूषितगात्रकः स्वेच्छयैव प्राप्तं विमानं यानं येन, यद्वा स्वेच्छया भगवदिच्छया प्राप्तः अधिगतः मानः प्रियासङ्गालिङ्गनादिजन्यः समानो येन, हंसयुवकः विहरति भ्रमति।

भावार्थ—हंसयुवक सहचरीके सहित मिलित और पुलकितशरीर होकर इच्छानुसार प्राप्तहुए विमानपर चढ़कर भ्रमण करता है।

(यह खण्डधारा गान करते २ दोनोंका जाना)

समाप्तोऽयश्चतुर्थोऽङ्कः।



अथ पञ्चमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति हृष्टो विदूषकः)

विदू—ही ही भो भो ! दिट्ठिआ चिरस्स कालस्स उव्वसीसहाओ तत्थभवं राआ णन्दण-वण-प्पमुहेसुं प्पदेसेसुं विहरिअ प्पडिणिउत्तो णअरं; दाणीं सकज्जाणुसासणे प्पइदिमण्डलं अणुरज्जअन्तो रज्जं करेदि । आं ! सन्ताणअं वज्जिअ ण से किम्पि सोअणीअं, अज्ज तिधिविसेसो त्ति भअवदीणं गङ्गा-जउणाणं सलिलेसुं देईए सह किदाहिसेओ सम्पदं उअआरिअं प्पविट्ठो; ता जाव अलङ्करणीअ-माणस्स अङ्गाणुलेअण-मल्लभाई भादुओ होमि । (क)

(क) ही ही भो भो ! दिष्ट्या चिरस्य कालस्य उर्वशीसहायस्तत्रभवान् राजा नन्दनवन-प्रमुखेषु प्रदेशेषु विहृत्य प्रतिनिवृत्तो नगरम्; इदानीं स्वकार्य्यानुशासने प्रकृतिमण्डलमनुरञ्जयन् राज्यं करोति; आं ! सन्तानकं वर्जयित्वा नास्य किमपि शोचनीयम्; अद्य तिथि-विशेष इति भगवत्योर्गङ्गायमुनयोः सलिलेषु देव्या सह कृताभिषेकः साम्प्रतमुपकारिकां प्रविष्टः, तद् यावदलङ्क्रियमाणस्याङ्गानुलेपनमाल्यभोगी भ्राता भवामि ।

(आनन्द से फूले हुए विदूषक का प्रवेश)

विदू—ही ही भो भो ! सौभाग्य से माननीय महाराज उर्वशी समेत नन्दन वनादि बहुत से स्थानों में विहार कर अपनी राजधानी में आये हैं । अब वे अपने कार्य्य में तत्पर होकर प्रजागण का चित्त प्रसन्न करते हुए राज्यशासन करते हैं । इस समय संतान के विना और उन्हें किसी प्रकार का शोक नहीं है । आज तो वैसे भी कोई विशेष तिथि प्रतीत होती है, कारण कि महाराज ने देवी के साथ भगवती गंगा तथा यमुना के संगम में स्नान करके पटवास गृह में उपकारार्थ प्रवेश किया है । इस समय वे भी गहनों से विभूषित हुई हैं—अतएव मुझे वहाँ पहुँच कर अंगानुलेपन तथा माल्य भोगी भाई बनना चाहिये ।

(नेपथ्ये हद्धी ! हद्धी ! एसो जलन्त रत्त-तालबेण्टपिधाणं णिक्खिविअ णीअमाणो अच्छरा-बिरहिदेण मउलिरअणदाए प्पओइदो मणी आमिससङ्किणा गिद्धेण आक्खित्तो (ख)

विदू—(आकर्ण्य) अच्चाहिदं अच्चाहिदं परम बहुमदो क्खु सो बअस्सस्स सङ्गमणीओ णाम चूड़ामणी, अदो क्खु असमत्तणेवच्छो ज्जेब तत्तभवं आसणादो ज्जेव उत्थिदो, ता पासपलिबत्ती होमि। (ग)

(इति निष्क्रान्तः। प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति राजा सूतः कञ्चुकि-रेचकौ परिजनश्च)

राजा—रेचक ! रेचक !

आत्मनो बधमाहर्त्ता कासौ विहग-तस्करः।
येन तत्प्रथमं स्तेयं गोप्तुरेव गृहे कृतम ? ॥ (१)

(ख) हा धिक् ! हा धिक् ! एष ज्वलन् रक्ततालवृन्तपिधानं निक्षिप्य नीयमानोऽप्सरो विरहितेन मौलिरत्नतायां प्रयोजितो मणिः आमिषशङ्किना गृध्रेण आक्षिप्तः।

(ग) अत्याहितम्, अत्याहितम्, परमबहुमतः खलु स वयस्यस्य सङ्गमनीयो नाम चूड़ामणी; अतः खलु असमाप्तनेपथ्य एव तत्रभवान् आसनादेव उत्थितः तत् पार्श्वपरिवर्त्ती भवामि।

(नेपथ्य में)—हा धिक् ! धिक् ! उर्वशी रहित महाराज जब अपने ललाट में मणि को स्थापित कर रहे थे, तब वह उज्ज्वल मणि रक्तवर्ण के तालवृन्त से ढ़क रही थी—दुर्वृत्त गृध्र माँस का टुकड़ा जान उसे खेंच कर ले गया है।

विदू—(सुनकर) यह तो बहुत ही कठोर घटना हुई है। वह संगमनीय मणि सखा की अत्यन्त ही प्रिय वस्तु है। (उसके हरण हो जाने से) महाराज वेशभूषा के ठीक होते न होते ही आसन से उठे हैं—इस कारण मुझे भी उनका पार्श्ववर्त्ती सहचर होना चाहिये।

(प्रस्थानान्तर प्रवेशक)

(राजा-सूत, कंचुकी, रेचक, (किरात) और परिजनगणों का प्रवेश)

राजा—रेचक ! रेचक !

(१) अन्वयः—आत्मन इति। असौ आत्मनो बधमाहर्त्ता विहगतस्करः क ? येन गोप्तुरेव गृहे तत्प्रथमं स्तेयं कृतम् ?

किरातः—एसो अग्गमुह-लग्ग-हेमसूत्तेण मणिणा अणुरज्जअन्तो विअ आआसं परिब्भमदि। (घ)

राजा—पश्यामि एनम्।—

असौ मुखालम्बित-हेमसूत्रं
बिभ्रन्मणिं मण्डल- शीघ्रचारः।
अलात-चक्र-प्रतिमं विहङ्ग-
स्तद्राग-लेखा-वलयं तनोति ॥ (२)

कथय, किं खलु अत्र कर्त्तव्यम्?

विदू—(उपेत्य) भो! अलं एत्थ घिणाए; एसो अवराही सासणीओ। (ङ)

(घ) एषोऽग्रमुखलग्न-हेमसूत्रेण मणिना अनुरञ्जयन्निव आकाशं परिभ्रमति।

(ङ) भो! अलमत्र घृणाया, एषोऽपराधी शासनीयः।

व्याख्या—असौ सः आत्मनः वधम् आहर्त्ता वध्यः विहगतस्करः खगचौरः क? येन विहगतस्करेण गोप्तुरेव पालकस्यैव गृहे आलये तदेव प्रथमं स्तेयं चौर्य्यं कृतम्? अनुष्टुप् छन्दः।

भावार्थ—वह पक्षी चोर कहाँ है? उसने तो अपनी देह को छोड़ने का प्रयत्न स्वयं ही किया है? क्योंकि उसने पहिले तो रक्षक के घर में चोरी की है न?।

किरात—यह देखिये—उसके मुख के अग्रभाग (चोंच) में मणि मध्यस्थ स्वर्ण-सूत्र लटका हुआ प्रतीत होता है। उस मणि की किरण माला से आकाश मानों रञ्जित करते २ घूम रहा है।

राजा—उसे देख लिया है।

(२) अन्वयः—असाविति। मुखालम्बितहेमसूत्रं मणिं बिभ्रत् मण्डलशीघ्रचारः असौ विहङ्गः अलातचक्रप्रतिमं तद्रागलेखावलयं तनोति।

व्याख्या—मुखे आलम्बितं प्रथितं हेमसूत्रं यस्य तं तथाभूतम्, मणिं रत्नं बिभ्रत् धारयन् मण्डलैस्तदाकारभ्रमणैः शीघ्रं चारो गतिर्यस्य असौ विहंगः अलातं ज्वलत्काष्ठं तस्य चक्रम्, तत्प्रतिमं तत्सदृशम्, तस्य मणेः रागलेखा तस्या वलयं मण्डलं तनोति जनयति। उपजातिर्वृत्तम् ॥

भावार्थ—उसकी चोंच में सोने का तार लटक रहा है। यह पक्षी चक्र की तरह आकार वाले प्रज्वलित अंगारे की मानन्द मण्डलाकार में घूमता हुआ रक्तवर्ण रेखा वलय विस्तार करता है।

बताइये—इस समय क्या करना चाहिये?

विदू—(निकट आकर) अब करुणा का समय नहीं, इस अपराधी

राजा—सम्यगाह भवान्; धनुर्धनुस्तावत् ।

परिजनः—जं भट्टा अएणवेदि । (च)

(इति निष्क्रान्तः)

राजा—न दृश्यते हि विहगाधमः ।

विदू—इदो इदो दक्खिणन्तरेण चलिदो सउणहदासो । (छ)

राजा—(दृष्ट्वा) इदानीम् ।—

प्रभापल्लवितेनासौ करोति मणिना खगः ।
अशोकस्तवकेनेव दिङ्मुखस्यावतंसकम् ॥ (३)

यवनी—(धनुर्हस्ता प्रविश्य) भट्टा! एदं ससचावम् । (ज)

राजा—किम् इदानीं धनुषा? बाणपथातीतः क्रव्यभोजनः ।

(च) यत् भर्त्ता आज्ञापयति ।

(छ) इत इतो दक्षिणान्तरेण चलितः शकुनहताशः ।

(ज) भर्त्तः ! इदं सशरं चापम् ।

को दण्ड ही देना उचित है ।

राजा—तुमने उचित कहा है, धनुष ! धनुष कहां है ?

परिजन—महाराज की जैसी अनुमति हो ।

(परिजन का प्रस्थान)

राजा—अब तो वह दिखाई नहीं देता ।

विदू—इधर देखिये, वह पक्षी दक्षिण दिशा की ओर चला जारहा है ।

राजा—(देख कर) अब तो:—

(३) अन्वयः—प्रभापल्लवितेनेति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—असौ खगः विहगः मणिना प्रभया द्युत्या पल्लवि-तेन विस्तृतेन, अशोकस्तवकेनेव दिङ्मुखस्य अवतंसकं शिरोभूषणं करोति । अनुष्टुब्वृत्तम् ।

भावार्थ—मणि की प्रभा से पक्षी की कान्ति मानो और भी बढ़ गई है । इस मणि की कान्ति से मालूम होता है कि मानो अशोक-स्तवक द्वारा दिशा रूपी अंगना के कान का भूषण बनाया गया है ।

यवनी—(हाथ में धनुष को लेकर) महाराज ! यह धनुष और बाण दोनों ही ले आई हूं ।

राजा—अब इस शरासन से क्या लाभ है ? गृध्र शर-पथ के अतीत हुआ ।

तथाहिः

आभाति मणिविशेषो दूरमिदानीं पतत्त्रिणा नीतः।
नक्तमिव लोहिताङ्गः पुरुषघनच्छेद-संपृक्तः ॥ (४)

आर्य तालव्य!

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः।

राजा—मद्वचनादुच्यन्तां नागरिकाः, सायं निवासवृक्षाग्रे विचीयतां विहगाधमः।

कञ्चु—यथा आज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)।

विदू—भो! बिस्समीअदु भवं सम्पदं, कहिं गदो मणिकुम्भीलओ भवदो सासणादो मुञ्चिस्सदि ? (भ्र)

(इति उपविशतः)

(भ्र) भो विश्राम्यतु भवान् साम्प्रतम्; कुत्र गतो मणिकुम्भिरको भवतः शासनात् मोक्ष्यति ?

तथापिः—

(४) अन्वयः—आभतीति। इदानीं पतत्त्रिणा दूरं नीतः, मणिविशेषः नक्तं पुरुषघनच्छेदसंपृक्तः लोहिताङ्गः इव आभाति।

व्याख्या—इदानीम् अधुना पतत्त्रिणा पक्षिणा दूरं नीतः, मणिविशेषः अत्युत्तममणिः नक्तं रात्रौ पुरुषघनच्छेदसंपृक्त. परिणतमेघसंपृक्तः खण्डः लोहिताङ्गः मङ्गलग्रह इव आभाति शोभते। आर्य्या वृत्तम् ॥

भावार्थ—यद्यापि नीच पक्षी मणि को लेकर दूर निकल गया है, तो भी यह मणि रात में गाढ़ मेघावृत मंगल गृह की नाईं शोभा पारही है।

आर्य तालव्य!

कञ्चकी—देव! अब आज्ञा दीजिये।

राजा—मेरे कथनानुसार नागरिकों से कह दो कि सायंकाल इस अधम पक्षी को वृक्ष के अग्रभाग में ढूंढें।

कंचुकी—महाराज की जो आज्ञा। (कञ्चुकी का प्रस्थान)

विदू—महाराज! अब विश्राम लीजिये। चोर पक्षी इस मणि को चुरा कर कहां जाकर आप के शासन से बचे गा ?

(दोनों बैठते हैं)

राजा—**वयस्य !**

रत्नमिति न मे तस्मिन् मणौ प्रयासो विहङ्गमोत्क्षिप्ते ।
प्रियया तेनास्मि सखे ! सङ्गमनीयेन सङ्गमितः ॥ (५)

(ततः प्रविशति सशरं मणिमादाय कञ्चुकी)

कञ्चुकी—**जयति जयति देवः—**

अनेन निर्भिन्नतनुः स बध्यो रोषेण ते मार्गणतां गतेन ।
प्राप्तापराधोचितमन्तरीक्षात् समौलिरत्नः पतितः पतत्री ॥ (६)

(सर्वे विस्मयं रूपयन्ति)

राजा—**सखे !**

(५) **अन्वयः**—रत्नमिति । सखे ! विहङ्गमोत्क्षिप्ते तस्मिन् मणौ रत्नमिति मे प्रयासो न, तेन सङ्गमनीयेन प्रियया सङ्गमित अस्मि ।

व्याख्या—सखे ! मित्र ! विहङ्गमेन पक्षिणा उत्क्षिप्ते नीते तस्मिन् मणौ रत्नमिति विशेषरत्नेन प्रथितमिति मे मम प्रयासः श्रेयः न, परन्तु तेन सङ्गमनीयेन तन्नाम्ना प्रियया सङ्गमितः संगप्रापितः ॥

भावार्थ—**पक्षी ने मणि का हरण किया । किन्तु उस के रत्न विशेष होने के कारण ही जो मैं पुनः प्राप्त करने के लिये श्रम कर रहा हूं, सो यह बात तो है ही नहीं, बल्कि इस मणि के प्रसाद से ही प्रिया के साथ मेरा मिलना हुआ ।**

(इसके बाद कञ्चुकी शर तथा मणि लेकर प्रवेश करता है)

किञ्चुकी—**महाराज की जय हो ।**

(६) **अन्वयः**--अनेनेति । मार्गणतां गतेन ते अनेन रोषेण निर्भिन्नतनुः वध्यः, स पतत्री प्राप्तापराधोचितम् अन्तरीक्षात् समौलिरत्नः पतितः ।

व्याख्या—मार्गणतां बाणभावं गतेन प्राप्तेन ते तव अनेन रोषेण क्रोधेन निर्भिन्नतनुः विदारितशरीरः बध्यः, स पतत्री पक्षी प्राप्तापराधोचितं योग्यम् अन्तरीक्षात् आकाशात् समौलिरत्नः शिरोमणिसहितः पतितः । उपजातिः वृत्तम् ॥

भावार्थ—**आप के क्रोध ने बाण रूप में परिणत हो उस पक्षी का अंग बींध डाला, जिस से कि वह दुष्ट अपराध का उचित फल पाकर शिरोरत्न के सहित आकाश से पृथ्वी तल पर गिरा है ।**

(यह सुनकर सब का आश्चर्य प्रकाश)

कञ्चु—अभिप्रक्षालितोऽयं मणिः कस्मै प्रदीयताम् ।

राजा—रेचक! गच्छ, कोषपेट्टके स्थापयैनम् ॥

किरातः—जं भट्टा आणवेदि त्ति । (ञ)

(इति मणिमादाय निष्क्रान्तः)

राजा—(तालव्यं प्रति) आर्य्य! जानाति भवान् कस्य अयं बाण इति?

कञ्चु—नामाङ्कितो दृश्यते; नात्र मे वर्णविभावनसहा दृष्टिः ।

राजा—तदुपश्लेषय शरं यावत् निरूपयामि ।

विदू—किं भवं बिआरेदि ? (ट)

राजा—शृणु तावत् प्रहर्त्तुर्नामाक्षराणि ।

विदू—अवहिदो म्हि । (ठ)

राजा—(वाचयति)

(ञ) यद्भर्त्ता आज्ञापयति इति ।

(ट) किं भवान् विचारयति ?

(ठ) अवहितोऽस्मि ।

कञ्चुकी—यह मणि तो धुली गई है परन्तु अब किसे देनी चाहिये ।

राजा—रेचक! जाओ, इसे कोष के बक्स में रख दो ।

किरात—महाराज की जैसी आज्ञा ।

(मणि को लेकर किरात का जाना)

राजा—(तालव्य की ओर देखकर) आर्य्य! यह शर किस का है ? जानते हो ?

कंचुकी—नाम के अक्षर अंकित दिखाई देते हैं । मैं विना अंकित अक्षरों को देखे निर्णय नहीं कर सकूंगा, क्योंकि मेरे नेत्रों की ऐसी शक्ति नहीं है ।

राजा—बाण मेरे पास रखिये, मैं ही बताये देता हूं ।

विदू—आप क्या विचारते हैं ?

राजा—प्रहारकारी के नामाक्षर सुनिये ।

विदू—सावधान हूँ ।

राजा—(पढ़ता है)

उर्वशी-सम्भवस्यायमैलसूनोर्धनुष्मतः ।
कुमारस्यायुषो बाणः संहर्त्ता द्विषदायुषाम् ॥ (७)

विदू०--दिट्ठिआ सन्ताणेण वड्ढदि भवं । (ड)

राजा—कथमेतत् ? सखे ! अन्यत्र नैमिषेयसत्राद्वियुक्तोऽहमुर्वश्या; न कदाचिदपि तत्रभवती गर्भाविर्भूतदोहदा अपि उपलक्षिता; कुत एव प्रसूतिः ? किन्तु,—

आनील-चूचुकाग्रं लवलीफल-पाण्डुराननच्छायम् ।
कतिचिदहानि शरीरं श्लथवलयमिवाभवत्तस्याः ॥ (८)

विदू०—मा भवं माणुसीधम्मं उव्वसीए सम्भावेदु, पभावगूढाइं दवचरिदाइं । (ढ)

(ड) दिष्ट्या सन्तानेन वर्द्धते भवान् ।

(ढ) मा भवान् मानुषीधर्मम् उर्वश्यां सम्भावयतु प्रभावगूढानि देवचरितानि ।

---

(७) अन्वयः—उर्वशीति । (इस के अन्वय प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—अयं कुमारस्य युवराजस्य आयुषः आयुनामधेयस्य बाणः उर्वशीसम्भवस्य उर्वशीगर्भजातस्य ऐलस्य पुरूरवसः सूनोः पुत्रस्य धनुष्मतः धनुर्धारिणः द्विषतां शत्रूणाम् आयुषां संहर्त्ता नाशकः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥

भावार्थ—उर्वशी के गर्भ से पैदा हुए--शत्रुओं की आयु का नाश करने वाले पुरूरवा नन्दन "आयु" नामक कुमार का यह बाण है।

विदू०--सौभाग्य से आप कुमार के द्वारा सम्वर्द्धित हुए ।

राजा--यह कैसे ? सखे ! थोड़े से समय के लिये उर्वशी से मेरा वियोग हुआ था, मैं ने तो कभी भी उर्वशी में गर्भ के लक्षण नहीं देखे, पर इस कुमार की उत्पत्ति कहाँ से हुई ? किन्तु--

(८) अन्वयः—आनीलेति । (इस के अन्वय प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—तस्या उर्वश्याः चूचुकाग्रं पयोधराग्रम् आसमन्तात् नीलं आननच्छायं मुखच्छायं लवलीफलमिव पाण्डुः शुभ्रं कतिचित् अहानि दिनानि शरीरं श्लथवलयमिव अभवत् । आर्या वृत्तम् ॥

भावार्थ—केवल कई दिन प्यारी की चूचियों का अग्रभाग कुछेक नीलवर्ण का और मुख की कान्ति लवली फल के समान पीलापन और अंग यष्टि देहस्थ वलय की न्याईं शिथिल दखा थी ।

विदू०--आप उर्वशी में मनुष्य धर्म का विचार न करें, देव चरित्र प्रभाव द्वारा निगूढ़ रहता है ।

राजा—अस्तु तावदेवं; यथाह भवान्। पुत्रसंवरणे किमिव कारणं तस्याः ?

विदू—मा बुड्ढिं मं राआ परिस्सदि त्ति (ण)

राजा—कृतं परिहासेन; चिन्त्यताम्।

विदू—को देवरहस्साइं चिन्तिस्सदि ? (त)

कञ्चुकी-(प्रविश्य) जयति जयति देवः। देव! एषा खलु च्यवनाश्रमात् भार्गवी कुमारमादाय आयाता तापसी देवं द्रष्टुमिच्छति।

राजा—उभयमपि अविलम्बितं प्रवेशय।

कञ्चुकी—तथा।

(इति निर्गम्य तापसीसहितं कुमारमादाय प्रविष्टः)

विदू—णं क्खु एसो खत्तिअ-कुमारो; जस्स णामाङ्किदो गिद्धलक्खवेही णाराओ उअलद्धो। तधा हि भवदो बहु अणुकरेदि। (थ)

(ण) मा वृद्धां मां राजा परिहरिष्यतीति।

(त) को देवरहस्यानि चिन्तयिष्यति।

(थ) ननु खलु एष क्षत्रियकुमारः; यस्य नामाङ्कितो गृध्रलक्ष्यवेधी नाराच उपलब्धः; तथाहि भवतो बहु अनुकरोति।

राजा—तुम्हारी बात संभव है। किन्तु पुत्र को छिपाने का कारण क्या है ?

विदू—मेरे वृद्ध होने पर भी महाराज मुझको त्याग न करें।

राजा—अब हास्य करने का समय नहीं है। कारण को ही सोचिये।

विदू—देवता के भेद को कौन जान सकता है ?

कञ्चुकी—(प्रविष्ट होकर) महाराज की जय हो! महाराज की जय हो!! देव! च्यवन ऋषि के आश्रम से एक कुमार समेत भार्गवी नाम वाली तापसी महाराज के संग भेंट करने को आई है।

राजा—शीघ्र ही दोनों को ले आइये।

कञ्चुकी—महाराज की आज्ञा शिरोधार्य्य है।

(कंचुकी का प्रस्थान तापसी समेत कुमार को लेकर कंचुकी का पुनः प्रवेश)

विदू—गृध्र के लक्ष्य का भेद करने वाले बाण में जिनका नाम अंकित है, निश्चय से ही यह वही बालक क्षत्रिय कुमार है। यह

राजा—एवमेतत् ।—

वाष्पायते निपतिता मम दृष्टिरस्मिन्,
वात्सल्यबन्धि हृदयं, मनसः प्रसादः ।
सञ्जात-वेपथुभि-रुज्झितधैर्य्यवृत्त-
मिच्छामि चैन-मदयं परिरब्धुमङ्गैः ॥ (६)

कञ्चुकी—भगवति ! एवं स्थीयताम् ।
[तापसीकुमारौ यथोचितं स्थितौ]

राजा—(उपसृत्य) भगवति ! अभिवादये ।

ताप—महाराअ ! सोमवंसं धारअन्तो होहि । (आत्मगतम्) भो ! इमिणा अकधिदोवि विण्णादो ज्जेव इमस्स राएसिणो अत्तणो आउसो अ ओरसो सम्बन्धो । (प्रकाशं कुमारं प्रति) । जाद ! प्पणाम गुरुं (द) ।

(द) महाराज ! सोमवंशं धारयन् भव । भो ! अनेन अकथितोऽपि विज्ञात एवास्य राजर्षेरात्मन आयुषश्च औरसः सम्बन्धः । जात ! प्रणाम गुरुम् ।

कुमार महाराज की बहुतसी बातों का अनुकरण कर रहा है । अर्थात् महाराज के सब लक्षण इसमे विद्यमान हैं ।

राजा--यह बात सत्य है ।

(६) अन्वयः—वाष्पायतेति । मम दृष्टिः अस्मिन् निपतिता वाष्पायते, हृदयं वात्सल्यबन्धि, मनसः प्रसादः उज्झितधैर्य्यवृत्तम् अदयम् एनं संजातवेपथुभिः अङ्गैः परिरब्धुम् इच्छामि ।

व्याख्या—मम दृष्टिः अस्मिन् बालके निपतिता सती वाष्पायते वाष्पमिवाचरतीति, हृदयं चेतः वात्सल्यं प्रेम बध्नातीति वात्सल्यबन्धि अतिप्रेमयुतम, मनसः प्रसादः प्रसन्नता अहम् उज्झितधैर्यवृत्तं त्यक्तधैर्य्यवृत्तम् अदयं दयाराहितम् एनं सञ्जातवेपथुभिः कम्पमानैः अङ्गैः परिरब्धुम् आलिङ्गितुमिच्छामि । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥

भावार्थ--मेरी आँखें इसके ऊपर पड़ते ही अश्रुपात से भरी जाती हैं, हृदय वात्सल्यभाव से गीला हुआ जाता है, चित्त प्रफुल्लित होता हुआ अधीर भाव से कंपित अंगों द्वारा इस को स्नेह से आलिंगन करने की इच्छा करता है ।

कंचुकी--भगवति ! अब आप इस प्रकार अवस्थान कीजिये ।

(तपसी और कुमार का यथायोग्य अवस्थान)

राजा—(समीपवर्त्ती होकर) भगवति ! आपको प्रणाम करता हूँ ।

तापसी--महाराज सोमवंश को धारण कीजिये (आप ही आप)

(कुमारो वाष्पगर्भमञ्जलिं बद्ध्वा प्रणमति)

राजा—**वत्स! आयुष्मान् भव।**

कुमार—(स्पर्शं रूपयित्वा स्वगतम्)

यदि हार्दमिदं श्रुत्वा पिता ममायं, सुतोऽहमस्येति।
उत्सङ्गे वृद्धानां गुरुषु भवेत् कीदृशः स्नेहः ? ॥ (१०)

राजा—**भगवति ! किम् आगमन-प्रयोजनम् ?**

ताप—**सुणादु महराओ; एसो दीहाऊ आऊ उव्वसीए जादमेत्तो ज्जेव किंपि णिमित्तं अवेक्खिअ मम हत्थे णासीकिदो; जधा (जं) खत्तिअस्स कुलीणस्स जादकम्मादिविहाणं, तं से तत्तभवदा चवणेण सब्बं अणुट्ठिदं, दाणिं गिहीदविज्जो धणुब्वेए अ विणीदो। (ध)**

(ध) शृणोतु महाराजः, एष दीर्घायुरायुरुर्वश्या जातमात्र एव, किमपि निमित्तम् अवेक्ष्य, मम हस्ते न्यासीकृतः; यथा (यत्) क्षत्रियस्य कुलीनस्य जातकर्मादिविधानं, तदस्य तत्रभवता च्यवनेन सर्वमनुष्ठितम्। इदानीं गृहीतविद्यो धनुर्वेदे च विनीतः।

किसी के न बताने पर भी महाराज के सहित इसका औरस सबन्ध ज्ञात होता है (प्रकट में कुमार की ओर लक्ष्य करके) **वत्स ! पिता की वन्दना करो।**

(अश्रुपूर्ण नेत्रों से हाथ जोड़कर कुमार का राजा को प्रणाम करना)

राजा--**वत्स ! दीर्घ जीवी हो।**

कुमार--(स्पर्श सुख अनुभव पूर्वक स्वगत)

(१०) **अन्वयः**—यदीति। (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या-अयं मम पिता जनकः अहम् अस्य सुतः पुत्र इति हार्दं हृदयाह्लादकम् इदं श्रुत्वा एव आनन्दो जातः, उत्सङ्गे प्रसङ्गे वृद्धानां क्रोडे वर्द्धितानां पुत्राणां गुरुषु महाजनेषु कीदृशः स्नेहः भवेत् इति विचारयितुमशक्तोऽहम्। आर्या वृत्तम्।

भावार्थ-**यह पिता—मैं पुत्र ऐसा सुनने से यदि इस प्रकार प्रेम का संसार हो तो पिता माता की गोद में सम्वर्द्धित शिशुओं में जिस प्रकार आनन्द का संचार होता है, उसे कह नहीं सकता।**

राजा—**भगवति ! आपके आने का क्या कारण है ?**

तापसी—**महाराज ! सुनिये, इस दीर्घजीवी के जन्म ग्रहण**

राजा—सनाथः खलु संवृत्तः।

ताप—अज्ज पुप्फ-फल-समिध्-कुस-णिमित्तं इसिकुमारएहिं सह गदेण इमिणा अस्समबास-बिरुद्धं समाअरिदं। (न)

विदू—कधं बिअ ? (प)

ताप—गहिदामिसो किल गिद्धो अस्सम-पादब-सिहरे णिलीअ-माणो लक्खीकिदो बाणस्स। (फ)

राजा—ततस्ततः ?

ताप—तदो उअलद्ध-बुत्तन्तेण भअबदा चबणेण अहं समादिट्ठा; णिज्जादेहि एदं उब्बसीहत्थे णासं त्ति; ता इच्छामि उब्बसीं पेक्खिदुं। (ब)

(न) अद्य पुष्प-फल-समित्त कुश-निमित्तम् ऋषिकुमारकैः सह गतेन अनेन आश्रमवासविरुद्धं समाचारितम्।

(प) कथमिव ?

(फ) गृहीतामिषः किल गृध्रः आश्रमपादपशिखरे निलीयमानो लक्ष्यी कृतो बाणस्य।

(ब) तत उपलब्ध-वृत्तान्तेन भगवता च्यवनेन अहं समादिष्टा निर्य्यातयैनम् उर्वशीहस्ते न्यासमिति तदिच्छामि उर्वशीं प्रेक्षितुम्।

करते ही किसी विशेष कारण से उर्वशी ने इसे मेरे हाथ में सौंपा है। कुलीन क्षत्रिय सन्तान के जाति कर्मादि संस्कार जिस भाव से सम्पादित होते हैं, महर्षि च्यवन ने भी उनको यथा योग्य सम्पादन किया है। कुमार इस धनुर्वेद में सुशिक्षित होकर कृतविद्य हुए हैं।

राजा—अब मुझे सहारा हुआ।

तापसी—आज फल-फूल समिध और कुश संग्रह के लिए ऋषि कुमारों के संग वन में पहुंच कर इस बालक ने आश्रम के विरुद्ध आचरण किया है।

विदू—कैसे ?

तापसी—एक गृध्र एक मांस का टुकड़ा मुख में लिये अशोक वृक्ष की टहनी पर बैठा था, इस बालक ने उसे बाण का निशाना बना लिया।

राजा—इसके पीछे फिर !

तापसी—इस के पीछे फिर भगवान् च्यवन ऋषि ने इस विचित्र घटना को सुन मुझे आज्ञा दी है कि इस कुमार को उर्वशी

राजा—तेन हि आसनमनुगृह्णातु भगवती।

(प्रेष्योपनीतयोरासनयोरुपविष्टौ)

राजा—आर्य्य तालव्य ! आहूयताम् उर्वशी।

कञ्चु—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

राजा—(कुमारमवलोक्य) एह्येहि वत्स !—

सर्वाङ्गीणः स्पर्शः सुतस्य किल; तेन मामुपनतेन।

प्रह्लादयस्व तावच्चन्द्रकरश्चन्द्रकान्तमिव॥ (११)

ताप—जाद ! णन्देहि पिदरं (भ)

(कुमारो राजानमुपसर्पति)

राजा—(आलिङ्ग्य) वत्स ! प्रियसखं ब्राह्मणमविशङ्कितो वन्दस्व।

विदू—किं त्ति मे सङ्कदि ? अस्सम वास परिचिदा ण किं एद-स्स साहामिआ ? (म)

(भ) जात ! नन्दय पितरम्।

(म) किमिति मे शङ्कते ? आश्रमवासपरिचिताः न किम् एतस्य शाखामृगाः ?

के हस्तगत कर दो। इसी कारण मैं उर्वशी को देखने की इच्छा करती हूं।

राजा--भगवति ! आसन ग्रहण कीजिये।

(तापसी और कुमार दोनों का बैठना)

राजा--आर्य तालव्य ! उर्वशी को बुलाओ।

कंचुकी--महाराज की जैसी आज्ञा (कंचुकी का जाना)

राजा--(बालक को देख कर) पुत्र ! आओ ! आओ !!

(११) अन्वयः--सर्वाङ्गीण इति (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—सुतस्य पुत्रस्य स्पर्शः सर्वाङ्गीणः सर्वाङ्गव्यापि। किल निश्चये उपनतेन प्राप्तेन तेन स्पर्शेन चन्द्रकरः चन्द्रकांतमिव निशाकरचन्द्रकान्तमिव तावत् प्रह्लादयस्व मामानन्दितं कुरु इत्यर्थः। आर्य्या वृत्तम्॥

भावार्थ--सर्वांग में वत्स का स्पर्श अत्यन्त प्रीति देने वाला है, अस्तु-चन्द्रमा जिस तरह चन्द्रकान्तमणि को प्रसन्न करता है उसी तरह तुम भी मुझे प्रसन्न करो।

तापसी--वत्स पिता को प्रसन्न करो।

(यह कह कर कुमार को राजा के हाथ में सौंपना)

राजा—(बालक को छाती से लगा कर) वत्स ! इस प्रिय सखा विप्र को निडर होकर नमस्कार करो।

विदू—मुझ से भय क्यों करते हो ? आश्रम वास के कारण शाखा मृग परिचित हैं।

कुमार—(सस्मितम्) तात ! वन्दे ।

विदू—सोत्थि भवदो, वड्ढदु भवं । (य)

(ततः प्रविशति उर्वशी कञ्चुकी च)

कञ्चु—इत इतो भवती ।

उर्वशी—(प्रविश्य अवलोक्य च) को णु क्खु एसो कणअपीठोवविट्ठो, महाराएण सञ्जमीअमाण सिहण्डओ चिट्ठदि ? (तापसीं दृष्ट्वा) अम्हहे ! सच्चवदीसहिदो पुत्तओ मे आऊ ? महन्तो क्खु संवुत्तो ! (र)

राजा—(विलोक्य) वत्स !—

इयं ते जननी प्राप्ता, त्वदालोकनतत्परा ।
स्नेहप्रस्नव-निर्भिन्नमुद्वहन्ती स्तनांशुकम् ॥ (१२)

ताप—जाद ! एहि, पच्चुवगच्छ मादरम् । (ल)

(इति कुमारेण सह उर्वशीमुपसर्पति)

(य) स्वस्ति भवते, वर्द्धतां भवान् ।

(र) को नु खलु एष कनकपीठोपविष्टो महाराजेन संयम्यमानशिखण्डकस्तिष्ठिति अहो ! सत्यवतीसहितः पुत्रको मे आयुः ? महान् खलु संवृत्तः !

(ल) जात ! एहि प्रत्युपगच्छ मातरम् ।

कुमार—(मधुर हास्य से) तात प्रणाम करता हूं ।

विदू—आप का मंगल हो, आप वृद्धि को प्राप्त हों ।

(इस के बाद उर्वशी और कंचुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—आप इधर आइए ! इधर आइए !

उर्वशी—(प्रवेशान्तर चारों ओर देखकर) महाराज तो शिखा बांधते हुए सोने के आसन पर विराजमान हैं । किन्तु यह कुमार कौन है ? (तापसी की ओर देख कर) अहो ! सत्यवती के संग मेरा पुत्र 'आयु' है । अच्छा ही हुआ ।

राजा—(देख कर) वत्स !—

(१२) अन्वयः—(इयमिति प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—पुत्र ! इयं त्वदालोकनतत्परा त्वां द्रष्टुकामा ते तव जननी माता उर्वशी स्नेहेन प्रेम्णा प्रस्नवः क्षरत्पयः तेन निर्भिन्नं सक्षतं स्तनांशुकम् उद्वहन्ती धारयन्ती सती प्राप्ता ।

भावार्थ—यह तुम्हारी माता आकर तुम्हें देख रही है । उसका स्तनस्थित-वस्त्र (चोली) स्नेह से गीला हो रहा है ।

तापसी—पुत्र ! आओ आओ, माता की परिक्रमा स्वागत करो ।

(बालक को लेकर उर्वशी के पास जाना)

उर्व—अज्जे ! पादबन्दणं करेमि । (व)

ताप—बच्छे ! भत्तुणो बहुमदा होहि । (श)

कुमा—अम्ब ! अभिवादये ।

उर्व—बच्छ ! पिदरं आराधअन्तो होहि । (राजानं प्रति) जेदु जेदु महाराओ । (ष)

राजा—स्वागतं पुत्रवत्यै इत आस्यताम् ।

उर्व—अज्जा ! उअबिसध । (स)

(सर्वे यथोचितम् उपविष्टाः)

ताप—बच्छे ! गिहीदबिज्जो आऊ । संपदं आउध-कबचारुहो संवुत्तो । एसो भत्तुणो समक्खं णिज्जादिदो साहिहत्थणिक्खेबो (मए तुह हत्थे निक्खेबो) ता तुह्मेहिं विसज्जिदं अत्ताणं इच्छामि, उअरुज्झइ मे अस्सम (बास) धम्मो । (ह)

(व) आर्य्ये ! पादवन्दनं करोमि ।

(श) वत्से ! भर्त्तुर्बहुमता भव ।

(ष) वत्स ! पितरमाराधयन् भव । जयति जयति महाराजः ।

(स) आर्य्या ! उपविशत ।

(ह) वत्से ! गृहीतविद्यः आयुः । साम्प्रतम् आयुधकवचार्हः संवृत्तः । एष भर्त्तुः समक्षं निर्य्यातितः सखीहस्तनिक्षेपः (मैया तव हस्ते निक्षेपः) तद् युष्माभिर्विसर्जित मात्मानमिच्छामि, उपरुध्यते मे आश्रम (वास) धर्मः ।

उर्वशी—आर्य्ये ! चरणों की वंदना करती हूं ।

तापसी—वत्से ! स्वामी के पास से बहुत सन्मानित होओ ।

कुमार—आर्य्य ! वन्दना करता हूं ।

उर्वशी—वत्स ! पिता की पूजा करें (राजाकी ओर देखकर) महाराज की जय हो ।

राजा—पुत्रवती का मंगल तो है ? यहां आसन ग्रहण कीजिये ।

उर्वशी—आर्य्य ! पधारिये ।

(यथोचित सब का आसन ग्रहण करना)

तापसी—वत्स ! इस कुमार ने सुशिक्षित होकर अब धनुष कवचादि को धारण किया है तुम्हारे भर्त्ता के सामने मैंने तुम्हारा सौंपा हुआ द्रव्य तुम्हें दे दिया है। अब मुझे विदा कीजिये । क्योंकि मेरे आश्रम धर्म का यथोचित समय यापन हो रहा है ।

उर्व—कामं चिरस्स (पेक्खिअ बिरहुक्कण्ठिदम्हि ण उण धम्माबरोहे बट्टिदुं) अज्जउत्तं पेक्खिअ अबहिदहिअएण जुज्जदि पुणो अस्समधम्मं बिभाबिदुं; ता गच्छदु अज्जा पुणो बि दंसणाअ (च)।

राजा—आर्य्ये तत्रभवते च्यवनाय मम प्रणामम् आवेदयिष्यसि

ताप—एव्वं भोदु। (क)

कुमा—आर्य्ये! सत्यमेव निवर्त्तनम्? इतो मामपि नेतुमर्हसि।

राजा—अयि वत्स! उषितं त्वया पूर्वस्मिन्नाश्रमपदे, तव द्वितीयमपि अध्यासितुं समयः।

ताप—जाद! गुरुणो बअणं अणुचिट्ठ। (ख)

कुमा—तेन हि—

य: सुप्तवान् मदङ्के शिखण्ड-कण्डूयनोपलब्धसुखः।
तं मे जातकलापं प्रेषय शितिकण्ठकं शिखिनम्॥ (१३)

(च) कामं चिरस्य (प्रेक्ष्य विरहोत्कण्ठितास्मि न पुनर्धर्मावरोधे वर्त्तितुम्।) आर्य्यपुत्रं प्रेक्ष्यावहितहृदयेन युज्यते पुनराश्रमधर्म्मं विभावयितुम्। तद् गच्छतु आर्य्या पुनरपि दर्शनाय।

(क) एवं भवतु।

(ख) जात! गुरोर्वचनमनुतिष्ठ।

उर्वशी—बहुत काल पीछे आप को देख कर मैं विरह की उत्कंठा से व्याकुल हुई हूं—किन्तु धर्म के विरुद्ध आचरण नहीं कर सकती। अतएव पुनरागमन के लिये इस समय यात्रा कीजिये।

राजा—आर्य्ये। भगवान् च्यवन ऋषि को मेरा प्रणाम विदित कराना।

तापसी—अवश्य विदित कराऊँगी।

कुमार—आर्य्ये। यदि सत्य आप लौट कर जातीं हैं—तो मुझे भी अपने संग ले चलिये।

राजा—वत्स। पहिले तुमने ब्रह्मचर्याश्रम का अनुष्ठान किया है, अब तुम्हारे दूसरे आश्रम अर्थात् गृहस्थ-धर्म के अनुष्ठान का समय उपस्थित है।

तापसी—वत्स! पिता के वचन का परिपालन करो।

कुमार—जो आज्ञा!

(१३) अन्वयः—य इति। यः शिखण्डकण्डूयनोपलब्धसुखः मदङ्के सुप्तवान् तं जातकलापं शितिकण्ठकं शिखिनं मे प्रेषय।

तापसी—एव्वं करेमि। (ग)

उर्व—भअवदि! पादबन्दणं करेमि। (घ)

राजा—भगवति! प्रणमामि।

तापसी—सोत्थि सव्वाणं (भोदु तुह्माणं) (ङ)

(इति निष्क्रान्ता)

राजा—सुन्दरि!—

अद्याहं पुत्रिणामग्र्यःसुपुत्रेण तवामुना।
पौलोमीसम्भवेनेव जयन्तेन पुरन्दरः॥ (१४)

(ग) एवं करोमि।

(घ) भगवति! पादवन्दनं करोमि।

(ङ) स्वस्ति सर्वेभ्यः (भवतु युष्मभ्यः)।

व्याख्या—यः शिखण्डकण्डूयनोपलब्धसुखः शिखण्डस्य कण्डूयनेन उपलब्ध-सुखः प्राप्तसुखः मत् मम अङ्के क्रोडे सुप्तवान् शयनं कृतवान् तं जातकलापम् उद्गतपिच्छ-भारं शितिकण्ठकं नीलग्रीवं शिखिनं मयूरं मे मम समीपे प्रेषय।

भावार्थ—जो मस्तक खुजाने के समय मेरी गोदी में लेट-कर सोया करता है और अब जिस के पंख निकल आये हैं, मेरे उस नीलकण्ठ मोर को भेज देना।

तापसी—वत्स! ऐसे होगा अर्थात् उसे अवश्य तुम्हारे पास भेज दूंगी।

उर्वशी—भगवति! चरण वन्दना करती हूं।

राजा—भगवति! नमस्कार करता हूं।

तापसी—सब का मंगल हो।

(तापसी का जाना)

राजा—सुन्दरि—

(१४) अन्वयः—अद्याहमिति। अद्य अहं तव अमुना सुपुत्रेण पुत्रिणाम् अग्र्यः, पौलोमीसम्भवेन जयन्तेन पुरन्दर इव।

व्याख्या—अद्य अहं पुरुरवा तव अमुना अनेन सुपुत्रेण पुत्रिणां पुत्रवतां अग्र्यः मुख्यः पौलोमीसम्भवेन शचीजातेन जयन्तेन तदाख्येन पुरन्दर इव इन्द्र इवास्मि।

भावार्थ—शची के गर्भ से उत्पन्न हुए जयन्त द्वारा देवराज इन्द्र जिस प्रकार अग्रगण्य हुए हैं, तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न इस सुपुत्र के द्वारा मैं भी आज उसी प्रकार पुत्रवानों में अग्रणी हुआ हूं।

(उर्वशी स्मृत्वा रोदिति)

विदू—भो! किं णु क्खु संपदं तत्थभोदी अस्सुमुही संवुत्ता? (च)

राजा—किं सुन्दरि! प्ररुदितासि ममोपनीते
वंशस्थितेरधिगमात् स्फुरति प्रमोदे।
पीनस्तनोपरि निपातिभिरर्पयन्ती
मुक्तावली-विरचनं पुनरुक्तमस्रैः॥ (१५)

उर्व—सुणादु महाराओ, पढमं उण पुत्त-दंसण समुत्थिदेण आणन्देण विसुमरिदम्हि; दाणिं महेन्द-संकित्तणेण सो अवधी मम हिअएण सुमरिदो। (छ)

(च, भोः! किं नु खलु साम्प्रतं तत्रभवती अश्रुमुखी संवृत्ता?

(छ) शृणोतु महाराजः; प्रथमं पुनः पुत्रदर्शनसमुत्थितेन आनन्देन विस्मृतास्मि; इदानीं महेन्द्रसंकीर्तनेन सोऽवधिः मम हृदयेन स्मारितः।

(उर्वशी पूर्व वृत्तान्त याद करके रोती है)

विदू—देवि! इस समय अश्रुमुखी क्यों हुई अर्थात् रोने का क्या कारण है?

राजा—(१५) अन्वयः—किमिति। सुन्दरि! वंशस्थितेरधिगमात् मम उपनीते प्रमोदे स्फुरति पीनस्तनोपरि निपातिभिः अस्रैः पुनरुक्तं मुक्तावलीविरचनम् अर्पयन्ती किं प्ररुदितासि?

व्याख्या—हे सुन्दरि! वंशस्य कुलस्य स्थितिः रक्षा यस्मिन् तस्य पुत्रस्य अधिगमात् लाभात्, मम उपनीते 'महति' इति क्वचित्पाठः, प्रमोदे संतोषे स्फुरति वर्द्धमाने सति पीनस्तनोपरि निपातिभिः अस्रैः नेत्रजलैः पुनरुक्तं यथा स्यात्तथा मुक्तावलीविरचनं मुक्ताफल-सदृशानि अश्रूणि अर्पयन्ती पातयन्ती किं प्ररुदितासि? सुतसमागमोत्पादके आनंदावसरे किं शोकस्य कारणम् इत्यर्थः। वसन्ततिलकं वृत्तम्।

भावार्थ—सुन्दरि! मैंने वंश की चिरस्थिति प्राप्त करली—इसलिये यह आनन्द का समय है—इस समय तुम आंसू क्यों गिरा रही हो? तुम अपने पीन पयोधरों पर स्थित मुक्त माला के ऊपर आंसुओं का जल डालकर उसको पुनरुक्त (सिंचित) क्यों करती हो? (तुम्हारी जो आंसुओं की बूंदें मुक्तावली के ऊपर गिरती हैं—वह भी मोतियों के समान शोभा पाती हैं) विशेष कर तुम्हारा इस समय अश्रु विसर्जन करना अत्यन्त ही अनुचित है।

उर्वशी—महाराज! सुनिये, मैं पहिले पुत्र दर्शन के आनन्द में भूल गई थी, पर आप के देवराज का नाम लेने से अब वह समय मुझे याद आता है!

राजा--कथ्यतां समयः।

उर्व--सुणादु महाराम्रो; अहं पुरा महाराअ-गहिदहिअआ गुरु-साव-संमूढ़ा, महेन्देण अवधिं कदुअ, अब्भणुण्णादा। (ञ)

राजा--कथय; किमिति?

उर्व--जदा सो मम पिअसहो राएसी तुइ समुप्पण्णस्स पुत्त-अस्स मुहं पेक्खिस्सदि, तदा मम समीवं तुए आअन्तव्वं त्ति। तदा मए महाराअ-विओअ-भीरुदाए (जातमेत्तो एव्व विज्जागमणिमित्तं अ) (चिरआल-सङ्गमणिमित्तं अ) भअवदो चवणस्स अस्समपदे एसो पुत्तओ अज्जाए सच्चवदीए हत्थे अप्पणा णिक्खित्तो; अज्ज उण पिदुणो आराहण-समत्थो संवुत्तो त्ति कदुअ णिप्पादिदो एसो दीहाऊ आऊ एत्तिको मे महाराएण सह संवासो। (झ)

(ञ) शृणोतु महाराजः, अहं पुरा महाराजगृहीतहृदया गुरुशापसंमूढा महेन्द्रेण अवधिं कृत्वा अभ्यनुज्ञाता।

(झ) यदा स मम प्रियसखो राजर्षिस्त्वयि समुत्पन्नस्य पुत्रकस्य मुखं प्रेक्षिष्यते तदा मम समीपं त्वया आगन्तव्यमिति। ततो मया महाराजवियोगभीरुतया (जातमात्र एव विद्यागमनिमित्तं च) (चिरकालसङ्गमनिमित्तं च) भगवतश्च्यवनस्याश्रमपदे एष पुत्रक आर्य्यायाः सत्यवत्या हस्ते आत्मना निक्षिप्तः, अद्य पुनः पितुराराधनसमर्थः संवृत्त इति कृत्वा निष्पादित एव दीर्घायुः आयुः। एतावानेव मे महाराजेन सह संवासः

राजा--वह कैसा समय? कहिये।

उर्वशी--महाराज! सुनिये, प्रथम जब महाराज ने मेरे चित्त को हरण किया था, तो इसलिए गुरु ने भी मुझे शाप दिया। फिर देवराज ने यथोचित समय दया भाव से शाप मोचनार्थ आज्ञा दी थी।

राजा--क्या आज्ञा दी थी? कहो।

उर्वशी--मेरे प्रिय सखा राजर्षि पुरूरवा जिस समय तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न हुए पुत्र का मुख देखेंगे उसी समय तुम फिर मेरे पास आ जाओगी। इसी लिए मैंने महाराज के विरह की आशंका एकत्र रहने के उद्देश्य से भगवान् च्यवन के तपोवन में सत्यवती को यह पुत्र स्थायी स्वरूप सौंप दिया था। अब यह बालक पिता की आराधना (सेवा) करने में समर्थ होगया, बस यही विचार कर यहां लाया गया है। यह दीर्घ जीवी 'आयु' है। इसी कारण मेरा महाराज के साथ संवास हुआ है।

(सर्वे विषादं नाटयन्ति । राजा मोहमुपगच्छति)

सर्वे—आः ! समस्ससदु समस्ससदु महाराओ । (ञ)

कञ्चु—समाश्वासितु महाराजः ।

विदू । अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं । (ट)

राजा—(समाश्वस्य) **अहो ! सुखप्रतिबन्धिता दैवस्य ।—**

आश्वासितस्य मम नाम सुतोपलब्ध्या
सद्यस्त्वया सह कृशोदरि ! विप्रयोगः ।
व्यावर्त्तितातपरुजः प्रथमाम्बुवृष्ट्या
वृक्षस्य वैद्युत इवाग्निरुपस्थितोऽयम् ॥ (१६)

विदू—**अअं सो अत्थो अणत्थाणुबन्धओ त्ति तक्केमि** (अत्थभवं देव राओ सअं अणुग्गाहइदव्वो) । (ठ)

(ञ) समाश्वसितु समाश्वसितु महाराजः ।

(ट) अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् ।

(ठ) अयं सोऽर्थोऽनर्थानुबन्धक इति तर्कयामि अत्रभवान् देवराजः स्वयमनुग्राहयितव्यः

(यह सुन कर सब का दुख भाव और राजा का मूर्छित होना)

सब—**महाराज ! धैर्य रखिये ! सावधान हूजिये !**

कंचुकी—**महाराज सावधान हूजिये ।**

विदू—**अब्रह्मण्य, अब्रह्मण्य ।**

राजा—(सावधान होकर) **हाय ! दैव ही सुख में विघ्न स्वरूप है ।**

(१६) **अन्वयः**—आश्वासितस्येति । कृशोदरि ! सुतोपलब्ध्या नाम आश्वासितस्य मम त्वया सह अयं सद्यः विप्रयोगः, प्रथमाम्बुवृष्ट्या व्यावर्त्तितातपरुजः वृक्षस्य वैद्युतः अग्निः इव उपस्थितः ।

व्याख्या—हे कृशोदरि ! सुतस्य पुत्रस्य उपलब्ध्या प्राप्त्या । नामेति प्राकाश्ये । आश्वासितस्य कृतसमाधानस्य मम त्वया सह अयं सद्यः विप्रयोगः वियोगः, प्रथमाम्बुवृष्ट्या नूतनमेघवर्षेण व्यावर्त्तितातपरुजः न्यक्कृतातपक्लेशस्य वृक्षस्य वैद्युतः विद्युत्सम्बन्धी अग्निरिव उपस्थितः प्राप्तः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

भावार्थ—**हे कृशोदरि ! मैं पुत्र पाकर आनंदित हुआ था, उसी परमानन्द के समय तुम से वियोग हुआ । प्रथम जल की वर्षा से ताप शांत होते ही वृक्ष के ऊपर विद्युताग्नि गिरी ।**

विदू—**मैं तो इस पुत्र—प्राप्ति रूप घटना को ही अनर्थ का उत्पन्न करने वाला समझता हूं, आप स्वयं जाकर देवराज को प्रसन्न कीजिये ।**

उर्व—हा हदम्हि मन्दभाइणी, किद-विणअस्स तणअस्स लम्भाणन्तरं सग्गारोहणेण अवसिद-कज्जां विप्पओअ-मुहीं मं महाराओ समत्थइस्सदि । (ड)

राजा—सुन्दरी ! मा मैवम् ।

न हि सुलभ-वियोगा कर्त्तमात्मप्रियाणि
प्रभवति परवत्ता, शासने तिष्ठ भर्त्तुः ।
अहमपि तव सूनावद्य विन्यस्य राज्यं
विचरितमृगयूथान्याश्रयिष्ये वनानि ॥ (१७)

कुमार—नार्हति तातो महोक्ष-धारितायां धुरि दम्यं नियोजयितुम

राजा—अयि वत्स ! मा मैवम् ।—

(ड) हा हतास्मि मन्दभागिनी, कृतविनयस्य तनयस्य लम्भानन्तरं स्वर्गारोहणेनावसितकार्य्यां विप्रयोगमुखीं मां महाराजः समर्थयिष्यते ।

उर्व—हाय ! मैं बड़ी मन्दभागिनी हूं । मैं मारी पड़ी । इस सुविनीत पुत्र की प्राप्ति के पीछे मैं जब स्वर्गधाम में जाऊंगी तब वियोग मुखी मुझे महाराज आश्वास देंगे ।

राजा—सुन्दरि ! ऐसा नहीं है ।

(१७) अन्वयः—नेति । सुलभवियोगा परवत्ता आत्मप्रियाणि कर्त्तु न प्रभवति, भर्त्तुः शासने तिष्ठ, अहमपि अद्य तव सूनौ राज्यं विन्यस्य विचरितमृगयूथानि वनानि आश्रयिष्ये ।

व्याख्या—सुलभो वियोगः यस्याः सा सुलभवियोगा परवत्ता पराधीनता आत्मप्रियाणि आत्मनः अभिलषितानि कर्त्तु न प्रभवति, अतः भर्त्तुः इन्द्रस्य शासने तिष्ठ, अहमपि अद्य तव सूनौ तव पुत्रे राज्यं राज्यभारं विन्यस्य विचरितानि कृतगमनानि मृगयूथानि मृगसमूहा येषु तथाभूतानि वनानि आश्रयिष्ये, वनेषु गमिष्यामीत्यर्थः । मालिनी वृत्तम् ।

भावार्थ—पराधीनता का विरह सदा ही सुलभ है । वह अपना प्रिय सम्पादन नहीं कर सकता । अतएव तुम स्वामी देवराज के शासन में अवस्थित रहो । मैं भी अब पुत्र के ऊपर राज्य का भार सौंप कर मृग-यूथ-पूर्ण वन का सहारा लेता हूं ।

कुमार—तात ! जो भार महा वृषभ (बैल) उठाता है, उसे अनभ्यस्त व्यक्ति के ऊपर डालना उचित नहीं है ।

राजा—वत्स ! नहीं, ऐसा नहीं है ।

शमयति गजानन्यान् गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्,
प्रभवतितरां वेगोदग्रं भुजंगशिशो-र्विषम् ।
भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं,
न खलु वयसा, जात्यैवायं स्वकार्य्यसहो गुणः (१८)

आर्य्य तालव्य !

कञ्चु—आज्ञापयतु देवः ।

राजा—मद्वचनादमात्यपर्वतं ब्रूहि, सम्भ्रियताम आयुष्मतो राज्याभिषेकः ।

(कञ्चुकी दुःखेन निष्क्रान्तः । सर्वे दृष्टिविघातं रूपयन्ति)

राजा—(आकाशमवलोक्य) कुतो नु खलु भोः विद्युत्सम्पातः ?

---

(१८) अन्वयः—शमयतीति । गन्धद्विपः कलभोऽपि सन् अन्यान् गजान् शमयति, भुजङ्गशिशोर्विषं वेगोदग्रं प्रभवातितराम्, अधिपतिः बालावस्थोऽपि सन् भुवं परिरक्षितुम् अलम् खलु, अयं सवकार्य्यसहो गुणः, न वयसा (परन्तु) जात्यैव ।

व्याख्या—गन्धद्विपः गन्धगजः कलभोऽपि सन् शिशुरपि सन् अन्यान् गजान् शमयति निवारयति, पराभवतीत्यर्थः । गन्धगजलक्षणं यथा-'यस्य गन्धं समाघ्राय न तिष्ठन्ति प्रतिद्विपाः । स वै गन्धगजो नाम नृपतेर्विजयावहः ।' तथा भुजङ्गशिशोः सर्पशिशोः 'भुजङ्गः विटसर्पयोः' इति शेषः । विषं वेगोदग्रं अतितीक्ष्णमित्यर्थः, प्रभवतितराम् मारणसमर्थं भवति । अधिपतिः राजा बालावस्थोऽपि सन् भुवं पृथिवीं परिरक्षितुं शासितुमलं समर्थः खलु । अयं स्वकार्यसहः स्वकार्यसाधनसमर्थो गुणः, न वयसा न वयोवृद्धिजनितः परन्तु जात्यैव । हरिणी वृत्तम् ।

भावार्थ—विजयी मत्त गज शावक होने पर भी अन्यान्य हाथियों को पराजित कर सकता है । अत्यन्त उग्र सर्प—शिशु का विष जिस प्रकार तत्क्षण प्राण—नाश करने में समर्थ होता है, उसी प्रकार बालक होने पर भी धरणी का अधीश्वर पृथवी का भार उठाने में समर्थ होता है । अतएव जाति वा अवस्था द्वारा स्वकार्य साधन के गुण का निश्चय नहीं किया जाता है ।

आर्य तालव्य !

कंचुकी—महाराज ! आज्ञा दीजिये ।

राजा—मेरी आज्ञानुसार मंत्रीवर पर्वत से कहो कि इस आयुष्मान् कुमार के राज्याभिषेक का आयोजन करें ।

(दुखित भाव से कंचुकी का जाना । सबकी आंखों से ही विषाद का प्रकाश)

राजा—(आकाश की ओर देख कर) अहो ! क्या बिजली गिरी न ?

(निपुणमवलोक्य)

अये ! भगवान् नारदः—

गोरोचना-निकष-पिङ्ग-जटाकलापः
संलक्ष्यते शशिकलामल-वीतसूत्रः ।
मुक्तागुणातिशय-संभृत-मण्डनश्री-
हैंम-प्ररोह इव जङ्गम-कल्पवृक्षः ॥ (१९)

अर्घोऽर्घस्तावत् ।

उर्व—इदं भअवदो अग्घं । (ढ)

(ततः प्रविशति नारदः]

नारदः—विजयतां विजयतां मध्यमलोकपालः ।

राजा—भगवान् ! अभिवादये ।

(ढ) एतत् भगवतोऽर्घ्यम् ।

(भली भांति देख कर)

अहो ! भगवान् नारद हैं ?

(१९) अन्वयः—गोरोचनेति । गोरोचना-निकषपिङ्गजटाकलापः शशिकलामलवीतसूत्रः मुक्तागुणातिशयसंभृतमण्डनश्रीः हैमप्ररोहः जङ्गमकल्पवृक्ष इव संलक्ष्यते ।

व्याख्या—गोरोचनायाः निकषस्य पिङ्गो जटाकलापो यस्य सः, शशिकलावदमलं शुभ्रं वतिसूत्रं यज्ञोपवीतं यस्य सः, तथा मुक्तागुणैः मुक्ताहारैः अतिशयसंभृता अत्यर्थं वर्द्धिता मण्डनश्रीर्यस्य, अतएव हेमप्ररोहः सञ्जातःस्वर्णांकुरः जङ्गमः गमनशीलः कल्पवृक्ष इव संलक्ष्यते प्रतीयते । नारद इति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

भावार्थ—निकष पत्थर के ऊपर जिस प्रकार गोरोचना की रेखा पड़ती है, उसी प्रकार पिंगल वर्ण जटा जूट मंडित-चन्द्रकला की नाईं निर्मल यज्ञोपवीत धारी मुक्ता माला के द्वारा अतिशय सम्वर्द्धित अलंकार युक्त स्वर्णमय प्ररोह शोभित सचल कल्पतरु की समान भगवान् देवर्षि नारद जी आ रहे हैं ।

अर्घ्य अर्घ्य ?

उर्व—इन महर्षि के लिए अर्घ्य लीजिए ।

(नारद जी का आना)

नारद—मध्यम लोकपाल की जय हो ।

राजा—भगवन् ! वन्दना करता हूं ।

उर्व—भगवं प्पणमामि । (ण)

नारदः—अविरहितौ दम्पती भूयास्ताम् ।

राजा । (जनान्तिकम्) अपि नामैवं स्यात् ? (प्रकाशम्) और्वशेयः पुत्रो वः प्रणमति ।

नारदः—आयुष्मान् आस्तामयम् (एधि) ।

राजा—अयं विष्टरोऽनुगृह्यताम् ।

(नारदस्तथोपविष्टः सर्वे नारदमनूपविशन्ति)

राजा—(सविनयम्) भगवन् ! किमागमनप्रयोजनम् ?

नारदः—राजन् ! श्रूयतां महेन्द्रसन्देशः ।

राजा—अवहितोऽस्मि ।

नारदः—प्रभावदर्शी मघवा वनगमनाय कृतबुद्धिं भवन्तमनुशास्ति ।

राजा—किमाज्ञापयति ?

नारदः—त्रिकालदर्शिभिः आदिष्टः, सुरासुरविमर्दो भावी, भवांश्च सांयुगीनः सहायः, तेन न त्वया शस्त्रन्यासः कर्त्तव्यः, इयञ्च उर्वशी यावदायुस्ते सहधर्मचारिणी भवतु इति ।

(ण) भगवन् ! प्रणमामि ।

उर्व—भगवन् ! प्रणाम करती हूं ।

नारद—(आशीर्वाद देकर) दम्पति विरह शून्य हो अर्थात् परस्पर स्त्री पुरुष का वियोग न हो ।

राजा—(स्वगत) यह क्या हो सकेगा ? (प्रकट) उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र आपको प्रणाम करता है ।

नारद—यह पुत्र दीर्घजीवी हो ।

राजा—आसन ग्रहण कीजिये ।

(नारद का आसन ग्रहण करना तदनन्तर सबका बैठना)

राजा—(विनय के साथ) भगवन् ! आप के आने का कारण क्या है ?

नारद—महाराज ! देवराज के वचन सुनिये ।

राजा—एकाग्र चित्त हूं ।

नारद—देवराज ने अपने प्रभाव के बल से आपका वन गमन जान लिया है । इसी लिये उन्होंने आपको आज्ञा दी है ।

राजा—क्या आज्ञा दी है ?

नारद—भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों काल की बातको देखने वाले

उर्व—(अपवार्य) अम्हो ! सल्लं बिअ हिअआदो अवणीदं । (त)

राजा—परमनुगृहीतोऽस्मि परमेश्वरेण ।

नारदः—युक्तम् ।—

तव कार्यमसौ कुर्यात्, त्वञ्च तस्येष्टकार्य्यकृत् ।
सूर्य्यः संवर्द्धयत्यग्निमग्निः सूर्य्यं स्वतेजसा ॥ (२०)

(आकाशमवलोक्य) रम्भे ! उपनीयतां मन्त्रेण सम्भृतः कुमारस्याभिषेकसम्भारः ।

रम्भा—(प्रविश्य) अअं से अहिसेअ-सम्भारो । (थ)

(त) आश्चर्य्यं, शल्यमिव हृदयादपनीतम् !

(थ) अयमस्याभिषेकसम्भारः ।

मुनियों ने कहा है कि भविष्यत् में देव-दानवों के बीच अवश्य युद्ध संघटित होगा । आप उनके युद्ध के सहायक हैं—सुतरां अस्त्र छोड़ देना आप के पक्ष में बहुत ही अनुचित है । जब तक आप की परमायु विद्यमान रहेगी, तब तक यह उर्वशी आपकी सह-धर्मचारिणी रूप में अवस्थान करेगी ।

उर्वशी—(अपवारित होकर) क्या ही आश्चर्य है, मानो हृदय में गड़ा हुआ कांटा निकल गया ।

राजा—उन परमेश्वर सुरेश्वर ने मुझ पर अत्यन्त ही अनुग्रह दिखाया है ।

नारद—यह युक्ति संगत ही हुआ है ।

(२०) अन्वयः—तवेति । असौ तव कार्यं कुर्यात् त्वं च तस्य इष्टकार्यकृत्, सूर्य्यः अग्निं संवर्द्धयति, अग्निः स्वतेजसा सूर्य्यं (वर्द्धयति) ।

व्याख्या—(सुगम है)

भावार्थ—आपका कार्य्य तो उन्होंने किया, किन्तु आप भी उनका अभिलाषित कार्य्य सम्पन्न कीजिये । सूर्य और अग्निदेव अपने २ तेज द्वारा आपस में एक दूसरे को सम्वर्द्धित करते हैं । (आकाश की ओर देख कर) रंभे ! कुमार के लिए मंत्र-संभूत अभिषेक की सामग्री लाओ ।

रम्भा—(प्रविष्ट होकर) यह अभिषेक की सामग्री है ।

नारद—उपवेश्यतामयमायुष्मान् भद्रपीठे।

(रम्भा कुमारं भद्रपीठे उपवेशयति)

नारदः—(कुमारस्य शिरसि कलसमावर्ज्य) रम्भे ! निर्वर्त्यतामस्य शेषो विधिः।

रम्भा—(यथोक्तं निर्वर्त्य) बच्छ ! पणाम भअवन्तं पिदरौ अ। (द)

(कुमारः सर्वान् प्रणमति)

नारदः—स्वस्ति भवते।

राजा—वंशर्द्धनो (कुलधुरन्धरो) भव।

उर्व—पिदुणो दे बअणाणि होन्तु। (ध)

(नैपथ्ये वैतालिकद्वयम्)

प्रथम—विजयतां विजयतां युवराजः।—

अमरमुनिरिवात्रिः स्रष्टुरत्रेरिवेन्दु-
बुध इव शिशिरांशोर्बोधनस्येव देवः।
तव पितुरनुरूपस्त्वं गुणैर्लोककान्तै-
रतिशयिनि समस्ता वंश एवाशिषस्ते॥ (२१)

(द) वत्स ! प्रणाम भगवन्तं पितरौ च।

(ध) पितुस्ते वचनानि भवन्तु।

नारद—इस दीर्घ जीवी कुमार को भद्रपीठ में बैठालो।

(रम्भा कुमार को भद्रपीठ में बैठाल देती है)

नारद—(कुमार के मस्तक पर कलश के जलसे मार्जन करके) रम्भे ! इसका शेषविधान सम्पन्न करो।

रम्भा—(शेष विधान सम्पन्न करके) वत्स ! भगवान् नारद तथा माता पिता को प्रणाम करो।

(कुमार का सबको प्रणाम करना)-

नारद -तुम्हारा मङ्गल हो।

राजा—वंश को बढ़ाने वाले (कुल-धुरन्धर) होओ।

उर्वशी—तुम्हारे पिता के वाक्य सफल हों।

(नेपथ्य में दो वैतालिकों का प्रवेश)

पहला वै०—युवराज की जय हो।

(२१) अन्वयः—अमरमुनिरिति। (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—अमरमुनिरिति। स्रष्टुः श्रीब्रह्मणः पुत्रः अमरमुनिः अत्रिः, अत्रेः इन्दुः शिशिरांशोः चन्द्रमसः बुध इव, बोधनस्य एव देवः राजा पुरूरवा इत्यर्थः, लोककान्तैः, संसारानन्ददायकैर्गुणैः त्वं पितुः अनुरूपो योग्यः, तव अतिशयिनि सर्वोत्कर्षशालिनि वंशे कुले ते समस्ता एव आशिषः सन्तीति शेषः। मालिनिवृत्तम्।

द्वतीयः—तव पितरि पुरस्ताद्बद्धभावा स्थितेयं
स्थितिमति च विभक्ता त्वय्यनाकल्प्यधैर्ये ।
अधिकतरमिदानीं राजते राजलक्ष्मी-
र्हिमवति जलधौ च प्राप्ततोयेव गङ्गा ॥ (२२)

रम्भा—दिट्ठिआ सही पुत्तअस्स जुअराअ-सिरीं पेक्खिअ भत्तुणो विरहे ण वट्टदि । (न)

उर्व—साहारणो ज्जेव णो अब्भुदओ । (कुमारं हस्ते गृहीत्वा) जाद ! जेट्ठमादरं वन्देहि । (प)

राजा—तिष्ठ, सममेव तत्रभवत्याः समीपं यास्यामस्तावत् ।

(न) दिष्ट्या सखी पुत्रकस्य युवराजश्रियं प्रेक्ष्य भर्तुर्विरहे न वर्त्तते ।

(प) साधारण एव नोऽभ्युदयः । जात ! ज्येष्ठमातरं वन्दस्व ।

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी के पुत्र जिस प्रकार अत्रि मुनि हैं, अत्रि के पुत्र जैसे चन्द्रमा, चन्द्रमा के पुत्र जैसे बुध, और बुध के पुत्र जिस प्रकार आपके पिता हैं, उसी प्रकार आप भी लोक-रंजन गुणावली द्वारा पिता के अनुरूप पुत्र हुए हैं । यह आपके सर्व श्रेष्ठ वंश का आशीर्वाद समाप्त हुआ ।

दूसरा वै० (२२) अन्वयः—तवेति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—पुरस्तात् पूर्वं तव पितरि जनके बाद्धभावा जातानुरागा सती स्थिता इयं राज्यलक्ष्मीः पुनः स्थितिमति मर्यादायुक्ते अनाकल्प्य धैर्य्ये अपरिमेयधैर्य्य-शालिनि त्वयि विभक्ता इदानीं हिमवति हिमालये जलधौ च समुद्रे च प्राप्ततोया गङ्गेव अधिकतरं राजते शोभते । मालिनी वृत्तम् ।

भावार्थ—पहले यह राजलक्ष्मी तुम्हारे पिता के प्रति अनुरागिणी होकर अवस्थित थी, अब आप के युवराज पद में प्रतिष्ठित होने से आप में विभक्त होकर हिमालय और समुद्र इन दोनों में प्राप्त सलिला गंगाजी की समान अधिकतर शोभा को प्राप्त हुई है । आप मर्यादा शाली हैं, कल्पना शक्ति के द्वारा भी आप की असीम वीर्यवत्ता का परिमाण नहीं किया जा सकता ।

रम्भा—सौभाग्य से ही प्रिय सखी उर्वशी ने पुत्र की राजलक्ष्मी को देख फिर पति के विरह-जनित दुःख को अनुभव नहीं किया ।

उर्वशी—हम दोनों का भाग्योदय समान ही हुआ है (कुमार का हाथ पकड़कर) वत्स ! बड़ी माता को प्रणाम करो ?

राजा—ठहरो ! एक संग ही हम उनके निकट जायेंगे ।

नारदः—आयुषो यौवराज्यश्रीः स्मारयत्यात्मजस्य ते ।
अभियुक्तं महासेनं सैनापत्ये मरुत्वता ॥ (२३)

राजा—अनुगृहीतोऽस्मि मघवता ।

नारदः—भो राजन् ! किं ते भूयः प्रियं करोतु पाकशासनः ?

राजा—अतःपरमपि प्रियमस्ति यदि भगवान् पाकशासनः प्रसादं करोतु ततः ।

(भरतवाक्यम्)

परस्पर-विरोधिन्योरेकसंश्रय दुर्लभम् ।
सङ्गतं श्री-सरस्वत्योर्भूयादुद्भूतये सताम् ॥ (२४)

नारदः—(२३) अन्वयः—आयुष इति । (प्रायः सीधे हैं)

व्याख्या—आयुष इति । ते तव आत्मजस्य आयुषः आयुर्नामधेयस्य यौवराज्य-श्रीः यौवराज्य-शोभा सैनापत्ये पदे मरुत्वता इन्द्रेण अभियुक्तं नियोजितं महासेनं कार्तिकेयं स्मारयति स्मृतिगोचरी करोति ।

भावार्थ—आपके पुत्र आयु की युवराज श्री देख कर देवराज ने जो षड़ानन (स्वामी कार्त्तिक) को सेनापति-पद में नियुक्त किया है ! यही हमें याद पड़ता है ।

राजा—मैं सुरपति के द्वारा अनुग्रहीत हुआ ।

नारद—महाराज ! सुरपति आपका और क्या प्रिय कार्य करें ?

राजा—इस की अपेक्षा यदि और भी कोई प्रिय कार्य हो, तो यह भगवान् देवराज मुझे प्रसाद स्वरूप दान करें ।

(भरत वाक्य)

(२४) अन्वयः—परस्परेति ; सताम् उद्भूतये परस्परविरोधिन्योः श्रीसरस्वत्योः एकसंश्रयदुर्लभं सङ्गतं भूयात् ।

व्याख्या—सताम् सज्जनानाम् उद्भूतये वृद्धये परस्परविरोधिन्योः श्रीसरस्वत्योः एकसंश्रये एकाधारे दुर्लभं सङ्गतं मेलनं भूयात्, विद्वांसो धनिनो भवन्तु धीमन्तो विद्वांसो भवन्तु इत्यर्थः ।

भावार्थ—साधु जनों के कल्याणार्थ में दुष्प्राप्य और परस्पर विरोधिनी लक्ष्मी तथा सरस्वती का एकत्र मिलन होवे ।

अपि च ।—

सर्वस्तरतु दुर्गाणि, सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः कामानवाप्नोतु, सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥ (२५)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति श्रीकालिदासकृते विक्रमोर्वशीनामत्रोटके पञ्चमोऽङ्कः ।

और भी—

(२५) अन्वयः— सर्व इति । (प्रायः सीधे हैं)

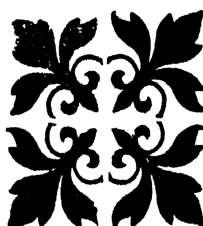
व्याख्या—सर्वः, लोकः दुर्गाणि दुःखानि तरतु, सर्वः भद्राणि कल्याणानि 'स्वश्श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणम्' इत्यमरः । पश्यतु, सर्वः कामान् अभिलाषान् 'कामेऽभिलाषः' इत्यमरः अवाप्नोतु, सर्वः सर्वत्र सर्वस्मिन् स्थले सर्वस्मिन् काले च नन्दतु आनन्दं प्राप्नोतु ॥

भावार्थ—सब कोई संकट से छुटकारा पावें । सब ही कल्याण को देखें और सब ही सब स्थानों में आनन्द को प्राप्त होवे ।

(सब का प्रस्थान)

इति पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ।

इतिश्रीमहाकविकालिदासकृतविक्रमोर्वशीय
नामत्रोटकनाटकसमाप्त ।



विक्रमोर्वशीयस्य श्लोकानामकारादिक्रमेण अनुक्रमणी।

१९२८ के लिये

प्राज्ञ परीक्षा में नियत पुस्तकों की सूची

प्रथमपत्र—१ पुरुरूपरूपानिरूपणम् (दशावतार वर्णनम्) महा० पं० शिवदत्त संगृहीत संस्कृत टीकासहित छपता है।

२ विक्रमोर्वशीयम्-संस्कृतटीका तथा भाषाटीका सहित १।)

द्वितीयपत्र—पंचतंत्र संस्कृत टीकासहित तथा स्वस्थवृत्त पाठ समेत (१९२८ में जो पंचतंत्र नियत है उस में पंचतंत्र के पहले तीन तंत्र नियत हैं और चरकसंहिता का कुछ थोड़ासा पाठ भी सम्मिलित किया गया है। परीक्षोपयोगी सकल पाठ दूसरों से आपको २॥।) में मिलेगा किन्तु हम केवल १॥।) में ही देंगे। तिस पर भी अधिकता यह है कि चरकसंहिता का जो पाठ सम्मिलित किया गया है वह भाषानुवाद सहित मिलेगा जो आपको अन्यत्र २॥) में भी नहीं मिलेगा) १॥।)

चरकसंहिता का जो पाठ पंचतंत्र के साथ लगाकर परीक्षा में नियत हुआ है वह पृथक् भी भाषानुवाद समेत छपा हुआ मिल सकेगा। जिनके पास पंचतंत्र है उनको केवल इसी भाग की आवश्यकता रह जावेगी। ॥)

तृतीयपत्र-१ व्यक्तगणितसारसंग्रह-महा०पं० शिवदत्तरचित ॥।=)

२ भारत भूगोल। ।=)॥।

३ भारतवर्ष का इतिहास ईश्वरीप्रसाद प्रथमभाग। ॥।=)

चतुर्थपत्र—१ वृत्तरत्नाकर सटीक मुम्बई। ।≈)

वृत्तरत्नाकर जीवानंदकृत संस्कृत टीका समेत। १)

२ तर्कसंग्रह पं० नृसिंहदेव कृत संस्कृत टीका समेत। ।-)

तर्कसंग्रह भाषाटीका सहित। ।)

पंचमपत्र—मध्यकौमुदी। यंत्रस्थ

षष्ठपत्र—संस्कृत से हिन्दी और हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद।